डा० जयकुमार जैन

एम० ए० संस्कृत

वैदिक सूक्त दिग्दर्शिका

(प्रश्नोत्तर रूप में)

[विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में एम० ए० संस्कृत (वैदिक पाठ्यक्रम) के पाठ्यक्रमानुसार प्रश्नोत्तर रूप में उत्तम पुस्तक]



साहित्य भण्डार
शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक
सुभाष बाजार, मेरठ-२५० ००२

एम० ए० संस्कृत

वैदिक सूक्त दिग्दर्शिका

(प्रश्नोत्तर रूप में)

[विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों के एम० ए० संस्कृत (वैदिक पाठ्यक्रम) के पाठ्यक्रमानुसार प्रश्नोत्तर रूप में **उत्तम पुस्तक**]

डा० जयकुमार जैन

एम० ए०, पी-एच० डी०

संस्कृत विभाग

एस० डी० (पोस्टग्रेजुएट) कालेज, मुजफ्फरनगर उ० प्र०



साहित्य भण्डार

शिक्षा साहित्य के मुद्रक एवं प्रकाशक

सुभाष बाजार, मेरठ-२५० ००२

प्रकाशक :
रतिराम शास्त्री
अध्यक्ष :
साहित्य भण्डार,
सुभाष बाजार, मेरठ–२
दूरभाष : ५१८७५४

मूल्य : ३०.०० रुपये

मुद्रक :
शर्मा प्रिंटिंग प्रेस
जयदेवी नगर, मेरठ।
फोन : 766076, 769271

विषयक्रम

१. अधोलिखित मन्त्रों में से किन्हीं दो मन्त्रों की व्याख्या कीजिये । आवश्यकतानुसार व्याख्याकारों के मत एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी दीजिये ।

वैदिक व्याकरण

———

प्रश्न १—अधोलिखित मन्त्रों में से किन्हीं दो मन्त्रों की व्याख्या कीजिये। आवश्यकतानुसार व्याख्याकारों के मत एवं व्याकरणात्मक टिप्पणी दीजिये ?

अग्निसूक्त

ऋग्वेद १/१ (कान० बुन्देल० अवध मेरठ-आनर्स)

अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारम् रत्नधातमम् ॥१॥

प्रसङ्ग—प्रकृत-मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के अग्निसूक्त से उद्धृत किया गया है। प्रस्तुत अग्निसूक्त ऋग्वेद का आदि सूक्त है। इसमें अग्निदेव की स्तुति की गई है। इसके ऋषि विश्वामित्र तथा देवता अग्नि हैं ॥१॥

अन्वय:—यज्ञस्य पुरोहितम् देवम् ऋत्विजम् होतारम् रत्नधातमम् अग्निम् ईले ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—यज्ञस्य=क्रतोः यद्वा क्रियमाणदेवादिस्तुतिकर्मणः, पुरोहितम्=यज्ञे सर्वप्रथमं समाहवनीयरूपेण संस्थितम्, देवम्=दानदीपनद्योतनगुणसंयुक्तम, अत्र देवशब्दो दानदीपनद्योतनानामन्यतममर्थमाचष्टे, ऋत्विजम्=ऋतुसमयानुसारेण यज्ञसम्पादकम, होतारम्=देवानाम् आह्वातारम्, रत्नधातमम्=रत्नानां धारयितारम्, अग्निम्=अग्निदेवम्, ईले=स्तौमि। अत्र 'ईड स्तुतौ' इत्यस्मिन् डकारस्य लकारः सम्प्रदाय प्राप्तः ॥१॥

हिन्दी अनुवाद—यज्ञ में सर्वप्रथम आधान किये जाने वाले, दानादि गुणों से सम्पन्न, देवताओं के ऋत्विक एवं होता तथा रत्नों को धारण करने वाले अग्निदेव की मैं स्तुति करता हूँ ॥१॥

शब्दार्थ—ईले=स्तुति करता हूँ, पुरोहितम्=यज्ञ में सर्वप्रथम आधान किये जाने वाले, देवम्=दानादि गुणों से सम्पन्न, ऋत्विजम्=ऋतुओं के अनुसार यज्ञ सम्पादित करने वाले, होतारम्=देवताओं का आह्वान करने वाले, रत्नधातमम्=रत्नों को धारण करने वाले।

व्याकरण—

ईले—स्तुति अर्थ वाली 'ईड्' धातु से आत्मनेपद में लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

पुरोहितम्—पुरः+धा+क्त प्रत्यय। धा धातु को हि आदेश द्वितीया विभक्ति एकवचन।

रत्नधातमम्—'रत्नानि दधाति' इति विग्रहः (तत्पुरुष समास) समास होने से रत्नधा शब्द अन्तोदात्त है। रत्नधा+तमप्।

होतारम्—हु + तृन् प्रत्यय । द्वितीया विभक्ति, एकवचन ।

अग्नि—अग्नि शब्द तीन धातुओं से मिलकर निष्पन्न हुआ है । 'इण् गतौ' धातु से निष्पन्न अयन शब्द से 'अ', 'दह् भस्मीकरणे' धातु से निष्पन्न दग्ध शब्द से 'ग्' तथा 'णीञ् प्रापणे' धातु से नी (ह्रस्वीकृत) से अग्नि शब्द बना है । सायण ने लिखा है—

"अग्नि शब्दो हि अकारगकारनिशब्दानपेक्षमाण: एतिधातोरुत्पन्नात् अयन-शब्दादकारमादत्ते ।……दहति धातुजन्यात्दग्धशब्दात् गकारमादत्ते । नी: इति नयतिधातु: । स च ह्रस्वो भूत्वा परो भवति । ततो धातुत्रयं मिलित्वा अग्निशब्दो भवति ।"

विशेष—(१) मैक्डानल ने 'ईडे' का अर्थ महत्व को गाता हूँ (Magnify) किया है । सायण इसका अर्थ स्तुति करता हूँ (स्त्रौमि) तथा यास्क प्रार्थना करता हूँ-मानते हैं ।

(२) प्रस्तुत मन्त्र में गायत्री छन्द में तीन पाद और प्रत्येक में आठ-आठ वर्ण कुल २४ वर्ण होते हैं ।

अग्नि: पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वय:—अग्नि: पूर्वेभि: ऋषिभि: उत नूतनै: (ऋषिभि:) ईड्य: । स: देवान् इह आ वक्षति ।

संस्कृत व्याख्या—अग्नि:=अयम् अग्निदेव: पूर्वेभि:=भृग्वादिभि: पुरातनै:, ऋषिभि: उत:=अथ च, नूतनै:=इदानींतनै: अस्मादृशै: जनैरपि, ईड्य:=स्तुत्य: । स:=एतादृश: स्तुत: अग्नि:, देवान्=हविर्भुज: देवविशेषान्, इह=अत्र यज्ञे, आवक्षति=आवहतु । अत्र लोडर्थे लृट: प्रयोग: । स्यप्रत्ययगतस्य यकारस्यलोप: छान्दस: ।

हिन्दी अनुवाद--अग्नि देव प्राचीन और नवीन ऋषियों के द्वारा स्तुति करने योग्य है । वह देवताओं को यहां (यज्ञ में) लावे ।

शब्दार्थ—पूर्वेभि: ऋषिभि:=प्राचीन (भृगु, अंगिरा आदि) ऋषियों के द्वारा, नूतनै:=नवीन (ऋषियों) के द्वारा, ईड्य:=स्तुति किये जाने योग्य, इह=यहाँ (यज्ञ में), आवक्षति=लावे ।

व्याकरण—

पूर्वेभि:—पूर्व शब्द से तृतीया विभक्ति बहुवचन का वैदिक रूप । लौकिक संस्कृत में तृतीया बहुवचन के भिस् प्रत्यय को ऐस् आदेश होकर 'पूर्वै:' रूप निष्पन्न होता है ।

ईड्य:—ईड् + यत् ।

वक्षति—वह् धातु, लृट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप। लृट् लकार के स्य प्रत्यय के यकार का छान्दस लोप। यहाँ पर लृट् लकार के अर्थ में हुआ है।

विशेष—(१) उत शब्द का प्रयोग सामान्यतया विकल्प के अर्थ में होता है, परन्तु यहाँ पर औचित्य के अनुसार समुच्चय अर्थ में किया गया है।

(२) छन्द—पूर्ववत् गायत्री।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरा गमत् ॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वय—होता कविक्रतुः सत्यः चित्रश्रवस्तमः देवः अग्निः देवेभिः आ गमत्।

संस्कृत व्याख्या–होता = होम निष्पादकः आह्वानकर्तावा, कविक्रतुः = क्रान्तप्रज्ञः, सत्यः = अनृतहीनः, चित्रश्रवस्तः = विविधकीर्तिसंयुतः देवः = द्योतनशीलः, अग्निः = अग्निदेवः देवेभिः = अपरैः हविर्भोजिभिः सह, आगमत् = आगच्छतु। अत्र लोट्लकारेऽपि गम् धातोः गच्छत्वाभावः। उकारलोपश्चापि छान्दसः।

हिन्दी अनुवाद–होम को निष्पन्न करने वाला अथवा देवताओं का आह्वान करने वाला, क्रान्तप्रज्ञा वाला अर्थात् अतीत अनागत कर्मों का ज्ञाता, सत्यस्वरूप, विविधकीर्तिसम्पन्न तथा प्रकाशमान अग्नि देवता अन्य देवताओं के साथ (यज्ञ में) आवे।

शब्दार्थ—होता = होम का निष्पादक अथवा देवताओं का आह्वान करने वाला, कविक्रतुः = अप्रतिहत प्रज्ञा वाला या भूत भविष्य के सभी कर्मों को जानने वाला, सत्यः = सत्यस्वरूप, फल को अवश्य देने वाला' चित्रश्रवस्तमः = विविधकीर्तियों का धारक, देवेभिः = देवताओं के साथ, आगमत् = आवे।

व्याकरण—

होता—हु धातु से तृन् प्रत्यय। प्रथमा विभक्ति एकवचन।

कविक्रतुः—कविः–क्रान्तः क्रतुः–प्रज्ञा कर्म वा यस्य सः (बहुव्रीहि समास)।

सत्य—सत्सु साधुः सत्यः। निपातनात् निष्पन्न।

चित्रश्रवस्तमः —श्रूयते इति श्रवः कीर्तिरित्यर्थः। चित्रं श्रवः यस्य सः (बहुव्रीहि समास)। चित्रश्रव शब्द से अतिशय अर्थ में तमप् प्रत्यय का प्रयोग।

देवेभिः—देव शब्द से तृतीया बहुवचन में वैदिक रूप। लोक में भिस् को ऐस् आदेश होकर 'देवैः' रूप निष्पन्न होता है। यहाँ सह के अर्थ में तृतीया का प्रयोग हुआ है।

आ गमत्—लौकिक गच्छतु (लोट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन) के स्थान पर 'गमत्' वैदिक प्रयोग। गम् को गच्छ आदेश न होकर तथा उकार का लोप होकर यह छान्दस रूप बना है।

विशेष—(१) सायण होता का अर्थ होम को निष्पन्न करने वाला (होमनिष्पादकः) करते हैं। मैक्डानल के अनुसार होता का अर्थ आह्वान करने वाला (Invoker) है।

(२) सायण कविक्रतु का अर्थ क्रान्तप्रज्ञ या क्रान्तकर्म करते हैं। (कविशब्दोऽत्र क्रान्तवचनो न तु मेधाविनाम। क्रतुः प्रज्ञामस्य कर्मणो वा नाम। ततः क्रान्तप्रज्ञ, क्रान्तकर्मा वा।) मैक्डानल ने इसका अर्थ प्रतिसम्पन्न (of wise Intelligence) किया है।

(३) छन्द—पूर्ववत् गायत्री।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तधियावयम्।
नमो भरन्त एमसि ॥७॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—अग्ने। वयम् दिवेदिवे दोषावस्तः धियः नमः भरन्तः आ इमसि।

संस्कृत व्याख्या—अग्नेः=हे अग्निदेव, वयम्=अनुष्ठानकर्तारः, दिवेदिवे=प्रतिदिनम्, दोषावस्तः=रात्रावहनि, धिया=बुद्धया, नमः=नमस्कारम्, भरन्तः=सम्पादयन्तः, उप त्वा=तव समीपे, आ इमसि=आगच्छामः।

हिन्दी अनुवाद—हे अग्निदेव! हम लोग प्रतिदिन दिनरात बुद्धि पूर्वक नमस्कार करते हुए तुम्हारे समीप आते हैं।

शब्दार्थ–उप त्वा=तुम्हारे समीप, दिवेदिवे=प्रतिदिन, दोषावस्तः=रात-दिन, धिया=बुद्धिपूर्वक, नमः=नमस्कार, भरन्तः=करते हुए आ इमसि=आते हैं।

व्याकरण—

दोषावस्तः—दोषा च वस्तः च दोषावस्तः (समाहार द्वन्द्व)। दोषा शब्दो रात्रिवाची। वस्तरिति अहर्वाची।

भरन्तः—भृ+शतृ। प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

इमसि—'इण् गतौ' धातु से लट् उत्तम पुरुष बहुवचन में मस् प्रत्यय के बाद 'इदन्तो मसिः' (अष्टाध्यायी, ७।१।४६) से इ होकर इमसि रूप निष्पन्न हुआ है।

विशेष—(१) मैक्डानल ने दोषावस्तः का अर्थ सायण के समान रातदिन नहीं माना है। वे इसे अग्नि का विशेषण स्वीकार करते हैं तथा सम्बोधन में इसका अर्थ 'हे अन्धकार को दूर करने वाले' (Illuniner of gloom) करते हैं।

(२) छन्द—पूर्ववत् गायत्री।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥९॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—अग्ने ! सः (त्वम्) सूनवे पिता इव सूपायनः भव । नः स्वस्तये सचस्व ।

संस्कृत व्याख्या—अग्ने=हे अग्निदेव !, सः=पूर्वोक्तदानादिगुणविशिष्टः विख्यातः त्वम्, सूनवे=पुत्राय, पिता=जनकः, इव=यथा, सूपायनः=सारल्येन प्रापणयोग्यः भव । नः=अस्माकम्, स्वस्तये=कल्याणाय, सचस्व=समवेतो भव । सूनवे पितेवेत्यत्रोपमा । यथा पुत्राय पिता सुप्रापः भवति तद्वत् त्वमपि भवेति भावः ।

हिन्दी अनुवाद—हे अग्निदेव ! वह तुम पुत्र के लिये पिता के समान सरलता से पहुँच के योग्य हो जाओ । हमारे कल्याण के लिये, साथ में रहो ।

शब्दार्थ—सूनवे=पुत्र के लिये, पितेव=पिता के समान, सूपायनः=आसानी से पहुँच के योग्य, भव=हो जाओ, नः हमारे, स्वस्तये=कल्याण के लिये, सचस्व=साथ रहो ।

व्याकरण—

पितेव–यहाँ पर 'इवेन नित्यसमासः पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वं च वक्तव्यम्' (अष्टाध्यायी २।४।७१) के अनुसार पिता के साथ इव का नित्यसमास हुआ है ।

सूपायनः—शोभनम् उपायनं यस्येति (बहुव्रीहि समास) ।

सचस्वा—षच् धातु लोट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन । छान्दस दीर्घ ।

विशेष—(१) छन्द—पूर्ववत् गायत्री ।

अग्निमारुतसूक्त

ऋग्वेद १/१९

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥१॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के अग्निमारुतसूक्त से उद्धृत किया गया है । इस सूक्त में मरुत् नामक देवताओं के साथ अग्निदेव का आह्वान किया गया है । इसके ऋषि मेधातिथि एवं देवता अग्नि एवं मरुत् हैं ।

अन्वयः—अग्ने ! त्यम् चारुम् अध्वरम् प्रति गोपीथाय प्रहूयसे । मरुद्भिः आगहि ।

संस्कृत व्याख्या–अग्ने=हे अग्निदेव ! त्यम्=तं प्रसिद्धम्, चारुम्=सर्वाङ्गशोभनम्, अध्वरम्=हिंसारहितं यज्ञम् प्रति=प्रतिलभ्य, प्रहूयसे=प्रकर्षेणाहूयसे । अतएव त्वं मरुद्भिः=मरुन्नामकैः देवैः सह, आगहि=आगच्छ ।

हिन्दी अनुवाद—हे अग्निदेव ! (तुम) उस प्रसिद्ध अङ्गविकलता से हीन

सुन्दर हिंसारहित यज्ञ की ओर सोमपान करने के लिये बुलाये जाते हो। (अतएव) मरुत् देवताओं के साथ आ जाओ।

शब्दार्थ—त्वम्=उस, चारुम्=सभी अंगों से परिपूर्ण सुन्दर, अध्वरम्=हिंसाहीन यज्ञ, गोपीथाय=सोमरस का पान करने के लिये, प्रहूयसे=बुलाये जाते हो, मरुभिः मरुत् देवताओं के साथ, आगहि=आ जाओ।

व्याकरण—

त्वम्—तत् के लिये प्रयुक्त वैदिक सर्वनाम त्यत् शब्द का द्वितीया विभक्ति, एकवचन का रूप।

अध्वरम्—ध्वृ (हिंसार्थे) धातु से अप् प्रत्यय होकर ध्वरः रूप निष्पन्न होता है। तब न ध्वरः यस्मिन् सः ऐसा समास करके अध्वरः रूप बनता है। उसका द्वितीया विभक्ति एकवचन।

प्रहूयसे—प्र उपसर्ग, ह्वे धातु लट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

गोपीथाय—गो+पा+थक्=गोपीथ। चतुर्थी विभक्ति, एकवचन।

आगहि—आ+गम्, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन लोक में यहाँ आगच्छ रूप होता है।

विशेष—(१) गोपीथ शब्द के प्राच्य-पाश्चात्य विद्वानों ने विभिन्न अर्थ किये हैं, जो इस प्रकार हैं—

सायण, यास्क	—	सोमपान
मैक्समूलर	—	दूध का घूंट (A draught of Milk)
पीटरसन	—	"
राँथ	—	दूध का घूंट एवं रक्षा

(२) छन्द—गायत्री:

नहि देवो न मर्त्यो महस्त क्रतुं परः।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्!

अन्वय:–अग्ने! महः तव क्रतुम् न हि देवः न मर्त्यः परः। मरुद्भिः, आगहि।

संस्कृत व्याख्या—अग्ने=हे अग्निदेव! महः=महतः, तव=अग्निविषयकं, क्रतुम्=कर्मविशेषं यज्ञं वा, उल्लंघ्य न हि=न, देवः=दिवुधः, न=नहि, मर्त्यः=मनुष्यः, परः=उत्कृष्टः भवितु शक्नोति। (त्वम्) मरुद्भिः=मरुन्नामकैः देवैः सह, आगहि=आगच्छ। ये देवाः मनुष्याश्च तव क्रतुमनुतिष्ठन्ति ते एव श्रेष्ठा सन्तीति भावः।

हिन्दी अनुवाद–हे अग्निदेव! महान् तुम्हारे यज्ञ या कर्मविशेष का उल्लंघन करके न तो देवता और न मनुष्य ही उत्कृष्ट हो सकता है। (तुम) मरुत् देवताओं के साथ आ जाओ।

शब्दार्थ—महः=महान्, तव=तुम्हारे, क्रतुम्=यज्ञ या कर्मविशेष को, नहि परः=उत्कृष्ट नहीं है, मर्त्यः=मनुष्य।

व्याकरण—

महः—महतः (षष्ठी विभक्ति एकवचन महत् शब्द से निष्पन्न) रूप में वैदिक तकार का लोप्।

क्रतुः—कृ+क्तु (उणादि प्रत्यय)।

परः—परस्तात् के अर्थ में प्रयुक्त एक अव्यय पद।

विशेष—(१) क्रतु का अर्थ सायण ने कर्मविशेष किया है। पीटरसन ने क्रतु का अर्थ शक्ति किया है।

(२) गायत्री छन्द के प्रत्येक पद में ८–८ मात्रायें होती हैं। इस मन्त्र के प्रथम पाद में ७ ही मात्रायें हैं। अतएव 'मर्त्यः' के स्थान पर 'मर्तियः' उच्चारण होगा।

(३) छन्द—गायत्री।

ये उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा।
मरुद्भिरग्न आगहि ॥४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—अग्ने! ये उग्राः अर्कम् आनृचुः ओजसा अनाधृष्टासः, मरुद्भिः आगहि।

संस्कृत व्याख्या—अग्ने=हे अग्निदेव! ये=मरुतः, उग्राः=प्रचण्डाः अर्कम्=जलम् ('आपो वा अर्कः' इति शतपथ० १०।६।५।१), आनृचुः=वर्षणेन उत्पादितवन्तः। ओजसाः बलेन, अनाधृष्टासः अतिस्कृताः सन्ति, तैः मरुद्भिः=तादृशैः मरुन्नामकैः=देव-विशेषैः सह, आगहि=आगच्छ।

हिन्दी अनुवाद—हे अग्निदेव! जो प्रचण्ड मरुत् देवता जलों को वर्षा के द्वारा सम्पादित करते हैं और बल से अतिस्करणीय हैं, उन मरुत् देवताओं के साथ आ जाओ।

शब्दार्थ—उग्राः=तीव्र या प्रचण्ड, अर्कम्=जल को, आनृचुः=उत्पन्न करते हैं, ओजसा=बल के कारण, अनाधृष्टासः=किसी से भी तिरस्कृत न होने वाले।

व्याकरण

आनृचुः—ऋच् धातु लिट् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन। यह छान्दस रूप है। लौकिक संकृत में आनर्चुः रूप बनता है।

ओजसा—उब्ज्+असुन्=ओजस् शब्द से तृतीया विभक्ति के एक वचन का रूप।

विशेष—(१) सायण और विल्सन ने अर्क का अर्थ जल किया है। पीटरसन ने अर्क का अर्थ गान करते हुए 'अर्कमानृचुः' का अर्थ इस प्रकार किया है—अपना गान गाते हैं। उनके अनुसार आँधियों का शब्द ही उनका गान है।

(२) छन्द—गायत्री।

ये शुभ्राः घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः।
मरुद्भिरग्न आगहि ॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—अग्ने ! ये शुभ्राः घोरवर्पसः सुक्षत्रासः रिशादसः, मरुद्भिः आगहि।

संस्कृत व्याख्या—अग्ने ! = हे अग्निदेव, ये = मरुद्देवाः, शुभ्राः = शोभमानाः शुभ्रगुणयुक्ताः वा, घोरवर्पसः = प्रचण्डाः, सुक्षत्रासः = सुन्दर धनसम्पन्नाः, रिशादसः = हिंसकानां भक्षकाः (सन्ति तादृशैः), मरुद्भिः = मरुद्देवैः सह, आगहि = आगच्छ।

हिन्दी अनुवाद—हे अग्निदेव ! जो मरुत् देवता शुभ्रगुणवाले प्रचण्ड रूप वाले, सुन्दर धनों से सम्पन्न तथा हिंसकों के भक्षक हैं; उन मरुत् देवताओं के साथ आ जाओ।

शब्दार्थ—शुभ्राः = शुभ्र गुणवाले या शोभायमान, घोरवर्पसः = भयंकर (प्रचण्ड) रूप धारण करने वाले, सुक्षत्रासः = सुन्दर धनों से सम्पन्न, रिशादसः = हिंसकों के भक्षक।

व्याकरण—

शुभ्राः—शोभते इति शुभ्रः इस अर्थ में शुभ्र धातु से उणादि (स्फायितञ्चिवञ्चिशकिक्षिपिक्षुदि सृपितृपिदृपिवन्धुन्दिश्वितिकृत्यजिनीपदिमदिमुदिखिदिछिदिभिदिमन्दिचन्दिदहि सिदम्भिवसिवाशि शीङ्हसिसिधिधिशुभिभ्यो रक् ॥१७८॥ सूत्र से) रक् प्रत्यय, प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

घोरवर्पसः—घोरं वर्पः (रूपं) येषां ते (बहुव्रीहि समास)।

सुक्षत्रासः—शोभनं क्षत्रं (धनं) येषां ते (बहुव्रीहि समास)।

रिशादसः—रिशान् अदन्ति इति रिशादसः। (रिशति = हिंसति इति रिशः)

विशेष—(१) सायण ने यहाँ पर क्षत्र का अर्थ धन किया है अन्यत्र प्रथम मण्डल के पच्चीसवें सूक्त के पञ्चम श्लोक में उन्होंने क्षत्र का अर्थ बल भी किया है। वैसे निघण्टु में धन के पर्यायवाचियों में क्षत्र भी पठित है। पीटरसन ने क्षत्र का अर्थ राज्य किया है।

(२) सायण ने रिशादस का अर्थ 'हिंसकों के भक्षक' किया है। यास्क ने 'टुकड़े-टुकड़े करके चीर डालने वाला किया है।

(३) छन्द—गायत्री ।

ये ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् ।
मरुद्भिरग्न आगहि ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—अग्ने ! ये पर्वतान् ईङ्खयन्ति, समुद्रम्, तिरः, मरुद्भिः आगहि ।

संस्कृत व्याख्या—अग्ने=हे अग्निदेव !, ये=मरुतः, पर्वतान्=मेघान्, ईङ्खयन्ति=चालयन्ति, अर्णवम्=जलसम्पन्नम्, समुद्रम्=सागरम्, तिरः=तिरस्कुर्वन्ति, तादृशैः मरुद्भः=मरुद्भिः सह, आगहि=आगच्छ ।

हिन्दी अनुवाद—हे अग्नि देव ! जो मरुत् देवता मेघों को संचालित करते हैं, जलपूर्ण समुद्र को तिरस्कृत कर देते हैं, (उन) मरुत् देवों के साथ आ जाओ ।

शब्दार्थ—पर्वतान्=मेघों को, ईङ्खयन्ति=संचालित करते हैं, अर्णवम्=अत्यधिक जल से भरे हुये, समुद्रम्=सागर, तिरः=तिरस्कृत करते हैं (तरङ्गों की उत्पत्ति के लिये संचालित करते हैं) ।

व्याकरण—

ईङ्खयन्ति—ईख्+णिच्=ईखि णिजन्त धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष, एक वचन ।

समुद्रम्—सम्+उन्दी (क्लेदन अर्थ वाली) धातु से रक् प्रत्यय (द्रष्टव्य पञ्चम मन्त्र में उणादि सूत्र 'स्फायित०' आदि, शुभ्राः के व्याकरण निर्देश के प्रसंग में) ।

विशेष—(१) तिरः—यह एक अव्यय पद है जो समुद्रकर्मक सम्बन्ध को सूचित कर रहा है । यहाँ समुद्र को तिरस्कृत करने का भाव है—निश्चल जल की तरङ्गों को उत्पन्न करने के लिये संचालन । सायण ने लिखा है—

"निश्चलस्य जलस्य तरङ्गाद्युत्पत्तये चालनं तिरस्कारः ।"

(२) सायण ने पर्वत का अर्थ 'मेघ' और पीटरसन ने 'समुद्र की ऊँची लहरें' किया है ।

(३) सायण ने समुद्र का अर्थ लौकिक सागर किया है किन्तु रॉथ ने इसका अर्थ अन्तरिक्ष माना है ।

(४) छन्द—गायत्री ।

अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥९॥

प्रसंग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—अग्ने ! पूर्वपीतये त्वा सोम्यम् मधु अभि सृजामि, मरुद्भिः आगहि।

संस्कृत व्याख्या—अग्ने = हे अग्निदेव, पूर्वपीतये = प्रथमपानाय, त्वा = त्वाम् अग्निं प्रति, सोम्यम् = सोमविषयकम्, मधु = मधुरं रसम्, अभिसृजामि = सम्पादयामि, (त्वम्) मरुद्भिः = मरुद्देवैः सह, आगहि = आगच्छ।

हिन्दी अनुवाद—हे अग्नि देव ! सर्वप्रथम पीने के लिये तुम्हें सोम सम्बन्धी मधुर रस को तैयार कर रहा हूँ, (आप) मरुत् देवताओं के साथ आ जाओ।

शब्दार्थ—पूर्वपीतये = सर्वप्रथम पीने के लिए, त्वा = तुम्हें, सोम्यम् = सोम सम्बन्धी, मधु = मधुर रस को, अभिसृजामि = तैयार कर रहा हूँ।

व्याकरण—

पूर्वपीतये—पूर्वा चासौ पीतिः (पा + क्तिन् प्रत्यय) पूर्वपीतिः। चतुर्थी विभक्ति, एकवचन।

सोम्यम्—सोममर्हतीति सोम्यम् अर्थ में सोम शब्द से यत् प्रत्यय होकर सोम्यम् रूप बना है।

मधु—अवबोधनार्थक मन् धातु से उणादि में उ प्रत्यय। धातु के न् को ध् होकर मधु रूप निष्पन्न हुआ है।

विशेष—(१) छन्द—गायत्री। द्वितीय पाद में एक वर्ण न्यून होने से 'सोम्यम्' के स्थान पर 'सोमियम्' उच्चारण होगा। क्योंकि गायत्री छन्द के तीनों पादों में ८-८ कुल २४ वर्ण होते हैं। ●

वरुणसूक्त

(ऋग्वेद १।२५) (मेरठ)

वि मृलीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्।
गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥३॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के वरुणसूक्त से लिया गया है। इस सूक्त में वरुण देव की स्तुति करते हुए उसे सभी कार्य करने में समर्थ, त्रिकालदर्शी तथा नियमों का पालन कराने वाला देवता कहा गया है। इस सूक्त के देवता वरुण एवं ऋषि शुनःशेप हैं।

अन्वयः—वरुण ! रथीः संदितम् अश्वम् न ते मनः मृलीकाय गीर्भिः वि सीमहि।

संस्कृत व्याख्या—वरुण ! = हे वरुण देव !, रथीः = स्यन्दनपति, सान्दितम् = श्रान्तम्, अश्वम् = घोटकम्, न = इव, ते = तव वरुणस्य, मनः = अन्तः

करणम्, मृलीकाय=सुखप्राप्तये, गीर्भिः=स्तुतिभिः, वि सीमहि=विशेषण प्रसादयामः।

हिन्दी अनुवाद—हे वरुणदेव ! जिस प्रकार रथ का स्वामी थके हुये घोड़ों को (प्रसन्न करता है), उसी प्रकार (हम) तुम्हारे मन को सुख पाने के लिये प्रसन्न करते हैं।

शब्दार्थ—मृलीकाय=सुखप्राप्ति के लिये, न=समान, रथी का स्वामी, संदितम्=थके हुए, गीर्भिः=स्तुतियों के द्वारा, वि सीमहि=विशेष रूप से प्रसन्न करते हैं।

व्याकरण—

रथीः—मतुप् प्रत्यय के अर्थ में रथ शब्द से वैदिक ई प्रत्यय, प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

संदितम्—सम्+दो (अवखण्डने)+क्त, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

सीमहि—षिञ् धातु, लट् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन।

विशष—(१) पीट्रसन ने सायण के अर्थ के विपरीत विसीमहि का अर्थ बन्धन से मुक्त करना तथा संदितम् का अर्थ बँधा हुआ किया है।

(२) छन्द—गायत्री।

परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये।
वयो न वसतीरुप ॥४॥

प्रसंङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—हि मे विमन्यवः वस्यः इष्टयेप रापतन्ति। वयः न वसतिः उप।

संस्कृत व्याख्या—हि=निश्चयेन, मे=मम ऋषेः शुनः शेपस्य, विमन्यव=क्रोधरहिताः बुद्धयः वस्यः=धनसम्पन्नजीवनस्य, इष्टये=प्राप्तये, परापतन्ति=पराङ्मुखाः प्रसरन्ति। वयः=पक्षी, न=इव, वसतीः=निवासस्थानानि, उप=नैकट्येन प्राप्नुवन्ति।

हिन्दी अनुवाद—निश्चय से मेरी क्रोध रहित बुद्धियाँ धनसम्पन्न जीवन की प्राप्ति के लिये पराङ्मुख (पुनः पुनः आवृत्ति रहित) होकर फैल रही हैं। जिस प्रकार पक्षी अपने निवास स्थानों की ओर जाते हैं।

शब्दार्थ—हि=निश्चयार्थ या सर्वजनप्रसिद्धिसूचक अव्यय, मे=मेरी, विमन्यवः=क्रोधरहित बुद्धियाँ वस्यः=धनसम्पन्न जीवन की, इष्टये=प्राप्ति के लिये, परापतन्ति=फैल रही हैं, वयः=पक्षी, न=तरह, वसतीः=निवासों को, उप=समीप।

व्याकरण—

विमन्यवः—विगतः मन्यु यस्याः सा विमन्युः ताः (बहुव्रीहि समास)।

इष्टये—इष्+क्तिन्, चतुर्थी एकवचन।

वसतोः—वसति शब्द से द्वितीया विभक्ति का बहुवचन।

विशेष—(१) रॉथ ने विमन्यवः का अर्थ 'इच्छायें' किया है, जबकि सायण ने क्रोधरहित बुद्धियाँ।

(२) ग्रासमान ने वस्यः का अर्थ सर्वोच्च सम्पत्ति किया है।

(३) छन्द—गायत्री।

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावः समुद्रियः ॥७॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—यः अन्तरिक्षेण पतताम् वीनाम् पदम् वेद। समुद्रियः नावः वेद।

संस्कृत व्याख्या—यः=वरुणः, अन्तरिक्षेण=आकाशमार्गेण, पतताम्=गच्छताम्, वीनाम्=पक्षिणाम्, पदम्=मार्गम् स्थानम् वा, वेदः=जानाति। समुद्रियः=समुद्रेऽधिष्ठितः यः वरुणः, नावः=जलमार्गे गच्छन्त्याः नौकायाः, (पदम्=मार्गम्), वेदः=जानाति। सः वरुणः अस्मान् बन्धनात् मोचयतु इति शेषः।

हिन्दी अनुवाद—जो (वरुण देवता) आकाश मार्ग से उड़ने वाले पक्षियों के मार्ग को जानता है और समुद्र में अधिष्ठित जो नाव के मार्ग को जानता है (वह हमें बन्धन से मुक्त करे)।

शब्दार्थ—वेद=जानता है, वीनाम्=पक्षियों के, पदम्=मार्ग या स्थान को, अन्तरिक्षेण=आकाशमार्ग से, पतताम्=उड़ने वाले, नावः=(जलों में चलने वाली) नाव के, समुद्रियः=समुद्र में अवस्थित।

व्याकरण—

पतताम्—पत्+शतृ=पतत्, शष्ठी विभक्ति एकवचन।

समुद्रियः—समुद्रे भवः समुद्रियः। समुद्र+घ→इय।

विशेष—(१) सायण नावः को षष्ठी विभक्ति एकवचन का रूप मानकर उसका अर्थ 'जले गच्छन्त्याः' करते हैं तथा वे 'पदम' का अध्याहार करते हैं अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् ग्रासमान, रॉथ, कोलब्रुक नावः को द्वितीया वि० का बहुवचन मानकर कर्म स्वीकार करते हैं।

(२) वेदा में छन्दस दीर्घ है।

(३) छन्द की संगति के लिये 'वीनाम्' का उच्चारण 'वीनआम्' होगा।

(४) छन्द—गायत्री।

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः।
वेदा य उपजायते ॥८॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—धृतव्रतः प्राजावतः द्वादश मासः वेद । यः उपजायते वेद ।

संस्कृत व्याख्या—धृतव्रतः=अङ्गीकृतकर्मविशेषः, प्रजावतः=प्रजायुक्तान्, द्वादश मास =द्वादशसंख्यान् चैत्रामासान्, वेदः=जानाति, यः=अधिक मासः, उपजायते=स्वयमेवोत्पद्यते, वेद=तमपि जानाति ।

हिन्दी अनुवाद—नियम को स्वीकार करने वाला वरुण देवता प्रजाओं से युक्त बारह महीनों (चैत्रादिफाल्गुनपर्यन्त) को जानता है । जो अधिक मास (तीसरे या चौथे वर्ष में) उत्पन्न होता है, उस (मलमास) को भी जानता है ।

शब्दार्थ—धृतव्रतः=नियम को स्वीकार (पालन) करने वाला, प्रजावतः= उत्पन्न होने वाली प्रजाओं से युक्त, द्वादशमासः=बारह महीनों को, वेद=जानता है, उपजायते=(मल मास के रूप में) उत्पन्न होता है ।

व्याकरण—

प्रजावतः—प्रजा+मतुप्=प्रजावत् । प्रजावत् शब्द से षष्ठी विभक्ति का एकवचन ।

उपजायते—उप+जन्, लट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन ।

विशेष—(१) सायण ने प्रजा का अर्थ 'उत्पद्यमान प्रजा' किया है । पीटरसन मास की प्रजा दिन मानकर प्रजा का अर्थ दिन मानते हैं ।

(२) छन्द के अनुरोध से यहाँ द्वादश का उच्चारण 'दुआदश' होगा ।

(३) छन्द—गायत्री ।

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—सुक्रतुः सः आदित्यः न विश्वाहा सुपथा करत् । न आयुंषि प्रतारिषत् ।

संस्कृत व्याख्या—सुक्रतुः=शोभनसंकल्पः शोभनकर्मा वा, सः=प्रसिद्धः, आदित्यः=अदितिपुत्रः वरुणः, न=अस्मान्, विश्वाहा=सर्वेषु दिनेषु, सुपथा= शोभनमार्गेण, करत्=सहितान् करोतु नयतु वा । अथ च नः=अस्माकम् आयूंषि प्रतारिषत्=आयुंषि वर्धयन्तु ।

हिन्दी अनुवाद—सुन्दर विचार वाला वह अदिति का पुत्र वरुण देवता हमें सभी दिनों में सुन्दर मार्ग से सहित कर दे (ले जावे) और हमारी आयुओं को बढ़ावे ।

शब्दार्थ—सुक्रतुः=सुन्दर प्रज्ञा, संकल्प या कर्म वाला, आदित्यः=अदिति का पुत्र वरुण, विश्वाहाः सभी दिनों में, सुपथाः=सुन्दर मार्ग से, करत्=ले जावे, आयूंषि=आयुओं को, प्रतारिषत्—बढ़ावें ।

व्याकरण—

आदित्य—अदितेः अपत्यं पुमान् आदित्यः। अदिति+ण्य।

सुपथा—शोभनः च असौ पन्थाः सुपन्थाः तेन सुपथा।

करत्—कृ धातु लोट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में करोतु के स्थान पर प्रयुक्त वैदिक रूप।

विशेष—सायण ने सुपथा का तृतीय एकवचन का रूप तथा पीटरसन ने द्वितीया विभक्ति बहुवचन का रूप माना है।

(२) छन्द—गायत्री।

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥१६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—गव्यूतीः अनु गावः न उरुचक्षसम् इच्छन्तीः मे धीतयः परायन्ति।

संस्कृत व्याख्या—गव्यूतीः=गोष्ठानि, अनु=अनुलक्ष्य, गावः=धेनवः, न=इव, उरुचक्षसम्=सर्वदर्शनीयं वरुणदेवम्, इच्छन्ती=दर्शनार्थं कामयन्ती, मे=मम् शुनःशेपस्य, धीतयः=बुद्धयः, परायन्ति=गच्छन्ति।

हिन्दी अनुवाद—गोशालाओं की तरफ जाती हुई गायों की तरह बहुतों के द्वारा दर्शनीय वरुण देव को (दर्शन के लिये) चाहती हुई मेरी बुद्धियाँ जा रही हैं।

शब्दार्थ—परायन्ति=जा रही हैं, धीतयः=बुद्धियाँ, गावः न=गायों की तरह, उरुचक्षसम्=बहुतों के द्वारा दर्शनीय अथवा विशाल दृष्टि वाले, गव्यूतीः=गोशालाओं को, इच्छन्ति=चाहती हुई, अनु=लक्ष्यकर।

व्याकरण—

धीतयः—ध्या+क्तिन् (सम्प्रसारण एवं दीर्घ)=धीति, प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

गव्यूतीः—'गावो अत्र यूयन्ते' अर्थ में गो+यू+क्तिन्=गव्यूति। द्वितीया विभक्ति बहुवचन।

विशेष—(१) सायण ने गव्यूति का अर्थ गोशाला किया है, जबकि पीटरसन ने 'गायों का मार्ग' अर्थ किया है।

(२) छन्द—गायत्री,

इमं मे वरुण श्रुधि हवमद्या च मृलय।
त्वामवस्युरा चके ॥१९॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—वरुण! मे इमम् हवम् श्रुधि, अद्य च मृलय। अवस्यु त्वाम् आचके।

संस्कृतव्याख्या—वरुण=हे वरुणदेव ! मे=मम, इदम्=प्रस्तुतम्, हवम्=आह्वानम्, श्रुधि=श्रृणु, अद्य च=किं च अस्मिन् दिवसे, मृलय=सुखं देहि। अवस्यु=रक्षेच्छु: अहम्, त्वाम्=वरुणदेवम्, आचक्रे=अभिमुख्येन स्तौमि।

हिन्दी अनुवाद—हे वरुणदेव मेरी इस प्रकार को सुनो और आज (मुझे) सुखी करो। रक्षा की इच्छा करने वाला मैं तुम्हारी स्तुति कर रहा हूँ।

शब्दार्थ—मे=मेरी, श्रुधि=सुनो, हवम्=आह्वान या पुकार को, अद्य=आज, इस समय, मृलय=सुखी करो, अवस्यु=रक्षा की इच्छा करने वाला (मैं), आचक्रे=पुकार रहा हूँ या स्तुति कर रहा हूँ।

व्याकरण—

श्रुधि—श्रु धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप। लोक में श्रृणु रूप बनता है।

मृलय—मृल धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

अवस्यु—अवस्+क्यच्+उ।

विशेष—(१) 'श्रुधि' एवं 'अद्या' उभयत्र छान्दस दीर्घ है।

(२) छन्द की दृष्टि से अवस्यु के स्थान पर 'अवसियु' उच्चारण होगा।

(३) छन्द—गायत्री।

उदुत्तमं मुमुग्धि नो विपाशं मध्यमं चृत।
अवाधमानि जीवसे ॥२१॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वय—न उत्तमम् पाशम् उन्मुमुग्धि; मध्यमम् विचृत् जीव से अधमानि अव (चृत)।

संस्कृत व्याख्या—न=अस्माकम्, उत्तमम्=उर्ध्ववर्तिनं शिरोगतम्, पाशम् उन्मुमुग्धि=पाशम् उत्कृष्य मोचय, मध्यमम्=मध्यवर्तिनं कटिगतम्, विचृत=वियुज्य मोचय, जीवसे=जीवितुं जीवनाय वा, अधमानि=निम्नस्थानवर्तिन: पादगतानन्, अव (चृत)=उत्कृष्य नाशय।

हिन्दी अनुवाद—हे (वरुणदेव !) हमारे ऊर्ध्ववर्ती (शिरोगत) पाश को खींचकर हटा दो, मध्यवर्ती (कटिगत) पाश को अलग कर दो तथा जीवन के लिये अधम (पादगत) पाशों को खींचकर नाश कर दो।

शब्दार्थ—उत्तमम्=उर्ध्ववर्ती (शिरोगत), उन्मुमुग्धि=खींचकर छुड़ा दो, मध्यमम्=मध्यवर्ती (कटिगत), विचृत=अलग कर दो, जीवसे=जीवन के लिये, अधमानि=अधम (पादगत) अव(चृत) खींचकर नष्ट कर दो।

व्याकरण—

मुमुग्धि—मुच्छृ (मोचने) धातु से लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

चृत—चृत् धातु (हिंसायाम्) धातु से लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

जीवसे—जीव धातु से तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में तुमर्थ से सेनसेऽसेन्क्सेक्सेन-अऽध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेन:' (३।४।६) से असे प्रत्यय।

सवितृ सूक्त

ऋग्वेद/१३५ (गोरख० रुहेल० बुन्देल० गढ़० मेरठ आन०)

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो
निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना
देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥२॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सवितृसूक्त से उद्धृत है। इस सम्पूर्ण सूक्त में स्वर्णिम देव सविता की स्तुति की गई है। सविता देवता की हिन्दुओं के दैनिक जीवन में भी सर्वोच्च स्थिति है। गायत्री में श्रद्धा एवं आदर के साथ सविता की स्तुति वर्णित है। इस सूक्त के ऋषि हिरण्यस्तूप तथा देवता सविता है।

अन्वय:—कृष्णेन रजसा आवर्तमान:, अमृतम् मर्त्यम् च निवेशयन्, देव: सविता हिरण्ययेन रथेन भुवनानि पश्यन् आयाति।

संस्कृत व्याख्या—कृष्णेन=अन्धकारमयेन, रजसा=अन्तरिक्षमार्गेण, आवर्तमान:=पुन: पुन: आगच्छन्, अमृतम्=देवम्, मर्त्यम्=मनुष्यम् च, निवेशयन्=स्वकर्मसु स्थापयन्, देव:=दीप्यमान, सविता, हिरण्ययेन्=स्वर्णनिर्मितेन, रथेन=स्यन्दनेन, भुवनानि=सर्वान् लोकान्, पश्यन्=अवेक्षमाण:, आयाति=समीपमागच्छन्ति।

हिन्दी अनुवाद—अन्धकारमय अन्तरिक्षमार्ग से लौटते हुए, देवताओं और मनुष्यों को अपने-अपने कार्यों में लगाते हुए सविता देवता सोने से बने हुए रथ से लोकों को देखते हुए आ रहे हैं।

शब्दार्थ—कृष्णेन=अन्धकारयुक्त, रजसा=अन्तरिक्षमार्ग मे, आवर्तमान:=लौटते हुए, निवेशयन्=लगाते हुए, अमृतम्=देवों को, मर्त्यम्=मनुष्यों को, हिरण्ययेन्=सोने से बने हुये, पश्येन्=देखते हुए, आयाति=आ रहे हैं।

व्याकरण—

आवर्तमान:—आ+वृत्+शानच्। प्रथमा विभक्ति एकवचन।

निवेशयन्—नि+विश्+णिच्+शतृ। प्रथमा विभक्ति एकवचन।

हिरण्ययेन—हिरण्य+मयट्। मयट् के मकार का लोप होकर हिरण्यय शब्द बनता है, उसका तृतीया विभक्ति का एकवचन। यास्क हिरण्य का निर्वचन

इस प्रकार करते हैं—'ह्रियते आयम्यमानमिति वा ह्रियते जनाज्जनमिति वा हृदयरमणं भवतीति वा । हृयंते वा स्यात्प्रेप्साकर्मणः ।'

विशेष—(१) मैक्डानल ने 'कृष्णेन रजसा' का अर्थ अन्धेरे स्थान से किया है ।

(२) प्रकृत मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है । इस छन्द में चार पाद होते हैं तथा प्रत्येक पाद में ग्यारह-ग्यारह वर्ण होते हैं ।

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्—
गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वेदानीं सूर्यः कश्चिकेत्
कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥७॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—सुपर्णः गभीरवेपाः असुरः सुनीथः अन्तरिक्षाणि वि अख्यत् । इदानीम् सूर्यः क्व ? कः चिकेत् ? अस्य रश्मिः कतमाम् द्याम् ततान् ।

संस्कृत व्याख्या—सुपर्णः = शोभनरश्मिः, गभीरवेपाः = गम्भीरकम्पनः, असुरः = प्राणदः सुनीथः = शोभनमार्गदर्शकः सविता देवः, अन्तरिक्षाणि = अन्तरिक्षोपलक्षितानि लोकत्रयस्थानानि, वि अख्यत् = विशेषेण ख्यापितवान् । इदानीम् = अस्मिन् समये रात्रौ, सूर्यः = रवि, क्वः = कुत्रास्ति, कः = कतमः जन, चिकेत = जानाति, अस्य = सूर्यस्य, रश्मिः = गभस्तिः, कतमाम् द्याम् = कतमं द्युलोकम्, आततान् = व्याप्तवान्, एतदपि को जानातीति भावः ।

हिन्दी अनुवाद—सुन्दर गतिशील, गम्भीर कम्पनयुक्त किरणों वाले, प्राण प्रदान करने वाले तथा भली-भाँति नेतृत्व करने वाले सूर्य ने अन्तरिक्ष लोकों को विशेष रूप से प्रकाशित किया था । इस समय (रात्रि में) वह सूर्य कहाँ है ? कौन जानता है ? इसकी किरणें किस लोक तक फैली हैं. यह कौन जानता है ?

शब्दार्थ—सुपर्णः = सुन्दर गतिशील किरणों वाले, अन्तरिक्षाणि = अन्तरिक्ष लोकों को, वि अख्यत् = विशेष रूप से प्रकाशित किया है, गभीरवेपा = गम्भीर कम्पनयुक्त किरणों वाले, असुरः = प्राणदाता, सुनीथः = सुन्दर नेतृत्व करने वाले, क्व = कहाँ, इदानीम् = इस समय, चिकेत = जाना है, कतमाम् = किस, द्याम् = द्युलोक तक, रश्मि = किरण, आततान् = फैली है ।

व्याकरण—

असुरः—असून् प्राणान् राति ददाति इति असुरः । असु + रा + क ।

चिकेत—कित् ज्ञाने, लिट् लकार, प्रथम पुरुष एक वचन ।

गभीरवेपाः—गभीरः वेप = कम्पनं यस्य सः (बहुव्रीहि समास) ।

विशेष—(७) मैक्डानल ने सूर्य को पक्षी मानकर सुपर्ण शब्द का अर्थ पक्षी किया है ।

(२) छन्द—त्रिष्टुप् ।

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्या-
स्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्
दधद्रत्वा दाशुषे वार्याणि ॥८॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—अष्टौ पृथिव्याः ककुभः, त्री योजना धन्व, सप्त सिन्धून् वि अख्यत् । हिरण्याक्षः सविता देवः दाशुषे वार्याणि रत्ना दधत् आ आगात् ।

संस्कृत व्याख्या—अष्टौ=अष्टसंख्यकान् प्राच्यादयः च चतस्रः दिशः आग्नेयी-प्रभृतयः विदिशः, पृथिव्या=पृथिवीसम्बन्धिनीः, ककुभः=काष्ठाः (वि अख्यत्=प्रकाशितवान्), त्री=त्रिसंख्यान्, योजना=प्राणिनः, धन्वः=लोकान् (वि अख्यत्=प्रकाशितवान्), सप्त=सप्तसंख्यकान्, सिन्धून्=गङ्गादिनदीः, (वि अख्यत्=प्रकाशितवान्) हिरण्याक्ष=सुवर्णमयाक्षः, सविता देवः=सवितृदेवः, दाशुषे=हविर्प्रदायकाय, वार्याणि=वरणीयानि, रत्ना=रत्नानि, दधत्=धारयन्, आ=आगच्छत् ।

हिन्दी अनुवाद—(सविता देव ने) पृथिवी की आठ दिशाओं को, प्राणियों के तीन लोकों को तथा सात नदियों को विशेष रूप से प्रकाशित किया है । सुवर्ण-मयी आंखों वाले सविता देव हवि प्रदान करने वाले के लिये श्रेष्ठ रत्नों को धारण करते हुए आये हैं ।

शब्दार्थ—अष्टौ=आठ, व्यख्यत्=प्रकाशित किया है, ककुभः=दिशाओं को, धन्व=लोकों को, योजना=प्राणियों के, सिन्धून्=नदियों को, हिरण्याक्षः=सोने से निर्मित आंखों वाले, दाशुषे=हवि प्रदान करने वाले के लिये, वार्याणि=वरणीय या श्रेष्ठ, रत्ना=रत्न को, दधत्=धारण करते हुए, आ अगात्=आये हैं ।

व्याकरण—

त्री—त्रि शब्द से द्वितीया के बहुवचन का छान्दस रूप ।

योजना—युज्+ल्युट्=योजन । द्वितीया विभक्ति, बहुवचन ।

वार्याणि—वृ+ण्यत् । द्वितीया विभक्ति, बहुवचन ।

विशेष—(१) स्कन्दस्वामी योजना का अर्थ कर्म (युज्यन्ते एभिः मनुष्याः तत्फलैरिति योजनानि कर्माणि), सायण योजना का अर्थ प्राणी (प्राणिमः स्वभोग्येन योजयितृन्) करते हैं ।

(२) छन्द त्रिष्टुप् ।

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणि
रुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।

अपामीवां बाधते वेति सूर्य
मभिकृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वय:—हिरण्यपाणि: विचर्षणि: सविता उभे द्यावापृथिवी अन्त: ईयते, अमीवाम् अपबाधते, सूर्यम् वेति, कृष्णेन रजसा द्याम् अभि वृणोति।

संस्कृत व्याख्या—हिरण्यपाणि:=सुवर्णहस्त:, विचर्षणि:=सर्वदृष्टा, सविता =देव: सविता, उभे द्यावापृथिवी अन्त:=पृथिव्यन्तरिक्षयोरुभयोर्लोकयो: मध्ये, ईयते=गच्छति; अमीवाम्=रोगादिककष्टम्, अप बाधते=निराकरोति, सूर्यम्= भानुम्, वेति=गच्छति सवितृसूर्ययोरेकत्वेऽपि मूर्तिभेदेनायं व्यपदेश:, कृष्णेन= अंधकारयुक्तेन, रजसा=लोकेन, द्याम्=आकाशम्, अभिऋणोति=व्याप्नोति।

हिन्दी अनुवाद—स्वर्णमय हाथों वाले, सबको देखने वाले सविता देवता पृथिवी और अन्तरिक्ष दोनों लोकों के मध्य गमन करते हैं। रोग को दूर करते हैं। सूर्य के पास जाते हैं तथा अन्धकार युक्त लोक से होकर द्युलोक को व्याप्त करते हैं।

शब्दार्थ—हिरण्यपाणि:= सुवर्णमय हाथों वाले, विचर्षणि:=सबको देखने वाले या विविध प्रकार के दर्शनों वाले, उभे=दोनों, द्यावापृथिवी अन्त:=द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य में, ईयते=गमन करते हैं, अमीवाम्=रोग को, अपबाधते =दूर करते हैं, सूर्यम् वेति=सूर्य के समीप जाते हैं, कृष्णेन=अन्धकारमय, रजसा=लोक से, द्याम्=द्युलोक को, अभिवृणोति=व्याप्त करते हैं।

व्याकरण—

हिरण्यपाणि:—हिरण्यं पाणौ यस्य (बहुव्रीहि समास)।

द्यावापृथिवी—द्यौ च पृथिवी च (द्वन्द्व समास)।

वेति—अदादिगण की वी धातु से लट्लकार प्रथम पुरुष एक वचन का रूप।

ऋणोति—तनादिगण की 'ऋणु' धातु से लट्लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

ईयते—ई (गमने) आत्मने पद, लट्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) मैक्डानल ने 'विचर्षणि:' का अर्थ सक्रिय (Active) किया है। सायण ने विचर्षणि: का अर्थ विविधदर्शनयुक्त किया है।

(२) सायण ने 'कृष्णेन रजसा' का अर्थ 'अन्धकार दूर करने वाले तेज से' किया है। मैक्डानल ने 'कृष्णेन रजसा' का अर्थ 'अन्धकाराच्छन्न स्थान से' किया है।

(३) प्रस्तुत मन्त्र में जगती छन्द है। इस छन्द में चार पद होते है और प्रत्येक पाद में बारह-बारह वर्ण होते हैं। इस प्रकार ४८ वर्णों का छन्द है।

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो
ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभि. सुगेभी
रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥१०॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—सवितः ! ये ते पूर्व्यासः अरेणवः पन्थाः अन्तरिक्षे सुकृताः, तेभिः सुगेभिः पतिभिः अद्य नः रक्ष । देव ! नः च अधिब्रूहि ।

संस्कृत व्याख्या—सवितः=हे सवितृदेव !, ये=प्रसिद्धाः, ते=तव सवितुः पूर्व्यासः=पूर्वनिर्मिताः, अरेणवः=धूलिरहिताः, पन्थाः=मार्गाः, अन्तरिक्षे=अन्तरिक्षलोके, सुकृताः=सुष्ठु निर्मिताः सन्तीति शेषः, तेभिः=तैः प्रसिद्धैः, सुगेभिः=सारल्येन गमनाय शक्यैः, पथिभिः=मार्गैः, (आगत्य) अद्य=अस्मिन् दिवसे; नः=अस्मान्, रक्ष=पालय । देव=हे सवितः, नः=अस्मान च, अधिब्रूहि=आधिक्येन् वर्णय ।

हिन्दी अनुवाद—हे सविता देव ? जो तुम्हारे प्राचीन (पूर्वनिर्मित) और धूलि से रहित मार्ग अन्तरिक्ष लोक में अच्छी तरह से बने हुए हैं, उन्हीं आसानी से गमन करने योग्य मार्गों से आज हमारी रक्षा करो और हे देव ? हमारी तरफदारी करो (वकालत करो) ।

शब्दार्थ—ये=जो=ते=तुम्हारे, पूर्व्यासः=प्राचीन, अरेणवः=धूलि रहित, पन्थाः=मार्ग, सुकृताः=अच्छी तरह से निर्मित हैं, तेभि=उन, सुगेभि=सुगम=आसानी से गमन करने योग्य, पथिभि=मार्गों से (आकर), अद्य=आज, रक्ष=रक्षा करो, अधिब्रूहि=तरफदारी करो ।

व्याकरण—

पूर्व्यास—पूर्वे भवः पूर्व्यः (पूर्व+यत्) । प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में वैदिक रूप ।

पन्था—पथिन् शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन का रूप ।

सुगेभि—सु+गम्+ड=सुगः । तृतीया विभक्ति के बहुवचन का वैदिक रूप । लौकिक संस्कृत में तृतीया बहुवचन में 'सुगैः' रूप होगा ।

विशेष—(१) 'रक्षा' में छान्दस दीर्घ हुआ है ।

(२) 'सुगेभि रक्षा' यहाँ पर 'सुगेभिर्+रक्ष' में र परे होने से र् का लोप एवं दीर्घ होकर सुगेभी रूप सन्धिजन्य है ।

(३) प्रकृत मन्त्र में त्रिष्टुप् वृत्त है ।

उषस् सूक्त

(ऋग्वेद १/४८) (रुहेल०, बुन्देल०, आगरा, गढ़०)

उवासोषा उच्छाच्च नु
देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे
समुद्रे न श्रवस्यवः ॥३॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के उषस् सूक्त से उद्धृत है। ऋग्वेद के लगभग २० सूक्तों में उषा की स्तुति की गई है। काव्यात्मक दृष्टि से प्रकृत सूक्त अनुपम है। इस सूक्त के ऋषि प्रस्कण्व तथा देवता उषा है।

अन्वयः—उषाः उवास नु उच्छात् च। देवी रथानाम् जीरा, ये अस्याः आचरणेषु समुद्रे श्रवस्यवः न दध्रिरे।

संस्कृत व्याख्या—उषाः = उषाः देवी, उवास = निवासम् अकरोत् प्रकाशमकरोदिति भावः, नु = अद्यापि, उच्छात् = प्रकाशं करोति। देवी = उषाः, रथानाम् = स्यन्दनानाम्, जीरा = प्रेरयित्री, ये = रथाः, अस्याः = देव्याः उषसः, आचरणेषु = आगमनेषु, समुद्रे = सागरे, श्रवस्यवः = धनकामाः, न = इव दध्रिरे = सज्जीभवन्ति।

हिन्दी अनुवाद—(जो) उषा (पहले) प्रकाशित हुई थी (वह) आज भी प्रकाश कर रही है। समुद्र में धन की इच्छा करने वाले लोगों की तरह जो (रथ) इसके आने पर स्वयं तैयार हो जाते हैं, देवी उषा उन रथों को प्रेरित करने वाली है।

शब्दार्थ—उवास = निवास किया था या प्रकाशित हुई थी, उच्छात् = प्रकाश कर रही है या प्रकाश करे, नु = अब, जीरा = प्रेरित करने वाली, आचरणेषु = आ जाने पर, दध्रिरे = तैयार हो जाते हैं, श्रवस्यवः = धन की इच्छा करने वाले लोग, न = तरह।

व्याकरण—

उवास—वस् धातु, लिट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

जीरा—जु + रक् + टाप्।

आचरणेषु—आ + चर् + ल्युट् = आचरण, सप्तमी विभक्ति, बहुवचन।

विशेष—(१) विभिन्न प्राच्य—पाश्चात्य विद्वानों ने 'दध्रिरे' पद के पृथक्-पृथक् अर्थ किये हैं—

सायण—तैयार हो जाते हैं (सज्जीकृताः भवन्ति)।

विल्सन—साज चढ़ाया (Harnessed)

ग्रासमैन—उनके मार्ग का अनुसरण करते हैं (Follow their Path)

गेल्डनर—उत्साह या शीघ्रता करते हैं (are held in readiness)

पीटर्सन—व्यवस्था या नियम विधान करते हैं (are restrained or regulated)

(२) श्रवस्यवः—सायण ने श्रवस्यवः पद का अर्थ धनों को चाहने वाले (धनकामाः), ओल्डनवर्ग ने आभूषण खोजते हुये (seeking glory) ग्रिफिथ ने आभूषण खोजने वाले (glory seekers) किया है।

(३) प्रस्तुत मन्त्र में बृहती छन्द है। इस छन्द में चार पाद होते हैं, जिनमें तीन पाद आठ-आठ वर्णों के और एक पाद बारह वर्णों का होता है। कुल ३६ वर्ण होते हैं।

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—सूनरी योषा इव उषाः प्रभुञ्जती, वृजनम् जरयन्ती आयाति घ। पद्वद् ईयते। पक्षिणः उत्पातयति।

संस्कृत व्याख्या—सूनरी=सुन्दरी, योषा=युवती, इव=वत्, उषाः=देवी उषाः, प्रभुञ्जती=प्रकर्षेण सर्वम् पालयन्ती, वृजनम्=जङ्गमं प्राणिसमुदायम्, जरयन्ती=जरां प्रापयन्ती, आयाति=आगच्छति, घ=खलु (निश्चयार्थे प्रयुक्तं निपातपदम्)। पद्वत्=पादयुक्तं प्राणिजातम्, ईयते स्वकार्यार्थं गच्छति। पक्षिणः=वयांसि, उत्पातयति=उत्पतितुं प्रेरयति।

हिन्दी अनुवाद—सुन्दरी युवती के समान उषा देवी सबका पालन करती हुई जंगम प्राणियों को जरा प्राप्त कराती हुई आ रही है। (वह) पैर वाले प्राणियों को अपने काय के लिये भेजती है, पक्षियों को उड़ाती है।

शब्दार्थ—घ=निश्चय बोधक अर्थ में प्रयुक्त एक निपात, योषा इव=युवती के समान, सूनरी=सुन्दरी, आयाति=आ रही है, प्रभुञ्जती=सबका पालन करती हुई, वृजनम्=जंगम प्राणियों को, जरयन्ती=जरा प्राप्त कराती हुई, पद्वद्=पैर वाले प्राणियों को, ईयते=कार्य के लिये भेजती है, उत्पातयति=उड़ाती है।

व्याकरण—

सूनरी—सुष्ठु नयतीति सूनरी। नृ (नये) धातु से इ प्रत्यय तथा ङीप् (स्त्रीत्व विवक्षा में)।

प्रभुञ्जती—प्र+भुज्+शतृ+ङीप् (स्त्रीत्व विवक्षा में)।

वृजनम्—वृजी (वर्जने)+क्यु प्रत्यय→अनादेश ।

पद्वत्—पादः तदस्यास्तीति पद्वत् । पत्+मतुप ।

विशेष—(१) प्रभुञ्जती—सायण ने इसका अर्थ सबका पालन करती हुई (प्रकर्षेण सर्वं पालयन्ती) किया है तथा मैक्डानल ने आनन्दित करती हुई ।

(२) जरयन्ती—सायण के अनुसार इसका अर्थ 'जरां प्रापयन्ती' है। विल्सन भी सायण का ही अनुसरण करते हैं, किन्तु ग्रिफिथ और ओल्डनवर्ग ने जगाती हुई किया है ।

(३) छन्द बृहती ।

विश्वमस्या नानाम चक्षसे
जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव
उषा उच्छदप स्रिधः ॥८॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—विश्वम् जगत् अस्याः चक्षसे ननाम । सूनरी ज्योतिः कृणोति । मघोनी दिवः दुहिता उषाः द्वेषः अप उच्छत्, स्रिधः अप उच्छत् ।

संस्कृत व्याख्या—विश्वम्=सम्पूर्णम्, जगत्=जङ्गमप्राणिजातम्, अस्याः=देव्याः उषसः, चक्षसे=दर्शनाय, ननाम्=नमस्करोति । सूनरी=सुन्दरी देवी उषाः, ज्योतिः=प्रकाशम्, कृणोति=विदधाति । मघोनी=धनवती, दिवः=द्युलोकस्य, दुहिता=पुत्री, उषाः=देवी उषाः, द्वेषः=द्वेष्टॄन्, अप उच्छत्=अपवर्जयति । स्रिधः=शोषकान्, अप उच्छत्=अपवर्जयति ।

हिन्दी अनुवाद—सम्पूर्ण जंगम प्राणियों का समूह इसके देखने के लिये नमस्कार करता है । सुन्दरी उषा देवी प्रकाश को उत्पन्न करती है । धनों से सम्पन्न अन्तरिक्ष की पुत्री उषा देवी द्वेष करने वालों को तथा शोषण करने वालों को दूर करती है ।

शब्दार्थ—विश्वम्=सम्पूर्ण, जगत्=जंगम प्राणियों का समूह, ननाम=नमस्कार करता है, चक्षसे=देखने के लिये, सूनरी=सुन्दरी, ज्योतिः=प्रकाश कृणोति=करती है या उत्पन्न करती है, द्वेषः=द्वेष करने वालों को, मघोनी=धनवती, दिवः=अन्तरिक्ष लोक की, दुहिता=पुत्री, स्रिधः=शोषण करने वालों को, अपउच्छत्=दूर करती है ।

व्याकरण—

नानाम—यहाँ पर संहिता में "अन्येषामपि दृश्यते" के अनुसार अभ्यास का दीर्घ हुआ है ।

चक्षसे—चक्ष् धातु से तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में "तुमर्थे सेसेनसेऽसेन्०" (३।४।९) इत्यादि सूत्र से 'से' प्रत्यय ।

स्रिधः—स्रिध्+क्विप्। द्वितीया विभक्ति का बहुवचन।
विशेष—छन्द—बृहती।

उष आ भाहि भानुना
चन्द्रेण दुहितर्दिवः।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्य सौभगम्
व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—दिवः दुहितः उषः! अस्मभ्यम् भूरि सौभगम् आवहन्ती, दिविष्टिषु व्युच्छन्ती चन्द्रेण भानुना आ भाहि।

संस्कृत व्याख्या—दिवः दुहितः उषः=हे द्युलोकस्य पुत्रि उषः देवि!, अस्मभ्यम्=स्तोतृभ्य, भूरि=अत्यधिकम्, सौभगम्=सौभाग्यम्, आवहन्ती=सम्पादयन्ती, दिविष्टिषु=प्रतिदिनम्, व्युच्छन्ती=प्रकाशमाना, चन्द्रेण=सर्वेषामाह्लादकेन भानुना=प्रकाशेन, आभाहि=समन्तात् प्रकाशस्व।

हिन्दी अनुवाद—हे आकाश की पुत्री उषा? हमारे लिये अत्यधिक सौभाग्य को सम्पादित करती हुई तथा प्रतिदिन प्रकाशित होती हुई अपने आह्लादक प्रकाश से प्रकाशित होओ।

शब्दार्थ—अस्मभ्यम् हमारे लिये, भूरि=अत्यधिक, सौभगम्=सौभाग्य को, आवहन्ती=सम्पादित करती हुई, दिविष्टिषु=प्रतिदिन, व्युच्छन्ती=प्रकाशित होती हुई, चन्द्रेण=आह्लादक, भानुना=प्रकाश से, आ भाहि=प्रकाशित होओ।

व्याकरण—

आ भाहि—आ+भा, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) दिविष्टिषु के भिन्न-भिन्न विद्वानों ने पृथक्-पृथक् अर्थ किये हैं—

सायण—प्रतिदिन।

मैक्समूलर एवं गेल्डनर—Daily Sacrifice.

ग्रासमान—Wishing for heaven Prayer.

ग्रिफिथ—Solomn rite.

(२) छन्द—बृहती।

विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतये
ऽन्तरिक्षादुषस्त्वम्।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य
मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—उषः ! त्वम् सोमपीतये विश्वान् देवान् अन्तरिक्षात् आ वह । उषः ! सा (त्वम्) अस्मासु गोमद् अश्ववद् उक्थ्यम् सुवीर्यम् वाजम् धाः ।

संस्कृत व्याख्या—उषः = हे देवि उषः ! त्वम् सोमपीतये = सोमपानाय, विशान् = सर्वान् देवान् = अमर्त्यान्, अन्तरिक्षात् = अन्तरिक्षालोकात्, आवह = यज्ञ-स्थानं प्रापय । उषः ! सा = तादृशी त्वम्, अस्मासु = प्रशंसकेषु, गोमद् = गोमन्तम्, अश्ववद् = अश्वैः समान्वितम्, उक्थ्यम् = प्रशंसार्हम्, सुवीर्यम् = वीर्योपेतम्, वाजम् = धनम्, धाः = निधेहि ।

हिन्दी अनुवाद—हे उषा ! तुम सोमपान करने के लिये सभी देवताओं को अन्तरिक्ष लोक से ले आओ । हे उषा ! वह तुम हमें गायों वाले, घोड़ों वाले, प्रशंसनीय एवं सुन्दर पराक्रमयुक्त धन को प्रदान करो ।

शब्दार्थ—विश्वान् = सभी, देवान् = देवताओं को, आवह = ले आओ, सोमपीतये = सोमपान करने के लिये, धाः = धारण कराओ या प्रदान करो, गोमत् = गायों वाला, अश्वावत् = घोड़ों वाला, उक्थ्यम् = प्रशसनीय, वाजम् = धन को, सुवीर्यम् = पराक्रम युक्ता ।

व्याकरण

धाः— धा धातु से 'छन्दसि लुङ्लङ्लिटः' के अनुसार प्रार्थना अर्थ में लुङ्-लकार तथा अड् आगम का अभाव। मध्यम पुरुष, एकवचन ।

अश्वावत्—अश्व + मतुप् । 'मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रियस्य' के अनुसार अश्व के व कार का छान्दस दीर्घ ।

सुवीर्यम्—शोभनं वीर्यं यस्य (बहुव्रीहि समास) ।

विशेष—(१) छन्द—बृहती ।

यस्या रुशन्तो अर्चयः
प्रति भद्रा अदृक्षत ।
स नो रयिं विश्ववारं सुपेशस-
मुषा ददातु सुग्म्यम् ॥१३॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्

अन्वयः—यस्याः रुशन्तः भद्राः अर्चयः प्रति अदृक्षत, सा उषा नः विश्ववारम् सुपेशसम् सुग्म्यम् रयिम् ददातु ।

संस्कृत व्याख्या—यस्याः = उषसः, रुशन्तः = शत्रून् हिंसन्तः प्रकाशमानाः वा, भद्राः = कल्याणाः, अर्चयः = रश्मयः, प्रति अदृक्षत = प्रति दृश्यते, सा उषा = तादृशी देवी उषा, नः = अस्माकम्, विश्ववारम् = सर्ववरणीयम्, सुपेशसम् = सुरूपम्, सुग्म्यम् = सुलभ्यम्, रयिम् = धनम्, ददातु = अर्पयतु ।

हिन्दी अनुवाद—जिसकी शत्रुओं को नष्ट करने वाली अथवा चमकती हुई कल्याणकारी किरणें दिखायी पड़ रही हैं, वह उषा देवी हमें सभी के द्वारा अभिलषणीय, सुन्दर रूप वाले, आसानी से प्राप्त धन को प्रदान करे।

शब्दार्थ—रुशन्त:=शत्रुओं को नष्ट करती हुईं या चमकती हुईं, अर्चय:=किरणें भद्रा:=कल्याणकारी, प्रतिअदृक्षत=दिखाई पड़ रही हैं, रयिम्=धन को, विश्ववारम्=सभी के द्वारा अभिलषणीय, सुपेशसम्=सुन्दर रूप वाले, सुग्म्यम्=आसानी से प्राप्त करने योग्य, ददातु=प्रदान करें।

व्याकरण—

अदृक्षत—दृश् धातु; लुङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

सुग्म्यम्—सुष्ठुगन्तव्य: सुग्म:→सु+गम्+क। 'गमहनजन०' इत्यादि से उपधालोप। तत्र भवम् अर्थ में यत् प्रत्यय।

विशेष (१) रुशन्त—का अर्थ सायण के अनुसार मारते हुये (शत्रुओं को), विल्सन के अनुसार उज्ज्वल, मैक्समूलर के अनुसार लाल और पीटर्सन के अनुसार चमकती हुई किया गया है।

(१) छन्द—बृहती।

सूर्य सूक्त

(ऋग्वेद १/११५) (मेरठ, गोरखपुर, रुहेल० आगरा, गढ़०)

सूर्यो देवीमुषसं रोचमाना
मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि
वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्॥१२॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के सूर्य सूक्त से उद्धृत है। इस सूक्त में सरस काव्यत्मक ढंग से सूर्य देव की स्तुति की गई है। अधिकांश वर्णन भौतिक सूर्य के समान है। इस सूक्त के ऋषि कुत्स और देवता सूर्य हैं।

अन्वय:—सूर्य: रोचमानाम् देवीम् उषसम् पश्चात् मर्य: योषाम् न अभ्येति यत्र देवयन्त नर: प्रतिभद्राय भद्रम् युगानि वितन्वते।

संस्कृत व्याख्या—सूर्य:=सूर्यदेव:, रोचमानाम्=प्रकाशमानाम्, देवीम्=दानादिगुण-सम्पन्नाम्, उषसम्=एतन्नामकां देवीम्, पश्चात्=अनुसरन्, मर्य:=नर:, योषाम्=युवतीम्, न=इव, अभ्येति=अनुगच्छति। यत्र=यस्यामुषसि जातायाम्, देवयन्त:=सूर्यं यष्टुमिच्छन्त:, नर:=जना: यजमाना:, प्रतिभद्राय=कल्याणफलं प्राप्तुम्, भद्रंयुगानि=कल्याणकर्म, वितन्वते=विस्तारयन्ति।

हिन्दी अनुवाद—सूर्य प्रकाशमान देवी उषा के पीछे-पीछे उसी प्रकार अनुकरण करता है जैसे मनुष्य युवती का। जिस उषा के उदित हो जाने पर सूर्य के उपासक के यजमान लोक कल्याणकारी फल प्राप्त करने के लिये कल्याणकारी कर्म को करते हैं।

शब्दार्थ—रोचमानाम्=प्रकाशमान्, मर्यः=मनुष्य, योषाम् न=युवती की तरह, यत्र=जहाँ (उषा के उदित हो जाने पर), देवयन्तः=सूर्य के उपासक, युगानि=कर्मों को, प्रतिभद्राय=कल्याणकारी फल प्राप्त करने के लिये, भद्रम्=कल्याणकारी, वितन्वते=सम्पन्न करते हैं।

व्याकरण—

मर्य—मृ (प्राणत्यागे), वेद में निपातनात् यत् प्रत्यय।

अभ्येति—अभि+इण् (गतौ) लट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन।

विशेष—(१) मन्त्र के उत्तरार्ध की सायण ने अनेक प्रकार से व्याख्या की है—१ कल्याणकारी फल प्राप्त करने के लिए कल्याणकारी कर्मों को करते हैं, २. कल्याण फल की प्राप्ति के लिये हलों के जुओं को जोतते हैं और ३. यजमान पत्नियों के साथ होकर अपने कल्याण के लिये अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं।

(२) रॉथ ने युगानि का अर्थ जुआ किया है। ग्रासमान ने भी युगानि वितन्वते का अर्थ जुआ खेलते है (To unyoke) करते हैं।

(३) प्रकृत मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है। इनमें ११-११ वर्णों के चार पाद होते हैं।

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं
मध्या कर्तोविततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्था-
द्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥१४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्

अन्वयः—सूर्य तत् देवत्वम्, तत् महित्वम्, कर्तोः मध्या विततम् सं जभार। यदा इत् हरितः सधस्थात् अयुक्त आत् रात्री सिमस्मै वासः तनुते।

संस्कृत व्याख्या—सूर्यस्य=आदित्यस्य, तत् देवत्वम्=स्वामित्व, तत् महित्वम्=माहात्म्यम, यत् कर्तो=कर्मणः, मध्या=मध्ये, विततम्=विस्तीर्ण स्वकीय रश्मिजालम्, सं जभार=उपसहरति। यदा=यस्मिन् समये, इत्=निश्चयार्थकमव्ययपदम्, हरितः=हरिदश्वान्, सधस्थात्=रथात्, अयुक्त=अमुञ्चत्, आत्=तत्पश्चात्, रात्री=निशा, सिमस्मै=सर्वस्मै ससाराय, वासः=अन्धकारम्, तनुते=विस्तारयति।

हिन्दी अनुवाद-सूर्यदेव का वह स्वामित्व (स्वातन्त्र्य) और वह माहात्म्य है कि कार्य करने वालों के कर्म के मध्य फैले हुए किरणों के समूह को समेट लेता है।

जब निश्चय ही सूर्य अपने हरित् घोड़ों को रथ से खोलता है तो इसके बाद रात्रि सम्पूर्ण संसार के लिये अन्धकार फैला देती है।

शब्दार्थ—देवत्वम्=स्वामित्व या स्वातन्त्र्य, महित्वम्=महत्व, मध्या=मध्य में, कर्तोः=कार्य करने वाले के कर्म के, विततम्=विस्तीर्ण, सं जभार=समेट लेता है, यदा=जब, अयुक्त=खोलता है, सधस्थात्=रथ से, आत्=इसके बाद, वासः=अन्धकार को, तनुते=फैला देती है, सिमस्मै=सम्पूर्ण संसार के लिये।

व्याकरण—

मध्या—मध्ये के स्थान पर प्रयुक्त सप्तमी विभक्ति के एकवचन का एक वैदिक रूप।

अयुक्त—युजिर् धातु लङ् लकार प्रथम पुरुष एक वचन का एक रूप युक्त के साथ नञ् का योग न+युक्त।

सिमस्मै—सर्व स्थानापन्न सिम वैदिक रूप का चतुर्थी एकवचन।

विशेष—(१) गेल्डनर ने सिमस्मै का अर्थ स्वयं के लिये किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुष्।

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य
निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता
मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—देवाः! अद्य सूर्यस्य उदिता अंहसः निष्पिपृत, अवद्यात् निष्पिपृत। नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम्।

संस्कृत व्याख्या—देवाः!=हे द्योतमानाः, सूर्यरश्मयः, अद्य=अस्मिन् दिवसे, सूर्यस्य=आदित्यस्य, उदिता=उदिते सति, अंहसः=पापात्, निष्पिपृत=मोचयतु। नः=अस्माकम्, तत्=प्रार्थनाम्, मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौ एते षड्संख्यकाः देवविशेषाः मामहन्ताम्=अनुमन्यन्ताम्।

हिन्दी अनुवाद—हे प्रकाशमान सूर्य की किरणो! आज सूर्य के उदित हो जाने पर (हमें) पाप से मुक्त करो, निन्दनीय कार्यों से छुड़ाओ। हमारी उस प्रार्थना का मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ देवता अनुमोदन करें।

शब्दार्थ—देवाः=प्रकाशमान सूर्य की किरणें, उदिता=उदित हो जाने पर, अंहसः=पाप से, अवद्यात्=निन्दनीय कर्म से, निष्पिपृत=छुड़ाओ, नः=हमारी, मामहन्ताम्=अनुमोदन करें।

व्याकरण—

अद्या—वैदिक दीर्घ ।

उदिता—उदित शब्द से सप्तमी विभक्ति के एकवचन का वैदिक रूप ।

पिपृता—पृ धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, बहुवचन। छान्दस दीर्घ ।

मामहन्ताम्—मह् धातु, धातु, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन ।

विशेष—(१) पीटरसन ने अंह सः का अर्थ भय से तथा अवघात् का अर्थ पापकर्मजन्य लज्जा से किया है ।

(२) छन्द की दृष्टि से सूर्यस्य के स्थान पर 'सूरियस्य' उच्चारण होगा ।

(३) छन्द—त्रिष्टुप् । ●

अग्निसूक्त

(ऋग्वेद १।१४३) **(मेरठ, गोरखपुर)**

स जायमानः परमे व्योम-
न्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना
प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥२॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के अग्नि सूक्त से उद्धृत है। अग्नि ऋग्वेद के प्रमुख देवता है। २०० सूक्तों में इसकी स्तुति की गयी है। वे आहुतियों के ग्रहीता एवं प्रकाश के अधिष्ठाता हैं। प्रकृत सूक्त के ऋषि दीर्घतमा तथा देवता अग्नि हैं।

अन्वयः—जायमानः सः अग्निः परमे व्योमनि मातरिश्वते आविरभवत् । सामिधानस्य अस्य मज्मना क्रत्वा शोचिः पृथिवी प्र अरोचयत् ।

संस्कृत व्याख्या—जायमानः = उत्पद्यमानः, सः = प्रसिद्धः, अग्नि = अग्नि-देवः, परमे = उत्कृष्टे, व्योमनि = आकाशे, मातरिश्वने = वायवे यजमानाय वा, आविरभवत् = प्रत्यक्षोऽभूत् । समिधानस्य = इन्धनैः संवर्धमानस्य, अस्य = अग्नेः, मज्मना = बलवता, क्रत्वा = कर्मणा, शोचिः = दीप्तिः, द्यावा पृथिवी = द्युलोकं पृथिवीलोकं च, प्रारोचयत् = प्रादीपयत् ।

हिन्दी अनुवाद—उत्पन्न होता हुआ वह अग्नि उत्कृष्ट आकाश में वायु के लिये या यजमान के लिये प्रकट हुआ था। इन्धनों से जलते हुये इस अग्नि के बलवान् कर्म की चमक ने द्युलोक और पृथिवी लोक को प्रकाशित किया है।

शब्दार्थ—जायमानः = (अरणियों से) उत्पन्न होता हुआ, परमे = उत्कृष्ट, व्योमनि = आकाश में, आविरभवत् = प्रकट हुआ था, मातरिश्वेने = वायु या यजमान के लिये, क्रत्वा = कर्म से समिधानस्य = प्रज्वलित होते हुए, मज्मना = बलवान् शोचिः = चमक ने, प्र अरोचयत् = प्रकाशित किया था ।

व्याकरण—

व्योमनि—वि उपसर्ग पूर्वक अव् (रक्षार्थक) धातु से मनिन् प्रत्यय—व्योमन्। सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

मातरिश्वने—मातरि श्वसिति इति मातरिश्वन् (निपातनात् सिद्ध)। चतुर्थी विभक्ति, एकवचन।

क्रत्वा—क्रतु शब्द तृतीया विभक्ति एकवचन का वैदिक रूप।

समिधानस्य—सम्+इन्ध्—शानच्। धातु के न् का वैदिक लोप।

विशेष—(१) पीटर्सन के अनुसार मातरिश्वा का अर्थ वायु या यजमान नहीं है। उनके अनुसार वह एक अर्ध देवता (Demi-god) है, जो कभी द्युलोक में और कभी पृथिवीलोक पर रहता है।

(२) छन्द की दृष्टि से 'व्योमनि' का उच्चारण 'विओमनि' होगा।

(३) प्रस्तुत मन्त्र में जगती छन्द है। इसमें बारह-बारह वर्णों के चार पाद होते हैं।

02

न यो वराय मरुतामिव स्वनः
सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति
योधो न शत्रून्स वना न्यृञ्जते॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्

अन्वयः—मरुताम् स्वनः इव, सृष्टा सेना इव, दिव्या अशनिः यथा यः अग्निः वराय न। (स) तिगितैः अत्ति, भर्वति। योधः शत्रून् न सः वना निऋञ्जते।

संस्कृत व्याख्या—मरुताम्=पवनानाम्, स्वनः=गर्जनम्, इव=यथा, सृष्टा=शत्रुनाशार्थमभिसृष्टा, सेना=सैन्यम्, इव=यथा, दिव्या=अन्तरिक्षे भवा, अशनिः=वज्रम् विद्युद् वा, यथा=इव, यः अग्निः वराय=योऽग्निरावरणाय अवरोधाय वा, न=नहि भवति। (सः=अग्निः) तिगितैः=तीक्ष्णैः, जम्भैः=दन्तैः ज्वालाभिर्वा, अत्ति=विरोधिनः भक्षयति, भर्वति=हिनस्ति। योधः=प्रहारकर्ता शूरः शत्रून्=विरोधिजनान्, न=इव, सः=अग्निः, वना=अरण्यानि, निऋञ्जते=दहति।

हिन्दी अनुवाद—हवाओं की गर्जना के समान, शत्रुओं की तरफ भेजी गई सेना के समान और दिव्य वज्र या बिजली के समान जो अग्नि रोका नहीं जा सकता है, (वह) तीक्ष्ण दाँतों या ज्वालाओं से (सबको) खा डालता है, चबा डालता है। वह वनों को उसी प्रकार जला डालता है, जिस प्रकार योद्धा शत्रुओं को मार डालता है।

शब्दार्थ—न वराय=रोका नहीं जा सकता है, मरुताम्=हवाओं की, स्वनः=गर्जना, सृष्टा=भेजी गई, अशनिः=वज्र या बिजली, जम्भैः=दांतों से या ज्वालाओं से, तिगितैः=तीक्ष्ण, अत्ति=खा लेता है, भर्वति=चबा लेता है, न=समान, नि ऋञ्जते=जला डालता है।

व्याकरण--

ऋञ्जते—ऋजि→ ऋञ्ज् धातु, लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

तिगितैः—तीक्ष्ण के स्थान पर वैदिक तिगित निपातनात् सिद्ध। तृतीया विभक्ति, बहुवचन।

भर्वति— भर्व (हिंसार्थक) धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) छन्द की पूर्ति के लिये दिव्या के स्थान पर दिविया और न्यृञ्जते के स्थान पर नि ऋञ्जते पाठ का उच्चारण होगा।

(२) छन्द—जगती।

घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षद
मग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्य
च्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥७॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—समिधानः घृतप्रतीकम् वः ऋतस्य धूर्षदम् अग्निम् मित्रम् न ऋञ्जते। इन्धानः अक्रः विदथेषु दीद्यत् नः धियम् शुक्रवर्णाम् उदु यंसते।

संस्कृत व्याख्या—समिधानः=इध्मैः प्रदीप्यमानः, घृतप्रतीकम्=घृतेन परिवर्धितम् अथवा दीप्तज्वालाम्, वः=युष्माकम्, ऋतस्य=यज्ञस्य, धूर्षदम्=भारवाहकम्, अग्निम्=अग्निदेवम्, मित्रम् न=मित्रवत्, ऋञ्जते=प्रसाधयति। इन्धानः=इन्धनैः प्रदीप्तः, अक्रः=अन्यैः अनाक्रान्तः, विदथेषु=यज्ञेषु, दीद्यत्=दीप्यमानः, नः=अस्माकम्, धियम्=प्रज्ञाम्, शुक्रवर्णाम्=उज्ज्वलवर्णाम्, उदु यंसते=उद्योतयति।

हिन्दी अनुवाद—समिधाओं से प्रदीप्त, घृत के द्वारा परिवर्धित अथवा प्रदीप्त ज्वालाओं वाले, तुम्हारे यज्ञ के भार को वहन करने वाले अग्नि देवता को मित्र के समान प्रसाधित (या आत्मरूप) कर लेता है। ईंधन से प्रदीप्त, दूसरों से अनाक्रान्त, यज्ञों में प्रकाशमान वह अग्नि हमारी बुद्धि को उज्ज्वल वर्ण वाली बना देता है।

शब्दार्थ—घृतप्रतीकम्=घृत के द्वारा प्रतिवर्धित, ऋतस्य=यज्ञ का, धूर्षदम्=भारवाहक, समिधानः=समिधाओं से प्रदीप्त, ऋञ्जते=आत्मरूप कर लेता है, इन्धानः=इन्धन से प्रदीप्त, अक्रः=दूसरों से अनाक्रान्त, विदथेषु=यज्ञों

में, धियम्=बुद्धि को, शुक्रवर्णाम्=उज्ज्वल वर्ण वाली, उदु यंसते=उन्नत बना देता है।

व्याकरण—

धूर्षदम्—धुर्+सद्+अच्। द्वितीया विभक्ति के एकवचन का रूप।

विदथेषु—विद्+अथच् अथवा वि+धा धातु। सप्तमी विभक्ति के बहुवचन का रूप।

यंसते—यम् धातु का लट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

विशेष - (१) ओल्डनवर्ग ने ऋतस्य धूर्षदम् का अर्थ The charioteer of Rita ऋत का सारथि किया है।

(२) छन्द की अनुकूलता से दीद्यत् को दीदियत् पढ़ना चाहिये।

(३) छन्द—जगती।

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने
शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टे-
ऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥८॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—अग्ने! अप्रयुच्छन् अप्रयुच्छद्भिः शिवेभिः शग्मैः पायुभिः नः पाहि। इष्टे! अदब्धेभिः अदृपितेभिः अनिमिषद्भिः नः जाः परि पाहि।

संस्कृत व्याख्या—अग्ने!=हे अग्निदेव! अप्रयुच्छन्=अप्रमाद्यन्, अप्रयुच्छद्भिः=अप्रमाद्यद्भिः, शिवेभिः=कल्याणकारकैः, शग्मैः=सुखकारकैः, पायुभिः=रक्षणैः, नः=अस्माकम्, पाहि=रक्ष। इष्टे=हे अग्ने!, अदब्धेभिः=अहिंसितैः, अदृपितेभिः=अपरिभूतैः, अनिमिषद्भिः=आलस्यरहितैः उपायैः, नः=अस्माकम्, जाः=प्रजाः पुत्रपौत्रादिकमिति भाव, परिपाहि=सर्वतः रक्ष।

हिन्दी अनुवाद—हे अग्निदेव! प्रमाद न करते हुए तुम प्रमाद न करने वाले कल्याणकारी एवं सुखकारी रक्षा उपायों से हमारी रक्षा करो। हे अग्निदेव! हिंसित न होने वाले, परिभूत न होने वाले और आलस्यहीन उपायों से हमारी प्रजाओं-सन्तानों की सभी तरह से रक्षा करो।

शब्दार्थ—अप्रयुच्छन्=प्रमाद न करते हुये, अप्रयुच्छद्भिः=प्रमाद न करने वाले, शिवेभिः=कल्याण करने वाले, शग्मैः=सुख प्रदान करने वाले, पायुभिः=रक्षण उपायों से, नः=हमारी, पाहि=रक्षा करो, अदब्धेभिः=हिंसित न होने वाले, अदृपितेभिः=परिभूत न होने वाले, अनिमिषद्भिः=आलस्यहीन, इष्टे=हे अग्ने!, जाः=सन्तानों की, परिपाहि=सभी तरह से रक्षा करो।

व्याकरण—

शग्मै:—शक् धातु से वैदिक म प्रत्यय→सग्म। तृतीया विभक्ति के बहुवचन का रूप।

शिवेभि:, अदब्धेभिः, अतृपितेभिः—तृतीया विभक्ति के बहुवचन के वैदिक रूप। लोक में शिवैः आदि रूप होंगे। छान्दस होने से यहाँ भिस् को ऐस् आदेश नहीं हुआ है।

पाहि—पा धातु से लोट्‌लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

जाः—जन् (प्रादुर्भावे) ड+टाप्=जा। द्वितीया विभक्ति बहुवचन।

विशेष—(१) रॉथ 'शग्मै' का अर्थ 'सहायक' करते हैं।

(२) तृतीया पाद में '–रिष्टेऽनिमिषद्भिः' के स्थान पर '–रिष्टे-अनिमिषद्भिः' उच्चारण करना चाहिये।

(३) छन्द—त्रिष्टुप्। इसमें ११–११ वर्ण के चारों पाद होते हैं।

विष्णु सूक्त

(ऋग्वेद १/१५४) (मेरठ M. A. B. A. Hons रुहे॰ गढ़०, अवध)

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणे
ष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वाः ॥२॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के विष्णु सूक्त से उद्धृत है। ऋग्वेद में यद्यपि विष्णु के लिये केवल ५ सूक्तों में ही स्तुति की गई है, तथापि वह एक प्रधान देवता है। मानवाकृति के रूप में उसकी तीन डगों का प्रधानतया वर्णन हुआ है। इस सूक्त के ऋषि दीर्घतमा और देवता विष्णु है।

अन्वयः—यस्य उरुषु त्रिषु विक्रमणेषु विश्वा भुवनानि अधिक्षियन्ति, तत् विष्णुः वीर्येण भीमः कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न प्रस्तवते।

संस्कृत व्याख्या—यस्य=विष्णोः, उरुषु=विस्तीर्णेषु, त्रिषु=त्रिसंख्यकेषु, विक्रमणेषु=चरणप्रक्षेपेषु, विश्वा=सर्वाणि, भुवनानि=प्राणिजातानि, अधिक्षियन्ति =निवसन्ति, तत्=सः प्रसिद्धः, विष्णुः=विष्णुदेवः, वीर्येण=पराक्रमेण [illegible]= भयानकः, कुचरः=कुत्सित हिंसादिकारकः पृथिव्यां विचरणकर्ता वा, गिरिष्ठाः= पर्वते निवासकर्ता, मृगः=पशुः सिंह इत्यर्थः, न=इव, प्रस्तवते=प्र[illegible]ण स्तूयते।

हिन्दी अनुवाद—जिस विष्णु देवता की तीन डगों में सभी लोक निवास करते हैं, वह विष्णु अपने वीरतापूर्ण कार्यों के द्वारा भयानक, कुत्सित हिंसा आदि

कार्य करने वाले (या पृथिवी पर विचरण करने वाले) तथा पर्वत पर निवास करने वाले पशु (सिंह) के समान स्तुति को प्राप्त होता है।

शब्दार्थ—स्तवते=स्तुति किया जाता है, वीर्येण=वीरतापूर्ण कार्य के द्वारा, मृग:=पशु, भीम:=भयानक, कुचर:=कुत्सित हिंसादि का आचरण करने वाला अथवा पृथिवी पर विचरण करने वाला, गिरिष्ठा:=पर्वत पर निवास करने वाला, उरुषु=विस्तीर्ण, विक्रमणेषु=कदमों या डगों में, विश्वा=सम्पूर्ण, भुवनानि=लोक, अधिक्षियन्ति=निवास करते हैं।

व्याकरण—

विश्वा—प्रथमा विभक्ति के बहुवचन का वैदिक रूप। लोक में भुवनानि के विशेषण के लिये विश्वानि प्रयुक्त होगा।

विक्रमणेषु—वि+क्रम् (पादविक्षेपे)+ल्युट्→अन=विक्रमण। सप्तमी विभक्ति के बहुवचन का रूप।

विशेष—(१) पीटर्सन ने 'कुचर:' का अर्थ 'स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने वाला' किया है।

(२) पिटर्सन एवं मैक्डानल ने 'गिरिष्ठा:' का अर्थ 'पर्वतों पर विचरण करने वाला' किया है।

(३) छन्द के अनुसार 'वीर्येण' को 'वीरियेण' तथा 'विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति' को 'विक्रमणेषु अधिक्षियन्ति' पढ़ना चाहिये।

(४) छन्द—त्रिष्टुप्। इसके चारों पादों में ११-११ वर्ण होते हैं।

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदा
न्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्या
मेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वय:—यस्य मधुना पूर्णा त्री पदानि अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति, य: उ एक: पृथिवीम् द्याम् उत त्रिधातु, विश्वा भुवनानि दाधार।

संस्कृत व्याख्या—यस्य=विष्णो:, मधुना=मधुरेणामृतेन, पूर्णा=पूर्णानि, त्री=त्रीणि, पदानि=चरणक्षेपणानि, अक्षीयमाणा=अक्षीयमाणानि, स्वधया=अन्नेन, मदन्ति—आनन्दयन्ति, य:=विष्णुदेव:, उ=पदपूरणार्थ: निपात:, एक:=एकाकी एव, पृथिवीम्=पृथिवीलोकम्, द्याम्=द्युलोकम्, उत=च, त्रिधातु=पृथिव्यप्तेजांसि, विश्वा=सम्पूर्णानि, भुवनानि=लोकजातानि, दाधार=धृतवान्।

हिन्दी अनुवाद—जिस विष्णु के अमृत से परिपूर्ण तीन कदम कभी क्षीण न होते हुये, अन्न से आनन्दित करते हैं और जिसने अकेले ही पृथिवी, लोक,

द्युलोक, तीन धातुओं (पृथिवी, जल, तेज) तथा सम्पूर्ण लोकों को धारण किया है।

शब्दार्थ—पूर्णा=भरे हुए, मधुना मधुर अमृत से, अक्षीयमाणा=कभी क्षीण न होते हुए, स्वधया=अन्न से, मदन्ति=आनन्दित करते हैं, त्रिधातु=पृथिवी, जल और तेज इन तीन धातुओं को, विश्वा=सम्पूर्ण, एकः=अकेले ही, दाधार=धारण किया है।

व्याकरण—

त्री—त्रि शब्द से प्रथमा विभक्ति का बहुवचन। विभक्ति का लोप तथा दीर्घ। वैदिक प्रयोग।

मदन्ति—मदयन्ति या माद्यन्ति के स्थान पर छान्दस प्रयोग।

पूर्णा—पूर्णानि के स्थान पर प्रयुक्त वैदिक रूप।

विश्वा—विश्वानि के स्थान पर प्रयुक्त वैदिक रूप।

विशेष—(१) सायण ने स्वधा का अर्थ अन्न, मैक्डानल ने शक्ति तथा राँथ ने मधुर पेय आदि अनेक अर्थ किये हैं।

(२) छन्द के सौष्ठव के लिये 'पदान्यक्षीयमाणा' के स्थान पर 'पदानि अक्षीयमाणा' पाठ का उच्चारण होगा।

(३) छन्द—त्रिष्टुप्।

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां
नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था
विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—अस्य प्रियम् तत् पाथः अभि अश्याम्, यत्र देवयवः नरः मदन्ति। उरुक्रमस्य विष्णोः परमे पदे मध्व उत्सः। इत्था सः हि बन्धु।

संस्कृत व्याख्या—अस्य=विष्णुदेवस्य, प्रियम्=प्रियरूपम्, तत्=प्रसिद्धम्, पाथः=अन्तरिक्षलोकम्, अभिश्याम्=प्राप्नुयाम्, यत्र=यस्मिन् स्थाने, देवयवः=विष्णुभक्ताः,=विष्णुदेवमात्मने इच्छन्तः वा, नरः=जनाः, मदन्ति=आनन्दमनुभवन्ति। उरुक्रमस्य=व्यापकचरणस्य महत्पराक्रमशीलस्य वा, विष्णोः=विष्णुदेवस्य, परमे=उत्कृष्टे, पदे=स्थाने, मध्व=मधुरस्यामृतस्य, उत्स=निष्यन्तः अस्तीति शेषः। इत्था=अनेन प्रकारेण, सः=विष्णुः, हि=निश्चयेन, बन्धुः=सर्वेषां बन्धुभूतोऽस्ति।

हिन्दी अनुवाद—इस विष्णु के उस प्रिय अन्तरिक्ष लोक को प्राप्त करूँ, जहाँ विष्णुभक्त (विष्णु देव को चाहने वाले) लोग आनन्द का अनुभव करते हैं। विशाल डगों या पराक्रम वाले विष्णु के उत्कृष्ट स्थान में अमृत का स्रोत है। इस प्रकार निश्चय ही वह वह सबका बन्धु है।

शब्दार्थ—पाथ: = अन्तरिक्ष लोक को, अभिश्याम् = प्राप्त करूँ, देवयव: = देव विष्ण के चाहने वाले, उरुक्रमस्य = विशाल डगों या परिक्रम वाले, परमे = उत्कृष्ट, पदे = स्थान में, मध्व: = अमृत का, उत्स = स्रोत, इत्या = इस प्रकार, हि = निश्चय ही।

व्याकरण—

अश्याम्—अश् धातु आशिषि लिङ्ग लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन।

इत्था—इत्थम् का वैदिक रूप।

मध्व—मधु शब्द, षष्ठी विभक्ति एकवचन। लोक में मधुन: रूप होगा।

विशेष—(१) शिशेल ने इत्था का अर्थ 'यह' करके इत्था बन्धु का अर्थ This is Society of friends (यह मित्रों का समाज है) किया है।

(२) यास्क ने पाथ: के तीन अर्थ माने हैं—'पाथ: अन्तरिक्षम्। उदकमपि पाथ: उच्यते। उन्नमपि पाथ: उच्यते।' लोक में इसका अर्थ जल है।

(३) छन्द—त्रिष्टुप्।

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै
यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयास:।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्ण:
परमं पदमव भाति भूरि ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वय:—वाम् ता वास्तूनि गमध्यै उश्मसि, यत्र भूरिशृङ्गा: अयास: गाव:। अत्र अह उरुगायस्य वृष्ण: तत् परमम् पदम् भूरि अव भाति।

संस्कृत व्याख्या—वाम् = युष्मदर्थम्, ता = तानि प्रसिद्धानि, वास्तूनि = निवासस्थानानि, गमध्यै = गमनाय, उश्मसि = कामयामहे, यत्र = यस्मिन् स्थाने, भूरिशृङ्गा = उन्नतशृङ्गा। बहुप्रकाशयुक्ता: वा, अयास: = सततं गतिशीला, गाव: = धेनव: रश्मय: वा सन्तीति शेष:। अत्र = अस्मिन् द्युलोके, अह = खलु, उरुगायस्य = बहुभि: माहात्म्यमाभिगातव्यस्य विशालगते: वा, वृष्ण: = कामनां वर्षितु, तत् = प्रसिद्धम्, परमम् = उत्कृष्टम्, पदम् = स्थानम्, भूरि = प्रभुतम्, अवभाति = प्रकाशति।

हिन्दी अनुवाद—(हे यजमान और उसकी पत्नि!) तुम्हारे लिये उन स्थानों पर जाने की हम कामना करते हैं, जहाँ बड़े-बड़े सींगों वाली एवं तेज गति वाली गायें अथवा अत्यन्त प्रकाश वाली गतिशील किरणें हैं। इस लोक में अत्यन्त प्रशंसनीय या तेज गति वाले या कामनाओं को पूरा करने वाले विष्णु का वह परम पद अत्यन्त प्रकाशित हो रहा है।

शब्दार्थ—वाम् = दोनों तुम्हारे लिये, वास्तूनि = स्थानों, उश्मसि = चाहते हैं, गमध्यै = जाने के लिये, गाव: = (१) गायें (२) किरणें, भूरिशृङ्गा = बड़े-बड़े

सींगों वाली (२) अत्यन्त प्रकाश वाली, अयासः=तेज गति वाली, उरुगायस्य=(१) अत्यन्तप्रशंसनीय (२) विशाल गति वाले, वृष्णः=कामनाओं को पूरा करने वाले, भूरि=अत्यधिक, अवभाति=नीचे की ओर प्रकाशित हो रहा है।

व्याकरण—

ता—तानि के स्थान पर प्रयुक्त वैदिक रूप।

गमध्यै—गम् धातु से तुमुन् के अर्थ में 'तुमर्थे से सेनसे०'—सूत्र से' अध्यै (वैदिक) प्रत्यय।

वाम्—युवयोः का वैकल्पिक रूप। युष्मद् शब्द षष्ठी विभक्ति द्विवचन।

उश्मसि—वस् (कान्तौ) धातु से लट् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन का वैदिक रूप।

विशेष—(१) सायण वाम् का अर्थ यजमानदम्पत्ति, पाश्चात्य विद्वान् विष्णु एवं उसका साथी इन्द्र मानते हैं।

(२) सायण गावः का अर्थ किरणें तथा मैक्डानल एवं पीटरसन गायें मानकर भूरिशृंगा एवं अयासः की संगति करते हैं।

(३) छन्द—त्रिष्टुप्।

इन्द्र सूक्त

(ऋग्वेद २/१२) (मेरठ)

यो जात एवं प्रथमो मनस्वा-
न्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां
नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्र ॥१॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के इन्द्र सूक्त से उद्धृत किया गया है। इन्द्र वैदिक आर्यों का प्रमुखतम राष्ट्रीय देवता है। ऋग्वेद का लगभग चौथा हिस्सा २५० सूक्तों में इन्द्र की स्तुति की गयी है। इस सूक्त के ऋषि गृत्समद तथा देवता इन्द्र हैं।

अन्वयः—यः प्रथम. मनस्वान् देव. जातः एव क्रतुना देवान् पर्यभूषत्, यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्, जनास नृम्णस्य मह्ना सः इन्द्रः।

संस्कृत व्याख्या—यः इन्द्रः प्रथमः=प्रधानभूतः, मनस्वान्=बुद्धिमान, देवः=इन्द्रः जातः एव=जायमान एव, क्रतुना=स्वपराक्रमकर्मणा, देवान्=अन्यान् देवान्, पर्यभूषत्=अलङ्कृतमकरोत् पर्यभवत् वा। यस्य इन्द्रस्य, शुष्मात्=बलात्, रोदसी=द्यावापृथिवी, अभ्यसेताम्=अबिभीताम्, जनासः=हे जनाः असुराः

वा, नृम्णस्य =सैन्यस्य, मह्ना=महात्म्येन्, सः=उपर्युक्तः, इन्द्रः=इन्द्रदेवः अस्ति ।

हिन्दी अनुवाद—जिस प्रधान मनस्वी देवता ने उत्पन्न होते हैं अपने पराक्रम के द्वारा देवों को अलंकृत किया अथवा अतिक्रमण किया, जिसकी शक्ति से द्यावा पृथिवी कांपते या डरते थे, हे मनुष्यों अथवा असुरोः ! सेना के महत्व से युक्त वह इन्द्र है ।

शब्दार्थ—जात एव=उत्पन्न होते ही, प्रथमः=प्रधान, मनस्वान्=मनस्वी या बुद्धिमान=क्रतुना=पराक्रमपूर्ण कर्म से, पर्यभूषत्=अलंकृत किया या अतिक्रमण किया, शुष्मात्=बल से, रोदसी=द्यावापृथिवी, अभ्यसेताम्=डरते थे या कांपते थे, नृम्णस्य=सेना के, मह्ना=महत्व से, जनासः=हे मनुष्यों या हे असुरो ।

व्याकरण—

मह्ना—मह् धातु से इ प्रत्यय होकर महि शब्द बनता है । महि शब्द से तृतीया विभक्ति, एकवचन का रूप ।

अभ्यसेताम्—भ्यस् धातु लङ् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन ।

जनासः—प्रथम विभक्ति बहुवचन (सम्बोधन में) का रूप ।

विशेष—(१) मनस्वान् का अर्थ सायण ने मनस्वी, मैक्डानल ने बुद्धिमान तथा पीटर्सन ने भयानक किया है ।

(२) छन्द—त्रिष्टुप् । इसमें ११-११ वर्ण के चार पाद होते हैं ।

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंह-
यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो
यो द्यामस्तभ्नात्स जनासः इन्द्रः ॥२॥

प्रसंग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—यः व्यथमानाम् पृथिवीम् अदृंहत्, यः प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्, यः अन्तरिक्षम् वरीयः विममे, यः द्याम् अस्तभ्नात्, जनासः सः इन्द्रः ।

संस्कृत व्याख्या—यः=इन्द्रः, व्यथमानाम्=चलन्तीम्, पृथिवीम्=भूमिम्, अदृंहत्=स्थिरमकरोत्, यः=इन्द्रः, प्रकुपितान्=इतस्ततः चलितान्, पर्वतान्=गिरीन्, अरम्णात्=स्थापितमकरोत्, यः इन्द्रः, अन्तरिक्षम्=अन्तरिक्ष लोकम्, वरीय=विस्तृतम्, विममे=चकार, यः=इन्द्रः, द्याम्=द्युलोकम्, अस्तभ्नात्=निरुद्धमकरोत्, जनासः=हे मनुष्याः असुराः वा, सः=तादृशः, इन्द्रः=इन्द्रदेवः अस्ति ।

हिन्दी अनुवाद—जिसने कांपती हुई पृथिवी को स्थिर किया, जिसने उड़ने वाले पर्वतों को स्थिर किया, जिसने अन्तरिक्ष लोक को चौड़ा बनाया और जिसने द्युलोक को (गिरने से) रोका । हे मनुष्यों ! अथवा हे असुरों ! वह इन्द्र है ।

शब्दार्थ—व्यथमानाम्=काँपती हुई, अदृंहत्=स्थिर किया, प्रकुपितान्=इधर-उधर उड़ने वाले, अरम्णात=स्थापित किया, विममे=बनाया, वरीय=चौड़ा, द्याम्=द्युलोक (आकाश) को, अस्तभ्नात्=(गिरने से) रोका, जनासः=हे मनुष्यो या हे असुरो।

व्याकरण—

अरम्णात्—रम् धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

प्रकुपिताँ—अरम्णात् के साथ वैदिक सन्धि के फलस्वरूप न् के स्थान पर अनुनासिक (ँ)।

अस्तभ्नात्—स्तम्भ (अवरोधने), लङ् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

विशेष—छन्द—त्रिष्टुप्।

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धू-
न्यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान
संवृक्समत्सु जनास इन्द्रः ॥३॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—यः अहिम् हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात्, य वलस्य अपधा गाः उदाजत्, यः अश्मनोः अन्तः अग्निम् जजान, (यः) समत्सु संवृक्, हे जनासः! सः इन्द्रः।

संस्कृत व्याख्या—यः=इन्द्रः, अहिम्=मेघम् एतन्नामकं राक्षसं वा, हत्वा=मारयित्वा, सप्त=सप्तसंख्याकान्, सिन्धून्=नदी, अरिणात्=प्रेरयत्, यः=इन्द्र, वलस्य=वलासुरस्य, अपधा=गुहाया, गाः=धेनून्, उदाजत्=निरगमयत्, यः=इन्द्रः, अश्मनोः=मेघयो प्रस्तरयोर्वा, अन्तः=मध्ये, अग्निम्=वह्निम्, जजान=उत्पादयामास, यः=इन्द्रः समत्सु=युद्धेषु, संवृक्=शत्रु संहारकः, जनासः=हे मनुष्याः असुराः वा, सः=इन्द्रः।

हिन्दी अनुवाद—जिसने अहि नामक राक्षस या मेघ को मारकर सात नदियों को बहाया, जिसने वलासुर की गुफाओं से गायों को निकाला, जिसने मेघों या पत्थरों के बीच अग्नि को उत्पन्न किया, जो युद्धों में शत्रुओं का संहारक है, हे मनुष्यों अथवा हे असुरो! वह इन्द्र है।

शब्दार्थ—हत्वा=मारकर, अहि=अहि नामक राक्षस या मेघ को, सिन्धून=नदियों को, अरिणात्=प्रवाहित किया, गाः=गायों को, उदाजत्=निकाला, अपधा गुफा से, वलस्य=वलासुर की, अश्मनोः=मेघों के या पत्थरों के, अन्तः=मध्य, जजान=उत्पन्न किया, संवृक्=शत्रुओं का संहारक, समत्सु=युद्धों में, जनासः=हे मनुष्यो अथवा हे असुरो!।

व्याकरण—

अरिणात्—प्रस्रवण अर्थक रीङ् धातु से लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन।

अश्मनोः—अश् + मनिन् = अश्मन्। षष्ठी विभक्ति द्विवचन।

उदाजत्—उत् + अज् धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

संवृक्—सम् + वृज् + क्विप्।

विशेष—(१) मैक्डानल एवं पीटर्सन ने 'अहि' का अर्थ सर्प किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि
यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाद्
दर्यः पुष्टानि स जनासइन्द्रः ॥४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—येन इमा विश्वा च्यवना कृतानि, यः दासम् वर्णम गुहा अधरम् अकः, यः श्वघ्नीव लक्षम् जिगीवान् अर्यः पुष्टानि आदत्, जनासः ! सः इन्द्रः।

संस्कृत व्याख्या—येन = इन्द्रेण, इमा = इमानि, विश्वा = भुवनानि, च्यवना = नश्वराणि, कृतानि = स्थिरीकृतानि, यः दासम् वर्णम् = शूद्रादिक वर्णम्, गुहा = गुहायाम्, अधरम् = अधमम्, अकः = कृतवान्, यः = इन्द्रः, श्वघ्नी = व्याधः, इव = यथा, लक्षम् = लक्ष्यम्, जिगीवाम् = जितवान् (जित्वा वा), अर्यः = शत्रोः, पुष्टानि = रक्षितानि धनानि, आदत् = अग्रहीत्, जनासः = हे मनुष्याः असुराः वा, सः इन्द्रः = इन्द्रदेव अस्ति।

हिन्दी अनुवाद—जिसने इन नश्वर लोकों को स्थिर किया अथवा जिसने इन लोकों को गतिमान बनाया, जिसने दास वर्ण को गुफा में नीचे कर दिया, शिकारी के समान जिसने लक्ष्य को जीतकर शत्रु के रक्षित धनों को ग्रहण कर लिया, हे मनुष्यो ! अथवा हे असुरो ! वह इन्द्र है।

शब्दार्थ—विश्वा = सम्पूर्ण, च्यवना = नश्वर या गतिमान, कृतानि = स्थिर किया, गुहा अधरमः = गुहा में नीचे, अकः = किया, श्वघ्नी इव = शिकारी के समान, लक्षम् = लक्ष्य (शिकार) का, जिगीवान् = जीता या जीतकर, आदत् = ग्रहण किया, अर्यः = शत्रु के, पुष्टानि = रक्षित धनों को, जनासः = हे मनुष्यों अथवा हे असुरो।

व्याकरण—

इमा—इमानि का वैदिक रूप।

विश्वा—विश्वानि का वैदिक रूप।

गुहा—सप्तमी विभक्ति के एकवचन का विभक्ति लोप हो जाने पर छान्दस प्रयोग ।

अकः—कृ धातु, लुङ् लकार, प्रथम पुरुष, एक वचन का वैदिक प्रयोग ।

जिगीवाँ—जि+क्वसु । लक्षम् के साथ सन्धि होने से न् के स्थान पर अनुनासिक (ँ) का प्रयोग ।

आदत्—आ उपसर्ग पूर्वक दा धातु से लुङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप ।

अर्यः—अरि शब्द से षष्ठी विभक्ति के एक वचन में वैदिक रूप ।

विशेष—(१) सायण ने कृतानि का अर्थ 'स्थिर किया' तथा ग्रासमान ने इसका अर्थ 'बनाया' किया है ।

(२) सायण ने श्वघ्नी का अर्थ शिकारी और पीटरसन एवं मैक्डानल ने जुआरी किया है ।

(३) छन्द—त्रिष्टुप् ।

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते
परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा
नाना हवेते स जनास इन्द्रः ।।८।।

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—क्रन्दसी संयती यम् विह्वयेते । परे अवरे उभयाः अमित्राः । समानम् चित् रथम् आतस्थिवांसा नाना हवेते । जनास । सः इन्द्रः ।

संस्कृत व्याख्या—क्रन्दसी=शब्दं कुर्वाणे, संयती=परस्पर संगच्छन्त्यौ, यम्=इन्द्रम् विह्वयेते=रक्षार्थम् आह्वतः ! परे=उत्कृष्टाः, अवरे=हीनाः, उभयाः= अभयविद्याः, अमित्रा=शत्रवः यम् आह्वयन्ति । समानम्=एकमेव, रथम्=स्यन्दनम्, आतस्थिवांसा=आस्थितौ, नाना=पृथक्-पृथक्, हवेते= आह्वयेते । जनासः=हे मनुष्याः असुराः वा, सः इन्द्रः ।

हिन्दी अनुवाद—चिल्लाती हुई एक साथ युद्ध के लिये जाती हुई दोनों सेनाएँ जिसे पुकारती हैं । उत्कृष्ट-बलवान् तथा हीन कमजोर दोनों शत्रु लोग जिसे बुलाते हैं, एक ही रथ पर बैठे हुये दो लोग अलग-अलग बुलाते हैं, एक ही रथ पर बैठे हुए दो लोग अलग-अलग बुलाते हैं; हे मनुष्यों ! अथवा हे असुरों वह इन्द्र है ।

शब्दार्थ—क्रन्दसी=चिल्लाती हुई, संयती=एकसाथ युद्ध के लिए जाती हुई, विह्वयेते=पुकारती हैं, परे=उत्कृष्ट या बलवान्, अवरे=हीन या कमजोर, उभया=दोनों, अमित्राः=शत्रु लोग, समानम्=एक ही, आतस्थिवांसा=बैठे हुये, नाना=अलग-अलग, हवेते=बुलाते हैं, जनासः=हे मनुष्यों अथवा हे असुरों ।

व्याकरण—

क्रन्दसी—क्रद् धातु से प्रथमा विभक्ति द्विवचन में निपातनात् वैदिक रूप।

आतस्थिवांसा—आ+स्था+क्वसु=आतस्थिवांस। प्रथमा विभक्ति के द्विवचन का औ लोप होकर वैदिक रूप।

उभयाः—उभय शब्द से प्रथमा बहुवचन का वैदिक रूप। लौकिक संस्कृत में उभये रूप बनता है।

विशेष—(१) मैक्डानल ने प्रे भदरे का अर्थ पास और तथा पीटर्सन ने उत्कृष्ट एवम् अधम (High and Low) किया है। सायण को भी यही अर्थ अभीष्ट है।

(२) छन्द की दृष्टि से अमित्राः का उच्चारण 'अमितरा' होगा।

(३) छन्द—त्रिष्टुप्।

य: शम्बर पर्वतेषु क्षियन्तं
चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान
दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥२१॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—यः पर्वतेषु क्षियन्तम् शम्बरम् चत्वारिंश्याम् शरदि अन्वविन्दत्, यः ओजायमानम् अहिम्, शयानम् दानुम् जघान। जनासः! सः इन्द्रः।

संस्कृत व्याख्या—यः=इन्द्रः, पर्वतेषु,=गिरिषु, क्षियन्तम्=निवसन्तम्, शम्बरम्=शम्बरनामकं मायाविनमसुरम्, चत्वारिंश्याम्=चत्वारिंशे, शरदि=वर्षे, अन्वविन्दत् अन्विष्यालभत्, यः=इन्द्रः, ओजायमानम्=बलं प्रदर्शयमानम्, अहिम्=अहिनामक राक्षसम्, शयानम् दानुम्=दानवम्, जघान=हतवान्। जनासः=हे मनुष्याः असुरा वा, सः=एतादृशः पूर्वोक्तः, इन्द्रः=इन्द्रदेवः अस्ति।

हिन्दी अनुवाद—जिसने पर्वतों पर निवास करने वाले शम्बर असुर को चालीसवें वर्ष में खोज लिया, जिसने बल का प्रदर्शन करने वाले अहि राक्षस को और लेटे हुये या सोते हुये दनु पुत्र को मार डाला।

शब्दार्थ—शम्बरम्=शम्बर नामक मायावी असुर को, पर्वतेषु क्षियन्तम्=पर्वतों पर निवास करने वाले, चत्वारिंश्याम्=चालीसवें, शरदि=शरद्ऋतु में या वर्ष में, अन्वविन्दत्=खोज लिया, ओजायमानम्=बल का प्रदर्शन करने वाले, अहिम्=अहि नामक राक्षस को, जघान=मार डाला, शयानम्=सोते हुये या लेटे हुये, दानुम्=दानु के पुत्र को, जनासः=हे मनुष्यों या असुरो।

व्याकरण—

चत्वारिंश्याम्—चत्वारिंशत्+डट् (तेषां पूरणः अर्थ में)+ङीप्=चत्वारिंशी। सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

ओजायमानम्—ओजस्—क्यङ्+शानच्। ओजस् के स् का लोप। द्वितीय विभक्ति का एकवचन।

दानुम्—दनोरपत्यम पुमान् दानुः। दनु+अण्। द्वितीया विभक्ति का एक-वचन।

विशेष—(१) सायण ने अहि का अर्थ मारने वाला, मैक्डानल ने सर्प तथा पीटर्सन ने दैत्य किया है।

(२) छन्द की दृष्टि से 'शरद्यन्वविन्दत्' को 'शरदि अन्वविन्दत्' पढ़ना चाहिये।

(३) छन्द—त्रिष्टुप्।

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते
शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहु-
र्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३॥

प्रसंग—पूर्ववत्।

अन्वय—द्यावापृथिवीचित् अस्मै नमते। अस्य शुष्मात् पर्वताः चित् भयन्ते। यः वज्रबाहुः निचितः सोमपाः, यः वज्रहस्तः। जनासः! स, इन्द्रः।

संस्कृत व्याख्या—द्यावापृथिवी=द्युलोक पृथिवीलोकौ, चित्=अपि, अस्मै=इन्द्राय, नमेते=स्वयमेव नमस्कुरुतः। अस्य=इन्द्रस्य, शुष्मात्=बलात्, पर्वताः=गिरयः, भयन्ते=बिभ्यति। यः=इन्द्रः, वज्रबाहुः=वज्रसदृशबाहुः, निचितः=पिष्ट्वा चित्, सोमपाः=सोमरसस्य पाता, यः=इन्द्रः, वज्रहस्तः=वज्रपाणिः अस्ति। हे जनासः=हे मनुष्याः असुराः वा, सः=पूर्वोक्तः, इन्द्रः=इन्द्रदेवः अस्ति।

हिन्दी अनुवाद—आकाश और पृथिवी भी इसके लिये झुक जाते हैं। इसकी शक्ति से पर्वत भी डरते हैं। जो वज्र के समान भुजाओं वाला पीसकर निचोड़े गये सोम को पीने वाला है तथा जो हाथ में वज्र को धारण करने वाला है। हे मनुष्यों अथवा असुरों वह इन्द्र है।

शब्दार्थ—द्यावा=आकाश, चित् भी, नमेते=झुक जाते हैं, शुष्मात्=बल या शक्ति से, भयन्ते=डरते हैं, सोमपाः=सोम रस को पीने वाला, निचितः=(पीसकर) निचोड़े गये, वज्रबाहुः=वज्र के समान भुजाओं वाला, वज्रहस्तः=हाथ में वज्र को धारण करने वाला, जनासः=हे मनुष्यों अथवा हे असुरों।

व्याकरण—

भयन्ते—भी धातु, लट् लकार प्रथम पुरुष, बहुवचन का वैदिक रूप। लोक में बिभ्यति रूप बनता है।

सोमपा—सोम+पा+क्विप्।

विशेष—(१) सायण ने निचित का अर्थ दृढ़ अंगों वाला, मैक्डानल ने जाना गया किया है।

(२) सायण ने वज्रबाहु का अर्थ वज्र के समान बाहुओं वाला तथा वज्रहस्तः का अर्थ वज्र को हाथ में धारण करने वाला किया है। परन्तु मैक्डानल और पीटर्सन एक ही अर्थ करते हैं।

(३) छन्द+त्रिष्टुप्।

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चि-
दवाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।
वयं न इन्द्र विश्वह प्रियासः
सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—यः दुध्रः सुन्वते पचते चित् वाजम् आदर्दर्षि, किल सः सत्यः अस्ति। इन्द्र! वयम् ते प्रियासः सुवीरासः विश्वह विदथम् आ वदेम।

संस्कृत व्याख्या—यः दुध्रः=यः भयानकः, सुन्वते=सोमाभिषवं, कुर्वते, पचते=पुरोडाशादिपाचकाय, चित्=आदरार्थेप्रयुक्तः निपातः, वाजम्=अन्नम् बलम् वा, आदर्दर्षि=भृशं प्रापयति, किल=निश्चयेन, सः=तादृश त्वम्, सत्यः=यथार्थस्वरूपः, असि=विद्यसे। इन्द्र=हे इन्द्र देव! वयम्=स्तुतिकर्तारः, ते=तव इन्द्रस्य, प्रियासः=प्रियाः, सुवीरासः=पुत्रपौत्रादियुक्ताः, विश्वह=सर्वेषु दिनेषु, विदथम्=स्तोत्रम् आवदेम=ब्रूयाम।

हिन्दी अनुवाद—जो भयानक तुम सोम पीसने वाले के लिये और हवि पकाने वाले के लिये बार-बार अन्न या बल प्राप्त करते हो, वह तुम निश्चय ही सत्य हो। हे इन्द्र! हम तुम्हारे प्रिय एवं सुन्दर सन्तानों से युक्त होकर प्रतिदिन स्त्रोत बोलें।

शब्दार्थ—सुन्वते=सोम पीसने के लिये, पचते=हवि पकाने वाले के लिये, दुध्रः=भयानक, वाजम्=अन्न अथवा बल को, दर्दर्षि=बार-बार प्राप्त कराते हो, किल=निश्चय ही, विश्वहः=प्रतिदिन, प्रियासः=प्रिय, सुवीरासः=सुन्दर पुत्र-पौत्रादि से युक्त, विश्वहः=प्रतिदिन, विदथम्=स्तोत्र को, आवदेम=बोलें।

व्याकरण—

सुन्वते—सु+श्नु+शतृ। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

पचते—पच्+शप्+शतृ। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

दुध्रः—दुर्+धृ+क। दुर् के र् का लोप।

विश्वहः—विश्वानि अहानि के लिये प्रयुक्त छान्दस रूप।

प्रियासः—प्रथम विभक्ति के बहुवचन का वैदिक रूप।

सुवीरासः—" " " "।

विशेष—(१) दुध्र का अर्थ सायण दुर्धर, मैक्डानल भयानक तथा पीटर्सन शक्तिशाली देवता करते हैं।

(२) मैक्डानल ने वाजम् का अर्थ लूटा हुआ धन किया है, जबकि सायण ने अन्न या बल किया है।

छन्द—त्रिष्टुप्।

रुद्र सूक्त

(ऋग्वेद २/३३) **(रुहेल०, बुन्देल०, गढ़०, अवध)**

आ ते पितामरुतां सुम्नमेतु
मा नः सूर्यस्यः सन्दृशो युयोधाः।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत
प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥१॥

प्रसंग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के रुद्र सूक्त से उद्धृत किया गया है। ऋग्वेद में रुद्र के लिये केवल तीन सूक्तों का प्रयोग हुआ है। उनमें प्रकृति सूक्त महत्वपूर्ण है। इस सूक्त के ऋषि गृत्समद तथा देवता रुद्र है।

अन्वयः—मरुताम् पितः! ते सुम्नम् आ एतु। सूर्यस्य संदृशः मः मायुयोधा। नः वीरः अर्वति अभिक्षमेत। रुद्र! प्रजाभि प्रजायेमहि।

संस्कृत व्याख्या—मरुतांपितः! = हे मरुद्देवानां जनक! ते = तव, सुम्नम् = सुखम्, आ एतु = प्राप्नोति। सूर्यस्य = भानोः, संदृशः = दर्शनात्, नः = अस्माकम् मा युयोधा = मा वियुज्यस्व। नः = अस्माकम् वीरः = पुत्रपौत्रादिकः, अर्वति = शत्रौ, अभिक्षमेत = समर्थो भवेत्। रुद्र = हे रुद्रदेव, प्रजाभिः सन्ततिभिः, प्रजायेमहि = प्रभूताः स्याम।

हिन्दी अनुवाद—हे मरुत् देवों के पिता रुद्र! तुम्हारा (तुम्हारे द्वारा दानरूप) सुख हमें प्राप्त होवे। सूर्य के दर्शन से हमें वियुक्त मत करो। हमारे वीर पुत्रपौत्रादि शत्रुओं पर समर्थ होवें। हे रुद्र! सन्तानों से हम वृद्धि को प्राप्त होवें।

शब्दार्थ—मरुतांपितः = हे मरुत् देवताओं के पिता, सुम्नम् = सुख, आ एतु = प्राप्त होवें, संदृशः = दर्शन से, मा युयोधा = वियुत्त मत करो, वीरः = वीर पुत्र पौत्रादि, अर्वति = शत्रु पर, अभिक्षमेत = समर्थ होवें, जायेमहि = वृद्धि को प्राप्त हों, प्रजाभिः = सन्तानों से।

व्याकरण—

युयोधाः—यु धातु, लङ् लकार, मध्यम पुरुष एकवचन।

जायेमहि—जन् धातु विधिलिट् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन।

विशेष—(१) मैक्डानल ने सुम्नम् का अर्थ सदिच्छा (Good will) किया

है। उन्होंने अर्वति का अर्थ भी 'घोड़ा पर' करके भिन्न प्रकार से व्याख्या की है।

इस छन्द में ११–११ वर्णों के चार पाद होते हैं।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

क्व स्य ते रुद्र मृलयाकु-
हंस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्या
भी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥७॥

प्रसंग—पूर्ववत्।

अन्वयः—रुद्र ! ते मृलयाकुः स्यः हस्तः क्व, यः भेषजः जलाषः अस्ति। वृषभ ! दैव्यस्य रपसः अपभर्ता मा नु अभिचक्षमीथाः।

संस्कृत व्याख्या—रुद्र=हे रुद्रदेव !, ते=तव, मृलयाकुः=सुखदायकः, स्यः=सः, हस्तः=पाणिः, क्व=कुत्रास्ति, यः=हस्तः, भेषजः=स्वास्थ्यदायकः, जलाषः=शीतदायकः सुखकरो वा, अस्ति=वर्तते। वृषभ !=हे कामपूरक ! दैव्यस्य=दैवकृतस्य, रपसः=पापस्य, अपभर्ता=विनाशयिता, मा=माम्, नु=शीघ्रम्, अभिचक्षमीथाः=अभिक्षमस्व।

हिन्दी अनुवाद—हे रुद्र ! तुम्हारा सुखदायी वह हाथ कहाँ है, जो स्वास्थ्य पहुँचाने वाला तथा शीतलता करने वाला (सुखकर) है। हे कामनाओं को पूरा करने वाले ! देवताओं द्वारा प्रदत्त पाप को नष्ट करने वाले होकर (शीघ्र क्षमा कर दो)।

शब्दार्थ—क्व=कहाँ, मृलयाकुः=सुखदायी, भेषजः=स्वास्थ्यदायक, जलाषः=शीतलता प्रदान करने वाला, अपभर्ता=दूर करने वाले, रपसः=पाप के, दैवस्य=देवताओं द्वारा कृत, वृषभ=कामपूरक, अभिचक्षमीथाः=क्षमा करो।

व्याकरण—

स्यः—त्यत् सर्वनाम से प्रथमा विभक्ति का एकवचन।

चक्षमीथाः—क्षम्+लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

विशेष—(१) मैक्डानल के अनुसार मृलयाकुः का अर्थ दयालु तथा रपसः का अर्थ क्षत है। देवकृत क्षत को रुद्र दूर करता है।

(२) त्रिष्टुप् छन्द।

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं
मृगं न भीममुपहनत्नुमुग्रम्।
मृला जरित्रे रुद्र स्तवानो
ऽन्य ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥११॥

प्रसंग—पूर्ववत्

अन्वयः—श्रुतम् गर्तसदम् युवानाम् मृगम् न भीमम् उपहत्नुम् उग्रम् स्तुहि। रुद्र ! स्तवानः जरित्रे मृल। ते सेनाः अस्मद् अन्यम् नि वपन्तु।

संस्कृत व्याख्या—श्रुतम्=विख्यातम्, गर्तसदम्=रथेऽधिष्ठितम्, युवानम्=युवकम् मृगं न=आरण्यकं पशुमिव सिंहमिवेति भावः, भीमम्=भयानकम्, उपहत्नुम्—शत्रुनाशकम्, उग्रम्=प्रचण्डस्वरूपम्, स्तुहि=स्तुतिं कुरु। रुद्र !=हे रुद्रदेव, स्तवानः=स्तूयमानः, जरित्रे=स्तुतिकारकाय, मृल=दयां कुरु। ते=तव, सेना=सैन्यम् अस्मद् अन्यम्=अस्मद्व्यतिरिक्तं पुरुषम्, निवपन्तु=नाशयन्तु।

हिन्दी अनुवाद—विख्यात, रथ पर अधिष्ठित, युवक, सिंह के समान भयानक, शत्रुओं को मारने वाले और उग्र रूप वाले रुद्र देव की स्तुति करो। हे रुद्र ! स्तुति किये जाते हुये तुम स्तुति करने वाले पर दया करो। तुम्हारी सेना हमारे अतिरिक्त अन्य (शत्रु) को नष्ट करे।

शब्दार्थ—स्तुहि=स्तुति करो, श्रुतम्=विख्यात, गर्तसदम्=रथ पर आसीन, युवानम्=युवक, मृगम् न=पशु (सिंह) के समान, उपहत्नुम्=शत्रु को मारने वाले, उग्रम्=प्रचण्ड, मृल=दया करो, जरित्रे=स्तुति करने वाले के लिए, स्तवानः=स्तुति किये जाते हुये, निवपन्तु=नष्ट करे।

व्याकरण—

गर्तसदम्—गर्ते (रथे) सीदति। गर्त+सद्+अच्। द्वितीया एकवचन।

जरित्रे—जॄ+तृच् (इडागम)=जरितृ। चतुर्थी विभक्ति, एकवचन।

स्तवानः—स्तु+शानच्। प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

विशेष—(१) मैक्डानल ने मृगम् पद को उपहत्नुम् का कर्म स्वीकार किया है। उन्होंने सेना शब्द का अर्थ फेंककर मारा जाने वाला अस्त्र किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

मित्र सूक्त

(ऋग्वेद ३/५९) (गोरख०, अवध)

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो
मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि: चष्टे
मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के मित्र सूक्त से उद्धृत है। स्वतन्त्र रूप से ऋग्वेद में केवल यही सूक्त है। अन्यत्र वरुण के साथ प्रायः मित्रदेव की स्तुति की गई है। इस सूक्त के ऋषि विश्वामित्र तथा देवता मित्र हैं।

अन्वयः—ब्रुवाणः मित्रः जनान् यातयति । मित्रः पृथिवीम् उत द्याम् दाधार । मित्रः अनिमिषा कृष्टीः अभि चष्टे । तस्मै मित्राय घृतवत् हव्यम् जुहोत ।

संस्कृत व्याख्या—ब्रुवाण=स्तूयमानः, मित्रः=सूर्यदेवः, जनान्=मनुष्यान्, यातयति=कार्येषु योजयते । मित्रः=सूर्यः, पृथवीम्=पृथिवीलोकम्, उत=च, द्याम्=द्युलोकम्, दाधार=धारयति । मित्रः=सूर्यः, अनिमिषा=निर्निमेषदृष्टया, कृष्टीः=कृषकान्, अभिचष्टे=पश्यति । तस्मै=तादृशाय, मित्राय=सूर्याय, घृतवत्=घृतयुक्तम्, हव्यम्=पुरोडाशादिकं हविद्रव्यम्, जुहोत=प्रयच्छत ।

हिन्दी अनुवाद—स्तूयमान मित्र (सूर्य) मनुष्यों को अपने कार्यों में लगाता है । मित्र पृथिवी और द्युलोकों को धारण करता है । मित्र निर्निमेष दृष्टि से कृषकों को देखता है ; उस मित्र के लिये घृतयुक्त हवि प्रदान करो ।

शब्दार्थ—मित्रः=सूर्य, यातयति=लगाता है, ब्रुवाणः=स्तुति किया जाता हुआ, दाधार=धारण करता है, कृष्टीः=किसानों को, अनिमिषा=अपलक निगाहों से, अभिचष्टे=देखता है, हव्यम्=पुरोडाशादि हवि द्रव्य को, घृतवत्=घी से युक्त, जुहोत=प्रदान करो ।

व्याकरण—

ब्रुवाण—ब्रू+शानच् । ऊ को उवङ् आदेश ।

यातयति—णिजन्तयती धातु से लट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन ।

दाधार—धृ लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन । यहाँ पर लट्लकार के अर्थ मे लिट् लकार का छान्दस प्रयोग है ।

कृष्टीः—कृष्+क्तिन् । द्वितीया विभक्ति का बहुवचन ।

विशेष—(१) मॅक्डानल ने ब्रुवाणः का अर्थ बोलता हुआ सूर्य तथा कृष्टीः का अर्थ मनुष्य से किया है ।

(२) छन्द—त्रिष्टुप् । चारों पादों में ग्यारह-ग्यारह वर्ण होते हैं ।

प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्
यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो
नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—आदित्य ! यः ते व्रतेन शिक्षति, मित्र ! सः मर्तः प्रयस्वान् प्र अस्तु । त्वा ऊतः न हन्यते न जीयते । एनम् अंहः न अन्तितः न दूरात् अश्नोति ।

संस्कृत व्याख्या—आदित्य !=हे मित्र ! यः=यः मनुष्यः, ते=तव, व्रतेन=यज्ञेन, शिक्षति=हव्यं ददाति, मित्र=हे सूर्य !, सः मर्तः=मनुष्यः, प्रयस्वान्=अन्नवान्, प्र अस्तु=प्रभवतु । त्वा=त्वया, ऊतः=रक्षितः, न हन्यते=

न मृत्युं प्राप्नोति, न जीयते=न अभिभूयते, एनम्=हव्यप्रदायकम्, अहः=पापम्, न अन्तितः=न समीपम्, न दूरात्=न हि दूरस्थानात्, अश्नोति=प्राप्नोति।

हिन्दी अनुवाद—हे सूर्य ! जो तुम्हें यज्ञ से हवि प्रदान करता है, हे मित्र ! वह मनुष्य अन्नों वाला हो जावे। तुम्हारे द्वारा रक्षित मनुष्य न तो मारा जाता है और न ही पराजित होता है। इसको पाप न तो समीप से ही और न दूर से प्राप्त होता है।

शब्दार्थ—मर्तः=मनुष्य, प्रयस्वान्=अन्नों वाला, शिक्षति=हवि प्रदान करता है, व्रतेन=यज्ञ से, हन्यते=मारा जाता है, जीयते=पराजित होता है, त्वा ऊतः=तुम्हारे द्वारा रक्षित, अहं=पाप, अश्नोति=प्राप्त होता है।

व्याकरण—

शिक्षति—शिक् (दानार्थक) धातु का वैदिक व्यत्यय से परस्मै पद में प्रयोग हुआ है।

ऊतः--अव्+क्त प्रत्यय तथा अव् को ऊठ आदेश।

विशेष—(१) मैक्डानल ने शिक्षति का अर्थ नमस्कार करता है, व्रतेन का आज्ञा से तथा प्रयस्वान् का अर्थ प्रधान किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो
यातयज्जनो गृणते सुशेवः।
तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्ट
मग्नौ मित्राय हविरा जुहोत॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—महान् आदित्यः नमसा उपसद्यः। यातयज्जनः गृणते सुशेवः। पन्यतमाय तस्मै मित्राय जुष्टम् एतत् हविः अग्नौ आ जुहोत।

संस्कृत व्याख्या—महान् आदित्यः=महान् मित्रः, नमसा=नमस्कारेण, उपसद्यः प्राप्यः। यातयज्जन—यातयन्तः=स्वकर्मणि प्रवर्तनीयाः, जनाः=मनुष्याः येन सः तथाविध, गृणते=स्तुतिकर्त्रे, सुशेवः=सुलभः अस्ति। पन्यतमाय=स्तुत्यतमाय, तस्मै मित्राय=तथाविधाय मित्रदेवाय, एतत्=इदम्, जुष्टम्=प्रीतिकरम् स्वीकरणीयं वा, हविः=हव्यम्, अग्नौ=वह्नौ, आ जुहोत=आहुतिं प्रयच्छत।

हिन्दी अनुवाद—महान् मित्र देवता नमस्कार के द्वारा समीप पहुँचने योग्य है। लोगों को अपने कार्यों में लगाने वाला यह स्तुति करने वाले के लिये सुलभ है। सर्वाधिक स्तुत्य उस मित्र के लिये प्रीतिकर अथवा स्वीकरणीय इस हवि को अग्नि में आहुति दे दो।

शब्दार्थ—उपसद्यः=समीप पहुँचने योग्य, यातयज्जनः=लोगों को अपने कार्यों में लगाने वाला, गृणते=स्तुति करने वाले के लिये, सुशेवः=आसानी से प्राप्त करने योग्य, पन्यतमाय=सर्वाधिक स्तुति किये जाने योग्य, जुष्टम्=प्रीतिकर या स्वीकरणीय।

व्याकरण—

यातयज्जनः—यातयन्तः जनाः येन सः (बहुव्रीहि समास)।

जुहोत—हु धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन। वैदिक रूप।

गृणते—गृ+श्ना+शतृ=गृणत्। गृणत् शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन का रूप।

विशेष—(१) सायण के अनुसार जुष्टम् का अर्थ प्रीतिदायक और मैक्डानल के अनुसार स्वीकरणीय है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः।
अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥७॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—यः मित्रः महिना दिवम् अभिबभूव, सप्रथाः श्रवोभिः पृथिवीम् अभिबभूव।

संस्कृत व्याख्या—यः मित्रः=आदित्यः, महिना=माहात्म्येन, दिवम्=अन्तरिक्षलोकम्, अभिबभूव=अधिक्रियते, सर्वथाः=कीर्तिसम्पन्नः, श्रवेभिः=वृष्टि द्वारा, पृथिवीम्=पृथिवीलोकम्, अभिबभूव=अभिभवति।

हिन्दी अनुवाद—जो मित्र देवता अपने महत्व से द्युलोक को अधिकार में रखता है तथा जो कीर्तिशाली वृष्टियों के द्वारा पृथिवी को अधिकार में रखता है।

शब्दार्थ—बभूव—भू धातु लिट् लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। लट् लकार (वर्तमान काल) के अर्थ में लिट् का प्रयोग।

सप्रथाः—प्रथसा सह सप्रथाः। प्रथ्+असुन=प्रथा :

श्रवोभिः—श्रवस् शब्द से तृतीया के बहुवचन का रूप।

विशेष—(१) मैक्डानल के अनुसार श्रवस् का अर्थ कीर्ति है।

(१) गायत्री छन्द। इस छन्द मे आठ-आठ वर्ण के तीन पाद होते हैं।

मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे।
स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥८॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—पञ्च जनाः अभिष्टिशवसे मित्राय येमिरे ! सः विश्वान् देवान् बिभर्ति ।

संस्कृत व्याख्या—पञ्चजनाः=ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रनिषादाः, अभिष्टिशवसे =शत्रूणामभिगन्तृबलसमन्विताय, मित्राय=सूर्याय, येमिरे=हव्यं प्रयच्छन्ति। सः=तादृशः मित्रः, विश्वान्=सर्वान्, देवान्=अमरान्, बिभर्ति=धारयति ।

हिन्दी अनुवाद—पाँच प्रकार के लोग (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण तथा निषाद) शत्रुओं का सामना कर सकने योग्य बल वाले मित्र के लिये हवि प्रदान करते हैं। वह सभी देवताओं को धारण करता है।

शब्दार्थ—अभिष्टिशवसे=शत्रुओं का सामना कर सकने योग्य बल वाले, येमिरे = हवि प्रदान करते हैं, बिभर्ति=धारण करता है अर्थात् पालन करता है।

व्याकरण—

अभिष्टिशवसे—अभि+इष्टि (इष्+क्तिन्) स्थिति में पररूप एकादेश होकर अभिष्टि रूप बनता है। अभिष्टये शवः=बलं यस्य सः अभिष्टिशवः। चतुर्थी विभक्ति के एकवचन में अभिष्टिशवसे ।

विशेष—(१) मैक्डानल ने अभिष्टिशवसे का अर्थ सहायता करने के लिये दृढ (Strong to help) किया है।

(२) छन्द—गायत्री ।

उषः सूक्त

(ऋग्वेद ३/६१) (मेरठ, गोरख०)

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेतः
स्तोम जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणो देवि युवतिः पुरंध्रि
रनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥१॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के उषः सूक्त से उद्धृत है। ऋग्वेद के लगभग २० सूक्तों में उषा की स्तुति की गई है। काव्य की दृष्टि से उषा विषयक सूक्तों में सर्वाधिक रोचकता है। इस सूक्त के ऋषि विश्वामित्र और देवता उषा है।

अन्वयः—वाजेन वाजिनि मघोनि उषः ! प्रचेताः गृणतः स्तोमम् जुषस्व। विश्ववारे देवि ! पुराणी युवतिः पुरंध्रिः व्रतम् अनुचरसि ।

संस्कृत व्याख्या—वाजेन=अन्नेन, वाजिनि=अन्नवति मघोनि=धनवति, उषः=हे उषः देवते, प्रचेताः=ज्ञानवती त्वम्, गृणतः=स्तुतिकर्तुः, स्तोमम्=स्तो-

त्रम्, जुषस्व=सेवस्व। विश्ववारे देवि ! =हे सर्वैः वरणीये देवते उषः। पुराणी= पुरातनी, युवतिः=तरुणी, पुरंध्रिः=बहुमतिः स्वम्, व्रतम्=नियमम्, अनुचरसि= आचरसि।

हिन्दी अनुवाद—हे अन्नो से अन्नवती धनवती उषा देवि ! ज्ञानवती तुम स्तुति करने वाले के स्त्रोत को ग्रहण करो। हे सभी के द्वारा वरणीय देवी उषा। प्राचीन युवति एवं बुद्धिमती तुम नियम का पालन करती हो।

शब्दार्थ—वाजेन=अन्न से, वाजिनि=अन्नों वाली, प्रचेतः=बुद्धिमती गृणतः=स्तुति करने वाले के, मघोनि=हे धन वाली, पुराणी=प्राचीन, युवतिः =तरुणी, पुरंध्रिः=अत्यधिक बुद्धिमती, अनुचरसि=पालन करती हो या आचरण करती हो, विश्ववारे=सभी के द्वारा वरणीय।

व्याकरण—

वाजिनि—वाजः अस्याः अस्ति अर्थं में वाज+इनि+ङीप्। सम्बोधन एक-वचन।

मघोनि—मघ+वनित् (वैदिक) प्रत्यय। सम्बोधन, एकवचन।

देवि—देवी शब्द से सम्बोधन एकवचन।

पुरंध्रिः—पुरम् धीः यस्याः। पुरम्+धी+कि।

विश्ववारे—विश्व+वृ+ण+टाप्=विश्ववारा। सम्बोधन के एकवचन में विश्ववारे।

विशेष—(१) मैक्समूलर के अनुसार वाजेन वाजिनि का अर्थ धनों से धन-वती (wealthy by wealth) है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्। चारों पादों में ११-११ वर्ण होते हैं।

उषो देव्यमर्त्या विभाहि
चन्द्ररथा सुनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा
हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—उषः देवि ! अमर्त्या चन्द्ररथा सुनृताः ईरयन्ती विभाहि। पृथु-पाजसः सुयमासः ये अश्वाः हिरण्यवर्णाम् त्वा आवहन्तु।

संस्कृत व्याख्या—उषः देवि !=हे उषः देवते, अमर्त्या=अमरा, चन्द्र-रथा=सुवर्णमयरथे आरूढा, सुनृताः=शोभनसत्यस्वरूपा, ईरयन्ती=उच्चारयन्ती, विभाहि=विशेषेण दीप्यस्व। पृथुपाजसः=प्रभूतशक्ति सम्पन्नाः, सुयमासः=सुनि-यन्त्रिताः, ये अश्वाः=ये घोटकाः सन्ति ते, हिरण्यवर्णाम्=स्वर्णवद्दीप्तिमतीम्, त्वा= त्वाम्, आवहन्तु=सम्मुखं नयन्तु।

हिन्दी अनुवाद—हे उषा देवी ! मरणधर्म से रहित, सोने से निर्मित रथ

पर आरूढ तुम प्रिय सत्य वाणी का उच्चारण करती हुई शोभायमान होओ। अत्यन्त शक्ति सम्पन्न एवं अच्छी तरह से नियन्त्रित जो घोड़े हैं, वे सोने के समान दीप्तिमान् तुम्हें सम्मुख लावें।

शब्दार्थ—अमर्त्या=मरणधर्म से रहित, विभाहि=विशेष रूप से शोभायमान होओ, चन्द्ररथा=सोने से निर्मित रथ पर आरूढ, सुनृताः=सुन्दर सत्य वाणी का, ईरयन्ती=उच्चारण करती हुई, सुयमासः=ठीक ढंग से नियन्त्रित, हिरण्यवर्णाम्, सोने के समान दीप्तिमती, त्वा=तुम्हें, पृथुपाजसः=अत्यन्त शक्ति से सम्पन्न।

व्याकरण—

सुयमासः—सु+यम्+खल्=सुयम। सुयम शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन का वैदिक रूप।

पृथुपाजसः—पृथु. पाजः येषां ते (बहुव्रीहि समाज)।

विशेष—(१) पीटर्सन ने पृथुपाजसः का अर्थ अत्यधिक चमक वाले किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

अव स्यूमेव चिन्वती मघो
न्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा
आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्या ॥४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वय—मघोनी स्वसरस्य पत्नी उषा स्यूम इव अवचिन्वती याति। स्वः जनन्ती सुभगा सुदंसा दिवः आ अन्तात् पृथिव्याः आ पप्रथे।

संस्कृत व्याख्या—मघोनी=धनवती, स्वसरस्य=सूर्यस्य वासरस्य वा, पत्नी =अर्धाङ्गिनी, उषाः=उषा देवी, स्यूम इव=वस्त्रमिव, अवचिन्वती=अन्धकारं विनाशयन्ती, याति+गच्छति। स्वः=स्वकीय तेजः, जनन्ती=उत्पादयन्ती, सुभगा =शोभनधना, सुदंसाः=शोभनाग्निहोत्रकर्मा, दिवः=अन्तरिक्ष लोकस्य, आ अन्तात् =अन्तपर्यन्तम् पृथिव्याश्च आ अन्तात्, पप्रथे=प्रकाशते।

हिन्दी अनुवाद—धन वाली सूर्य अथवा दिन की पत्नी उषा देवी वस्त्र के समान आच्छादक अन्धकार का विनाश करती हुई जाती है। अपने तेज को उत्पन्न करती हुई सुन्दर धनों वाली तथा सुन्दर यज्ञ रूप कर्म वाली उषा देवी अन्तरिक्ष के अन्तिम स्थान से पृथिवी के अन्त तक प्रकाशित होती है या फैल जाती है।

शब्दार्थ—स्यूम इव=वस्त्र के समान, अवचिन्वती=आच्छादक अन्धकार का विनाश करती हुई, मघोनी=धनो वाली, स्वसरस्व पत्नी=सूर्य अथवा दिन की पत्नी, याति=जाती है, स्वः=अपने तेज को, जनन्ती=उत्पन्न करती हुई, सुभगा =सुन्दर धनों वाली, सुदंसा=सुन्दर यज्ञ रूप कर्म वाली, आ अन्तात्=अन्तिम

स्थान से, दिवंः=अन्तरिक्ष लोक के, पप्रथे=प्रकाशित होती है या फैल जाती है।

व्याकरण—

स्यूम—षिव् धातु से मन प्रत्यय। व् को ऊठ और इक् को यण् आदेश। द्वितीया विभक्ति के एकवचन का छान्दस रूप।

स्वसरस्य—सुष्ठु अस्यति तमः अर्थ में सु उपसर्ग पूर्वक अस् धातु से अरक् प्रत्यय होकर स्वसर रूप बनता है। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

विशेष—(१) पीटर्सन ने स्वसरस्य पत्नी का अर्थ जगत् की महारानी (Queen of all world) किया है। उन्होंने स्वर्जनन्ती का अर्थ स्वर्ग को सजीव करती हुई (Bringing heaven of like) किया है।

(२) छन्द की दृष्टि से मघोन्युषा को मघोनी उषा तथा स्वसरस्य को सुवसरस्य उच्चारण करना चाहिये।

(३) छन्द—त्रिष्टुप्।

ऋतावरी दिवो अर्कै रबोध्या
रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभातीं
वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—ऋतावरी दिवः अर्कैः अबोधि, रेवती रोदसी चित्रम् आ अस्थात्। अग्ने! आयतीम् विभातीम् उषसम् भिक्षमाणः वामम् द्रविणम् एषि।

संस्कृत व्याख्या—ऋतावरी=सत्यसम्पन्ना, दिवः=अन्तरिक्षलोकात्, अर्कैः =तेजोभिः, अबोधि=ज्ञायते, रेवती=धनसम्पन्नासा, रोदसी=द्यावा पृथिव्यौ, चित्रम्=नानारूपसमन्वितम्, आ अस्थात्=सर्वतो व्याप्य तिष्ठति। हे अग्ने,! आयतीम्=सम्मुखमागच्छन्तीम्, विभातीम्=भासमा नाम्, उषसम्, उषोदेवताम्, भिक्षमाणः=हव्यं याचमान त्वम्, वामम्=अभीष्टम्, द्रविणम्=धनम्, एषि= प्राप्नोषि।

हिन्दी अनुवाद—(१) सत्य सम्पन्न उषा देवी अन्तरिक्ष लोक से अपने प्रकाशों या तेजों के द्वारा जान ली गई है या जानी जाती है। धनवती यह द्युलोक और पृथिवीलोक को नाना प्रकार के रूपों से समन्वित होकर व्याप्त करके स्थित होती है। हे अग्निदेव! सम्मुख आती हुई प्रकाशमान उषा देवी से हवि की याचना करते हुए तुम अभीष्ट धन को प्राप्त करते हो।

(२) पीटर्सन के अनुसार—पावन उषा आकाश से आते हुए गानों के द्वारा जगाई गई है। उसकी महिमा द्युलोक एवं पृथिवीलोक में फैल रही है। हे अग्निदेव!

प्रकाशित होती हुई उषा आ रही है। उसके पास जाकर वह धन मांगो, जो हमें अभीष्ट है।

शब्दार्थ—ऋतावरी=सत्यसम्पन्न, अर्कैः=तेजों से, अबोधि=जान ली गई है या जानी जाती है, रेवती=धनसम्पन्न, चित्रम्=नाना प्रकार के रूपों से समन्वित, आ अस्थात्=व्याप्त करके स्थित है (होती है), आयतीम्=सम्मुख आती हुई, विभातीम्=प्रकाशमान या प्रकाशित होती हुई, वामम्=अभीष्ट, एणि=प्राप्त करते हो, द्रविणम्=धन को, भिक्षमाणः=याचना करते हुए।

व्याकरण—

अबोधि—बुध् धातु, लुङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

अस्थात्—स्था धातु, लुङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

आयतीम्—आ+इण्+शतृ+ङीप्=आयती। द्वितीया वि० एकवचन।

विभातीम्—वि+भा+शतृ+ङीप्=विभाती। द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

विशेष—(१) छन्द की दृष्टि से अयोध्या को अबोधि आ उच्चरित करना चाहिये।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

अग्नि सूक्त

(ऋग्वेद ४/१२) (बुन्देल०)

यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्
त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सस्मिन्नहन्।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्
तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥१॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत सूक्त ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के अग्निसूक्त से उद्धृत हैं। अग्नि ऋग्वेद के सर्वाधिक पवित्र देवता हैं। इस सूक्त के ऋषि वामदेव और देवता अग्नि हैं।

अन्वयः—अग्ने! यतस्रुक् यः त्वाम् इनधते, सस्मिन् अहन् ते त्रिः अन्नम् कृणवत्। जातवेदः! तव क्रत्वा प्रसक्षत् चिकित्वान् सः सु अभि अस्तु।

संस्कृत व्याख्या—हे अग्ने! यतस्रुक्, नियतस्रुक् यः=यजमानः, त्वाम्=अग्निम्, इनधते—प्रज्ज्वलितं कुर्यात्, सस्मिन्=सर्वस्मिन्, अहन्=दिवसे, ते=तुभ्यम्, त्रिः=त्रिवारम्, अन्नम्=हव्यम्, कृणवत्=कुर्यात्। हे जातवेदः!=हे अग्ने!, तव क्रत्वा=शक्त्या, प्रसक्षत्=प्रसहमानं तेजः, चिकित्वान्=बुद्धिमान्, सः=यजमानः, द्युम्नैः=धनैः यशोभिः वा, सु=अत्यधिकम्, अभि अस्तु=शत्रून् अभिभवतु।

हिन्दी अनुवाद—हे अग्निदेव ! नियमित स्रुवा वाला जो यजमान तुमको प्रज्ज्वलित करे, पूण दिन में तीन बारा तुम्हें अन्न (हवि) प्रदान करे, हे अग्नि ! तुम्हारी शक्ति से जीतने वाले तेज को बुद्धिमान् वह यजयान धनों से अथवा यशों से अच्छी तरह से अभिभूत करे।

शब्दार्थ—इनधते=प्रज्ज्वलित करे, यतस्रुक्=नियमित स्रुवा वाला, त्रिः= तीन वार, कृणवत्=प्रदान करे, सस्मिन्=सम्पूर्ण, अहन्=दिन में, द्युम्नैः=धनों से अथवा यशों से, अभ्यस्तु=अभिभूत करे, क्रत्वा=शक्ति से, जातवेदः=हे अग्नि ! चिकित्वान् ।

व्याकरण—

इनधते—इन्ध् धातु, आत्मनेपद, प्रथम पुरुष, एकवचन।

चिकित्वान्—कित्+क्वसु। प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

विशेष—(१) क्रत्वा का अर्थ विल्सन ने द्वारा, ग्रिफिथ ने मानसिक शक्ति के द्वारा किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्या
ग्निर्वाजस्य परमस्य रायः।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो
व्यानुषङ्मर्त्याय स्वधावान् ॥३॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—अग्निः बृहतः क्षत्रियस्य ईशे, अग्निः परमस्य बाजस्य रायः (ईशे) यविष्ठः स्वधावान् अग्निः विधते मर्त्याय रत्नम् आनुषक् विदधाति।

संस्कृत व्याख्या—अग्निः=वह्निदेवः, बृहतः=महतः, क्षत्रियस्य=बलस्य, ईशे=ईश्वरो भवति। अग्निः परमस्य=श्रेष्ठस्य, वाजस्य=अन्नस्य, रायः=पश्वादिधनस्य (ईशे)। यविष्ठः=श्रेष्ठः युवकः, स्वधावान्=अन्नवान् अग्निः विधते= स्तुतिकर्त्रे, मर्त्याय=मनुष्याय, रत्नम्=रमणीयं धनम्, आनुषक्=निर्बाधं यथा स्यात्तथा, विदधाति=धारयति।

हिन्दी अनुवाद—अग्निदेव महान् बल का स्वामी है। अग्नि उत्कृष्ट अन्न का और पशु आदि धन का स्वामी है। श्रेष्ठ युवक अन्नों वाला अथवा आत्मशक्ति वाला अग्नि स्तुति करने वाले मनुष्य के लिए निर्बाध रूप से रत्न (रमणीय धन) धारण करता है।

शब्दार्थ—ईशे=स्वामी है या शासन करता है। बृहतः क्षत्रियस्य=महान् बल का, वाजस्य=अन्न का, परमस्य=श्रेष्ठ, राय !=पशु आदि धन का, दधाति =धारण करता है, रत्नम्=रमणीय धन, विधते=स्तुति करने वाले के लिए,

यविष्ठः=श्रेष्ठ युवक, अनुषक् निर्बाध रूप से, मर्त्याय=मनुष्य के लिए, स्वधावान्=अन्नों वाला अथवा आत्मशक्ति वाला।

व्याकरण—

ईशे—ईश् धातु आत्मनेपद, प्रथमपुरुष, एकवचन।

विधते—वि+धा+शतृ=विधत्, चतुर्थी विभक्ति, एकवचन।

यविष्ठः—यु+इष्ठन्।

विशेष—(१) सायण ने स्वधावान् का अर्थ अन्नों वाला तथा ग्रिफिथ ने आत्मशक्ति वाला किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चि-
त्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः।
एवो ष्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः
प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥६॥

प्रसंग—पूर्ववत्।

अन्वयः—यजत्राः वसवः! यथा ह त्यत् पदि सिताम् गौर्यम् चित् अमुञ्चत, एवो अस्मत् अहः वि मुञ्चत। अग्ने! प्रतरम् नः आयुः प्रतारि।

संस्कृत व्याख्या - यजत्राः=यजनीयाः पूजनीयाः वा, वसवः=निवासयितारः, यथा ह=यथैव, त्यत्=ताम्, पदि=पादे, सिताम्=बद्धाम्, गौर्यम्=गौरीं धेनुम्, चित्=अपि, अमुञ्चत=त्यक्तवन्तः भूयास्त, एवो=एवमेव, अस्मत्=अस्मत्तः, अहं=पापम्, विमुञ्चत=विमुक्तं कुरुत। अग्ने! प्रतरम्=प्रवृद्धम्, नः अस्माकम् आयुः=जीवनम्, प्रतारि=प्रवृद्धं क्रियताम्।

हिन्दी अनुवाद—हे पूजनीय वसुओ! (तुमने) जिस प्रकार पैर में बंधी हुई गाय को मुक्त किया था, उसी प्रकार हमसे पाप को मुक्त करो। हे अग्नि! (तुम्हारे द्वारा) बढ़ी हुई हमारी उम्र को और अधिक बढ़ाओ।

शब्दार्थ—त्यत्=उस, वसवः=हे वसुओं, यजत्राः=पूजनीय, चित्=भी, पदि=पैर में, सिताम्=बंधी हुई, अमुञ्चत=मुक्त किया, गौर्यम्=गाय को, एवो=उसी प्रकार, अस्मत्=हमसे, अहं=पाप को, वि मुञ्चत=मुक्त करो, प्रतरम्=बढ़ी हुई, आयुः=उम्र को, प्रतारि=प्रकृष्ट रूप से बढ़ाओ।

व्याकरण—

सिताम्—सा+क्त। स्त्रीलिङ्ग, द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

एवो—एव+ओ। एवमेव के अर्थ में प्रयुक्त अव्यय पद।

तारि—तॄ धातु, लुङ्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। अट् आगम का अभाव।

विशेष—छन्द—त्रिष्टुप्।

सवितृ सूक्त

(ऋग्वेद ४/५४) (मेरठ, गोरख०)

अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने
दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं
नो अत्र सुवतादनागसः ॥३॥

प्रसंग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के सविता सूक्त से उद्धृत है। सविता देवता का सूर्य से अत्यधिक साम्य है, तथापि इसे सूर्य से पृथक् मानकर ही वर्णित किया गया है। इस सूक्त के ऋषि वामदेव तथा देवता सविता है।

अन्वयः—सवितः दैव्ये जने देवेषु च मानुषेषु च अचित्ती दीनैः दक्षैः प्रभूती पुरुषत्वता यत् चकृम, अत्र त्वम् नः अनागसः सुवतात्।

संस्कृत व्याख्या—हे सवितः! दैव्ये जने=दिव्यगुणसम्पन्ने भवति, देवेषु च =अमरेषु च, मानुषेषु च=मनुष्येषु च, अचित्ती=अज्ञानेन, दीनैः=दुर्बलैः, दक्षैः =चतुरैः, प्रभूति=ऐश्वर्यमदेन, पुरुषत्वता=पुरुष-वत्तया, यत् चकृम=यद् अपराधः कृतवन्तः स्मः, अत्र, =अस्मिन् विषये त्वम्=सविता, नः=अस्मान्, अनागसः= निरपराधान्, सुवतात्=अनुजानीहि।

हिन्दी अनुवाद—हे सविता देव! दिव्यगुण सम्पन्न आपके प्रति, अन्य देवों के प्रति तथा मनुष्यों के प्रति अज्ञान से दुर्बल (पुत्रादि) अथवा चतुर (पुत्रादि) के द्वारा पराक्रम के मद से जो भी अपराध किया है, इस स्थान में तुम हमें निरपराध बना दो।

शब्दार्थ—अचित्ती=अज्ञान से, चकृम=किया है, दैव्ये जने=दिव्य गुणों से सम्पन्न आपके प्रति, दीनैः=दुर्बल (पुत्रादि) के द्वारा, दक्षैः=चतुर (पुत्रादि) के द्वारा, प्रभूती=ऐश्वर्य के मद से, देवेषु=देवों के प्रति, मानुषेषु=मनुष्यों के प्रति, नः=हमें, अनागसः=निरपराध या निष्पाप, सुवतात्=कर दो।

व्याकरण

अचित्ती—चित्+क्तिन्=चित्तिः, न चित्तिः अचित्ति। तृतीया विभक्ति के एक वचन का वैदिक रूप।

चकृम—कृ धातु, लिट्लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन।

प्रभूती—तृतीया विभक्ति के एक वचन का वैदिक रूप।

सुतात्—षू धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) ह्विटने ने दैव्ये जने का अर्थ देवताओं का समुदाय किया है।

(२) पीटर्सन ने दीनैः दक्षैः को विशेषण विशेष्य पद मानकर उसका अर्थ 'अपनी दुर्बल बुद्धियों से' किया है। वे दक्ष का अर्थ बुद्धि करते हैं।

(३) छन्द की दृष्टि से दैव्ये को दैविये, पुरुषत्वता को पूरुषतुवता तथा त्वम् को तुवम् पढ़ना चाहिये।

(४) छन्द—जगती। इस छन्द में १२–१२ वर्ण के पद होते हैं।

इन्द्रज्येष्ठान्बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः
क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः।
यथा यथा पतयन्तो वियेमिर
एवैव तस्थु ! सवितः सवाय ते ॥५॥

प्रसंग—पूर्ववत।

अन्वयः—सवितः ! इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः सुवसि एभ्यः पस्त्यावतः क्षयान्। यथा यथा पतयन्तः वियेमिरे एव एव ते सवाय तस्थुः।

संस्कृत व्याख्या—हे सवितः ! इन्द्रज्येष्ठान्=इन्द्रः ज्यायान् पूज्यः येषां तान्, बृहद्भ्यः,=महद्भ्य, पर्वतेभ्यः=गिरिभ्योऽप्यधिकान् सुवसि=प्रेरयसि, एभ्यः=यजमानेभ्यः, पस्त्यावतः=गृहवतः, क्षयान्=निवासान्, (सुवसि=प्रेरयसि)। यथा यथा पतयन्तः=गच्छन्तः, वियेमिरे=विनियम्यन्ते, एव एव=एवमेव, ते=तव सवितुः देवस्य, सवाय=नियमपालनाय, तस्थुः=तिष्ठन्ति।

हिन्दी अनुवाद—हे सविता देव ! इन्द्र जिनका पूजनीय है ऐसे हमको तुम महान पर्वतों से भी अधिक ऊँची प्रेरणा देते हो। इन (यजमानों) के लिए भवनो वाले निवास स्थानों की प्रेरणा देते हो। जैसे जैसे जीवनयापन करने वाले लोग नियमों का पालन करत हैं, वैसे वैसे वे तुम्हारे नियमों का पालन करने के लिए ही स्थिर रहते हैं।

शब्दार्थ—इन्द्रज्येष्ठान्=इन्द्र जिनका पूजनीय है ऐसे हमें, सुवसि=प्रेरणा देते हो, क्षयान्=निवासस्थानों को, पस्त्यावतः=भवनों से युक्त, पतयन्तः=जीवनयापन करने वाले लोग, वियेमिरे=नियमों में रहते हैं, सवाय=नियमपालन के लिए तस्थुः=स्थिर रहते हैं।

व्याकरण—

पस्त्यावतः—पस्त्यं=गृहत् अस्यास्तीति अर्थ में मतुप् प्रत्यय। द्वितीया विभक्ति के बहुवचन का रूप।

पतयन्तः—पत्+णिच्+शतृ=पतयत्। पुं० प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

क्षयान्—क्षिधातु (निवास अर्थ मे)+अच्=क्षय। द्वितीया विभक्ति के बहुवचन का रूप।

विशेष—(१) सायण ने पर्वतेभ्य के आगे अधिकान् का अध्याहार किया है। सायण ने अर्थ किया है—पर्वतों से भी अधिक उन्नत प्रेरणा देते हो। पीटर्सन ने

पर्वतेभ्यः अधिकान् को क्षयान् का विशेषण मानकर अर्थ किया है—पर्वतों से भी ऊँचे निवास स्थानों को'।

(२) छन्द की दृष्टि से पर्वतेभ्यः का उच्चारण पर्वतेभियः तथा पस्त्यावतः का उच्चारण पस्तियावतः करना चाहिये।

(३) जगती छन्द।

पर्जन्य सूक्त

(ऋग्वेद ५/८३)　　(मेरठ M.A.&B.A. Hons, गोरख० रुहेल० आगरा, गढ़०)

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिप-
न्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्यां अह।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते
यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यंनभः॥३॥

प्रसंग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल के पर्जन्य सूक्त उद्धृत किया गया है। इस सूक्त के ऋषि अत्रि और देवता पर्जन्य हैं। पर्जन्य का ऋग्वेद में साधारण देवता के रूप में वर्णन हुआ है। जल को बरसाने वाले मेघ को ही कदाचित् पर्जन्य स्वीकार किया गया है।

अन्वयः—कशया अश्वान् अभिक्षिपन् रथी इव अह वर्ष्यान् दूतान् आविः कृणुते। यत् पर्जन्य। नभः वर्ष्यम् कृणुते, सिंहस्य स्तनथाः दूरान् उदीरते।

संस्कृत व्याख्या—कशया=कशादण्डेन, अश्वान्=घोटकान्, अभिक्षिपम्=अभिप्रेरयन् रथी=रथस्वामी, इव=यथा, वर्ष्यान्=वर्षकान्, दूतान्=दूतवन्मेघान्, आविष्कृणुते=प्रकटयति। यत् पर्जन्य=पर्जन्यदेवः, नभः=अन्तरिक्षम्, वर्ष्यम्=वर्षायुक्तम् कृणुते=करोति, सिंहस्य स्तनथाः=सिंहवद्गर्जनयुक्तस्य मेघस्य गर्जनशब्दाः, दूरात्=दूरप्रेशात् उदीरते=उद्गच्छन्ति श्रूयन्ते इति भावः।

हिन्दी अनुवाद—चाबुक से घोड़ों को प्रेरित करते हुए रथ के स्वामी के समान यह पर्जन्य देवता वर्षा कराने वाले दूतों (मेघों) को प्रकट करता है। जब पर्जन्य देवता अन्तरिक्ष को वर्षा से युक्त करता है तो सिंह के समान गर्जना वाले मेघ की गर्जनायें दूर से उत्पन्न होने लगती है अथवा सुनाई पड़ने लगती हैं।

शब्दार्थ—रथी इव=रथ के स्वामी के समान, कशया=चाबुक से अश्वान्=घोड़ों को, अभिक्षियम्=प्रेरित करते हुए, दूतान्=दूत के समान मेघों को, आविष्कृणुते=प्रकट करता है, वर्ष्यान्=वर्षा कराने वाले, दूरात=दूर से, सिंहस्य=सिंह के समान गर्जना वाले मेघ की, स्तनथाः=गर्जनायें; उदीरते=उत्पन्न हो

जाती है अथवा सुनाई पड़ती है, कृणुते = करता है, वर्ष्यम् = वर्षा से युक्त, नभः = अन्तरिक्ष को।

व्याकरण—

अश्वाँ—अभि के साथ सन्धि के योग में न् को अनुनासिक (ँ)।

वर्ष्याँ—अह् के साथ सन्धि के योग में न् को अनुनासिक (ँ)।

कृणुते—कृ धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

स्तनथा – गर्जन अर्थ वाली स्तन् धातु से अथच् प्रत्यय।

विशेष—(१) छन्द की दृष्टि से कशयाश्वाँ, को कश याशुवा, वर्ष्याँ को वर्षियाँ तथा वर्ष्यम् को वर्षियम् पढ़ना चाहिये।

(२) प्रस्तुत मन्त्र में जगती छन्द है। इस छन्द के चारों पादों में बारह-बारह वर्ण होते हैं।

यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति
यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।
यस्य व्रते ओषधीर्विश्वरूपाः
सः नः पर्जन्य: महि शर्म यच्छ ॥५॥

प्रसंग—पूर्ववत्।

अन्वयः—यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति, यस्य व्रते शफवत् जर्भुरीति, यस्य व्रते विश्वरूपाः ओषधीः, सः पर्जन्य नः महि शर्म यच्छ।

संस्कृत व्याख्या—यस्य = पर्जन्यस्य, व्रते = अनुशासने, पृथिवी = भूमिः, नन्नमीति = प्रभूतं नमति, यस्य = पर्जन्यस्य, व्रते = कर्मणि, शफवत् = चरणोपेतं गवादिकम्, जर्भुरीति = पुष्यति, यस्य = पर्जन्यस्य, व्रते = अनुशासने, विश्वरूपाः = नानाप्रकाराः, ओषधीः = ओषध्यः सन्ति, पर्जन्य = हे पर्जन्यदेव !, सः = तादृशः त्वम्, नः = अस्मभ्यम् महि = अत्यधिकम्, शर्म = सुखम्, यच्छ = देहि।

हिन्दी अनुवाद—जिस पर्जन्य देवता के अनुशासन में पृथिवी अत्यधिक झुकी रहती है, जिसके अनुशासन में गाय आदि पशु पुष्ट होते हैं, जिसके अनुशासन में विविध प्रकार की औषधें हैं। हे पर्जन्य ! वैसे तुम हमें महान् सुख प्रदान करो।

शब्दार्थ—व्रते = कर्म, आज्ञा या अनुशासन में, नन्नमीति = अत्यधिक झुकी रहती है या झुक जाती है, शफवत् = खुरों वाले गाय आदि प्राणी, जर्भुरीति = पुष्ट होते हैं, विश्वरूपाः = विविध प्रकार की, ओषध्यः = ओषधियाँ, महि = महान्, शर्म = सुख, यच्छ = प्रदान करो।

व्याकरण—

नन्नमीति—यङ्लुगन्त नम् धातु से लट्लकार, प्रथम पुरुष एकवचन का रूप।

जर्भुरीति—यङ्लुगन्त भृ (भृञ्‌ मरणे) धातु से अथवा भुर धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष, एक वचन का रूप।

ओषधीः—ओषधि शब्द से प्रथम विभक्ति के बहुवचन का वैदिक रूप। लौकिक संस्कृत में ओषधयः रूप बनता है।

विशेष—(१) मैक्डानल ने व्रत का अर्थ ordinance (अधिनियम), जर्भुरीति का अर्थ 'कूदने लगता है' तथा शर्म का अर्थ आश्रय किया है।

(२) त्रिष्टुप् छन्द है। इसके प्रत्येक पाद में ११-११ वर्ण होते हैं।

अभिक्रन्द स्तनय गर्भमा धा
उदन्वता परिदीया रथेन।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्च
समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥७॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—अभिक्रन्द, स्तनय, गर्भम् आ धाः उदन्वता रथेन परिदीय, विषितं दृतिम् न्यञ्च सु कर्ष, उदवतः निपादाः समाः भवन्तु।

संस्कृत व्याख्या—अभिक्रन्द=अभिमुखं शब्दय, स्तनय=गर्जय, गर्भम्=गर्भस्थानीयं जलम्, आ धाः=धारय, उदन्वता=जलयुक्तेन, रथेन=स्यन्दनेन, परिदीय=परितः भ्रमणं कुरु, विषितम्=सुबुद्धम्, दृतिम्=दृतिवज्जलपूर्णं मेघम्, न्यञ्च=अधोमुखम्, सु कर्ष, वर्षार्थमावर्ष, उद्वतः=उन्नत प्रदेशाः, निपादाः=समविषम प्रदेशाः, समाः=एकस्याः भवन्तु।

हिन्दी अनुवाद—सम्मुख होकर शब्द करो, गर्जना करो, (वनस्पतियों में) गर्भरूप जल का आधान करो, जल से भरे हुए रथ से परिभ्रमण करो। मशक के समान सुबद्ध मेघ को नीचे की तरफ अच्छी तरह से खींचो। ऊँचे तथा ऊबड़-खाबड़ स्थान सम (एक से) हो जायें।

शब्दार्थ—अभिक्रन्द=सामने की ओर शब्द करो, स्तनयः=जोर से गर्जना करो, गर्भम्=गर्भस्थानीय जल को, आधाः=आधान करो, उदन्वता=जल से परिपूर्ण, रथेन=रथ से, परिदीय=परिभ्रमण करो, विषितम्=अच्छी तरह से बंधे हुये, दृतिम्=मशक (मशक के समान मेघ) को, न्यञ्च=नीच की ओर, सु कर्ष=अच्छी तरह से खींचो, समाः भवन्तु=एक समान हो जावें, उद्वतः=ऊँचे, निपादा=ऊबड़-खाबड़ या निम्नोन्नत प्रदेश।

व्याकरण—

आधाः—आङ् उपसर्ग, धा धातु, लुङ् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

परिदीया—परि उपसर्ग, दा धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन। छन्द की दृष्टि से दीर्घ हो गया है।

निपादा—नि+पद्+अण्=निपाद। प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

विशेष—(१) मैक्डानल ने निपादा का अर्थ घाटियाँ माना है।

(२) छन्द की दृष्टि से इस मन्त्र में 'न्यञ्चम्' के स्थान पर 'नियञ्चम्' तथा 'भवन्तूद्वतो' के स्थान पर 'भवन्तूदुवतो' उच्चारण करना चाहिये।

(३) छन्द—त्रिष्टुप्।

महान्तं कोशमुदचा निषिञ्च
स्यन्दतां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि
सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥८॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—महान्तम् कोशम् उदच निषिञ्च। विषिताः कुल्याः पुरस्तात् स्यन्दताम्। द्यावापृथिवी घृतेन व्युन्धि। अघ्न्याभ्यः सुप्रपाणम् भवन्तु।

संस्कृत व्याख्या—महान्तम्=विशालम् प्रवृद्धमिति वा, कोशम्=कोशवन्मेघम्, उदच=उद्गमय, निषिञ्च=नीचैश्च क्षारय। विषिता=जलपूर्णाः, कुल्याः=नद्यः, पुरस्तात्=पूर्वदिगभिमुखम्, स्यन्दताम्=प्रवहन्तु। द्यावापृथिवी=अन्तरिक्षलोकं पृथिवीलोकं च, घृतेन=जलेन, विउन्धि=विशेषेण क्लेदयतु, अघ्न्याभ्यः=धेनेभ्यः, सुप्रपाणम्=प्रचुरमरिमाणं पानीयम् भवतु=जायते।

हिन्दी अनुवाद—(हे पर्जन्य) महान् जल रूपी कोश को अथवा कोश के समान मेघ को ऊपर उठालो तथा नीचे की तरफ सींच दो। जल से भरी हुई नदियाँ पूर्व दिशा की ओर या आगे की ओर बहें। अन्तरिक्ष लोक और पृथिवी लोक को जल से अच्छी तरह गीला कर दो। गायों के लिये अत्यधिक पीने योग्य पानी हो जावे।

शब्दार्थ—महान्तम्=विशाल या बढ़े हुए, कोशम्=जल रूपी कोश को या कोश के समान मेघ को, उदच=ऊपर उठा लो, निषिञ्च=नीचे की ओर सींच दो, स्यन्दताम्=बहें, कुल्याः=नदियाँ, विषिता=पानी से भरी हुई, पुरस्तात्=पूर्व दिशा की तरफ या आगे की ओर, घृतेन=जल से, द्यावापृथिवी=अन्तरिक्षलोक और पृथिवीलोक को, विउन्धि=विशेष रूप से गीला कर दो, सुप्रपाणम्=अच्छी तरह से पीने योग्य पानी, भवतु=हो जावे, अघ्न्याभ्यः=गायों के लिये।

व्याकरण—

उदच—उत् उपसर्ग पूर्वक अञ्चु (गत्यर्थक) धातु से लोट् लकार मध्यम पुरुष, एकवचन का रूप।

उन्धि—उन्दी (भिगोने अर्थ वाली) धातु से लोट् लकार, मध्यम पुरुष एक वचन का रूप।

सुप्रपाणम्—सु एवं प्र उपसर्गपूर्वक पा धातु से युच् प्रत्यय । यु को अनादेश तथा न् का ण् ।

विशेष—(१) मैक्डानल ने 'कोश' का अर्थ 'टोकरी (Bucket) 'घृतेन' का अर्थ 'घी' से तथा पुरस्तात् का अर्थ आगे की ओर किया है। संस्कृत व्याख्या में प्रदत्त अर्थ सायण के अनुसार है ।

(२) छन्द की दृष्टि से 'व्युन्धि' के स्थान पर 'वि उन्धि' तथा 'भवत्वघ्न्याभ्य:' के स्थान पर 'भवतु अघ्नियाभ्य:' उच्चारण करना चाहिये ।

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभाया-
कर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कम्
उत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥१०॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वय:—वर्षम् अवर्षी:, उत् ऊ सु गृभाय । धन्वानि । अक: अति एतवै उ । भोजनाय कम् ओषधी: अजीजन: । उत् प्रजाभ्य: मनीषाम् अविद: ।

संस्कृत व्याख्या—वर्षम्=वृष्टिम्, अवर्षी: वृष्टवान् असि, उत ऊ=पदपूरणार्थकम् निपातद्वयम् सुगृभाय=सुष्ठु गृहाण । धन्वानि=जलहीन-प्रदेशान्, अक:=जलसम्पन्नान् कृतवान् असि। अति एतवै=अतिक्रम्य गमनाय, उ=च, (अक:=कृतवानसि) । भोजनाय=भोगाय, कम्=पादपूरण: निपात:, ओषधी:=ओषध्य:, अजीजन:=उदपादय: । उत् प्रजाभ्य:=जनेभ्य:, मनीणाम्=स्तुतिम्, अविद:=प्राप्तवानसि ।

हिन्दी अनुवाद—(हे पर्जन्य देव !) वर्षा को बरसा चुके हो। अब इसे अच्छी तरह से रोक लो। मरुस्थलों को (तुमने) जलवान बना दिया है तथा उन्हें पार करके जाने योग्य कर दिया है। भोग करने के लिये (तुमने) वनस्पतियों को उत्पन्न कर दिया है तथा तुम प्रजाओं से स्तुति को प्राप्त हो चुके हो।

शब्दार्थ—अवर्षी=बरसा चुके हो, वर्षम्=वर्षा को, सुगृभाय=अच्छी प्रकार से रोक लो, अक:=कर दिया है (जल वाला बना दिया है), धन्वानि=मरुस्थलों को, अतिएतवै=पार करके जाने योग्य, अजीजन:=उत्पन्न कर दिया है, ओषधी:=वनस्पतियों को, भोजनाय=भोग करने के लिये, कम्=पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त निपात, उत=और, प्रजाभ्य:=लोगों से, अविद:=प्राप्त कर चुके हो, मनीषाम्=स्तुति को ।

व्याकरण—

अवर्षी—वृष् धातु, लङ् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन ।

गृभाय—गृहाण के स्थान पर प्रयुक्त वैदिक रूप । ग्रह् धातु से लोट् लकार के मध्यम पुरुष के एकवचन का रूप ।

एतवै—इण् धातु से तुमन के अर्थ में "तुमर्थे सेसेनसे०" सूत्र से तवै प्रत्यया।

अजीजन:—णिजन्त जन् धातु (जनि) से लङ् लकार में मध्यम पुरुष के एकवचन का रूप।

विशेष—(१) सायण, मैक्डानल, विल्सन और बुल्हर ने मनीषा का अर्थ स्तुति किया है किन्तु म्योर तथा पीटर्सन ने इसका अर्थ कामना (Desire) किया है।

(२) कम् निपात का प्रयोग निरर्थक पादपूर्ति मात्र के लिये किया गया है।

(३) छन्द—त्रिष्टुप्।

पूषा सूक्त

(ऋग्वेद ६/५३) (मेरठ योरख०)

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये।
धिये पूषन्नयुज्महि ॥१॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के छठे मण्डल के पूषा सूक्त से लिया गया है। इसके ऋषि भरद्वाज और देवता पूषा हैं। पूषा की ८ सूक्तों में स्तुति की गयी है, जिनमें ५ सूक्त केवल छठे मण्डल में ही हैं। पूषन् पोषण शक्ति के प्रतीक देवता हैं।

अन्वय:—पथस्पते पूषन् ! वयम् उ वाजसातये धिये रथम् न त्वा अयुज्महि।

संस्कृत व्याख्या—हे पथस्पते पूषन् !=मार्गपालक देव पूषन् !, वयम्=स्तोतार:, उ, वाजसातये=अन्नप्राप्तये, धिये=कर्मणां सम्पादनाय, रथं न=स्यन्दनमिव, अयुज्महि=प्रयुञ्ज्महि।

हिन्दी अनुवाद—हे मार्गों के रक्षक पूषन् ! हम लोग अन्नों की प्राप्ति के लिये तथा कर्मों के सम्पादन के लिये रथ के समान प्रयुक्त करते हैं।

शब्दार्थ—पथस्पते=मार्गों के स्वामी या रक्षक, रथं न=रथ के समान, वाजसातये=अन्नों को प्राप्त करने के लिये, धिये=कर्मों के सम्पादन के लिये, अयुज्महि=प्रयुक्त करते हैं।

व्याकरण—

वाजसातये—सन् + क्तिन्=सातिः। वाजस्य सातिः वाजसातिः। चतुर्थी विभक्ति, एकवचन।

अयुज्महि—युज् धातु, लङ् लकार उत्तम पुरुष, बहुवचन का रूप। लौकिक संस्कृत में अयुञ्ज्महि रूप बनता है।

विशेष—(१) छन्द—गायत्री। इसमें आठ-आठ वर्णों के तीन पाद होते हैं।

अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम्।
वामं गृहपतिं नय ॥२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—नर्यम् वसु अभि नः वीरम् प्रयतदक्षिणम् वामम् गृहपतिम् नय।

संस्कृत व्याख्या—नर्यम्=नृभ्यः मनुष्येभ्यः हितम्=कल्याणकरम्, वसु=धनम्, अभि=लब्धुम्, नः=अस्मान्, वीरम्=दारिद्र्यनाशकम्, प्रयतदक्षिणम्=शुद्धधनम् दक्षिणायकम् वा, वामम्=स्पृहणीयम्, गृहपतिम्=गृहस्थम्, नय=प्रापय।

हिन्दी अनुवाद—(हे पूषन्!) मनुष्यों के लिये कल्याणकारी धन को प्राप्त करने के लिये हमें गरीबी दूर कर देने वाले, शुद्ध धन वाले या दक्षिणा देने वाले, स्पृहणीय गृहस्थ के पास पहुँचा दो।

शब्दार्थ—अभि=पाने के लिये, नर्यम्=मनुष्यों के लिये कल्याणकारी वसु=धन, वीरम्=गरीबी भगा देने वाले, प्रयतदक्षिणम्=शुद्धधन वाले या, दक्षिणा देने वाले, वामम्=स्पृहणीय, गृहपतिम्=गृहस्थ तक, नय=पहुँचा दो।

व्याकरण—

नर्यम्—नृभ्यः हितम्। नृ+यत्।

वामम्—वन्+मनिन्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

विशेष—(१) ग्रासमान ने नय का सम्बन्ध वसु के साथ किया है। उन्होंने अर्थ किया है—'हमें धन लाओ'।

(२) छन्द की दृष्टि से 'नर्यम्' का उच्चारण 'नरियम्' करना चाहिये।

(३) छन्द गायत्री।

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय।
पणेश्चिद् वि म्रदा मनः ॥३॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—आघृणे पूषन्! अदित्सन्तम् चित् दानाय चोदय। पणेः चित् मनः विम्रद।

संस्कृत व्याख्या—आघृणे पूषन्!=हे आगतदीप्ते पूषन्! अदित्सन्तम्=प्रदातुम् अनिच्छन्तम्, दानाय=दानार्थम्, चोदय=प्रेरय। पणे=पणिजः, वार्धुषिकस्य लुब्धस्य वा, चित=अपि, मनः=हृदयम्, विम्रद=मृदु कुरु।

हिन्दी अनुवाद—हे दीप्तिमान् देव! दान देने की इच्छा न करने वाले व्यक्ति को (हमारे लिये) दान देने की प्रेरणा दो। बनिये, सूदखोर अथवा लोभी व्यक्ति के हृदय को कोमल बना दो।

शब्दार्थ—अदित्सन्तम्=दान देने की इच्छा न करने वाले व्यक्ति को, आघृणे=हे दीप्तिमान्, चोदय=प्रेरित करो, पणेः=बनिया, सूदखोर या लोभी व्यक्ति के, विम्रद=अत्यन्त कोमल बना दो।

व्याकरण—

अदित्सन्तम्—सन्नन्त दा धातु+शतृ=दित्सन्। न दित्सन् अदित्सन्, तम्। द्वितीया विभक्ति के एकवचन का रूप।

म्रद—म्रद् धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

चोदय—चुद् धातु से णिजन्त प्रक्रिया में लोट् लकार, मध्यम पुरुष एकवचन का रूप।

विशेष—(१)—छन्द—गायत्री।

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि।
साधन्तामुग्र नो धियः ॥४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—उग्र! वाजसातये नः पथः विचिनुहि, मृधः विजहि। नः धियः साधन्ताम्।

संस्कृत व्याख्या—उग्र=हे प्रचण्डबलशालिन् पूषन्! वाजसातये=अन्नप्राप्तये, नः=अस्माकम्, पथः=मार्गान्, विचिनुहि=शोधितान्कुरु, मृधः=बाधकान् चौरादीन्, विजहि=बाधस्व। (नः=अस्माकम्) धियः=बुद्धयः कर्माणिवा, साधन्ताम्=सिध्यन्तु।

हिन्दी अनुवाद—हे प्रचण्ड बल वाले पूषन्! अन्नों को प्राप्त करने के लिये हमारे मार्गों का विशेष रूप से चयन (शोधन) करो तथा बाधक चोर आदि को भगा दो। हमारी बुद्धियाँ या कर्म सिद्ध हों।

शब्दार्थ—पथः=मार्ग, वाजसातये=अन्न को प्राप्त करने के लिये, चिनुहि=चयन करो या शोधन करो, मृधः=बाधक चोर आदि को, विजहि=भगा दो, धियः=बुद्धियाँ या कर्म, साधन्ताम्=सिद्ध हों।

व्याकरण—

चिनुहि—चि धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुषः एकवचन।

मृधः—मृध्+क्विप्। द्वितीया विभक्ति बहुवचन।

जहि—हन् धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

साधन्ताम्—साध् (आत्मनेपद) लोट् लकार, प्रथम पुरु[illegible]कवचन।

विशेष—(१) छन्द—गायत्री।

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—कवे! आरया पणीनाम् हृदया परितृन्धि। अथ ईम् अस्मभ्यम् रन्धय।

संस्कृत व्याख्या—कवे=हे प्राज्ञ पूषन् ! आरया=सूक्ष्मलोहाग्रदण्डेन, पणीनाम्=वणिजां लुब्धानाम्, हृदया=मनांसि, परितृन्धि=परितः तृन्धि । अथ=तदनन्तरम्, ईम्=पादपूरणार्थः निपातः, अस्मभ्यम् रन्धय=वशीकुरु ।

हिन्दी अनुवाद—हे बुद्धिमान् पूषन् ! लोभी बनियों (सूदखोरों) के कठोर हृदयों को बींध दो । इसके बाद (उन्हें) हमारे वश में कर दो ।

शब्दार्थ—परितृन्धि=बींध दो, पणीनाम्=लोभी व्यापारियों के, हृदया=मनों को, कवे=हे बुद्धिमान् पूषन् देव !, अथ=इसके बाद, अस्मभ्यम्=हमारे, रन्धय=वश में भर दो ।

व्याकरण—

तृन्धि—तृह धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन ।

रन्धय—रध् धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन ।

हृदया—हृदयानि के स्थान पर प्रयुक्त वैदिक रूप ।

विशेष—(१) छन्द की दृष्टि से इस मन्त्र में तृन्धि को 'तिरिन्धि' पढ़ना चाहिये ।

(२) छन्द—गायत्री ।

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे ।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥८॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—कवे ! पणीनां हृदया आरिख, किकिरा कृणु । अथ इम् अस्मभ्यम् रन्धय ।

संस्कृत व्याख्या—कवे=हे बुद्धिमान् पूषन् ! पणीनां=लुब्धानां वाणिजाम्, हृदया=मनांसि, आरिख=आलिख, (अथ) किकिरा=शिथिलानि, कृणु=कुरु । अथ=अनन्तरम्, ईम्=पादपूरणार्थः निपातः, अस्मभ्यम् रन्धय=वशीकुरु ।

हिन्दी अनुवाद—हे बुद्धिमान् पूषन् ! लोभी व्यापारियों के हृदय को अनुकूल बना दो तथा कोमल कर दो । इसके बाद (उन्हें) हमारे वश में कर दो ।

शब्दार्थ—आ रिख=लिख दो या अनुकूल बना दो, किकिरा=शिथिल या कोमल, कृणु=कर दो, पणीनाम्=लोभी व्यापारियों के, हृदया=मनों को, कवे=हे बुद्धिमान् (पूषन्) ! अथ=इसके बाद, ईम्=पाद पूर्ति के लिये प्रयुक्त एक निपात, अस्मभ्यम्=हमारे, रन्धय=वश में कर दो ।

व्याकरण—

आलिख—आ+रिख् (लेखने) धातु से लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन ।

किकिरा—कृ धातु (विक्षेपे) से यङ्लुगन्त प्रक्रिया में अच् प्रत्यय ।

कृणु—कृ धातु लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

विशेष—(१) राथ किकिरा पद को फिर फिर ध्वनि का अनुकरण मानते हैं। किसी वस्तु को काटने पर ऐसी ही ध्वनि उत्पन्न होती है।

(२) छन्द—गायत्री।

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥८॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—आघृणे पूषन्! ब्रह्मचोदनीम् याम् आराम् बिभर्षि, तया समस्य हृदयम् आरिख, किकिरा कृणु।

संस्कृत व्याख्या—हे आघृणे पूषन्=हे आगतदीप्ते पूषन्! ब्रह्मचोदनीम्=अन्नानां प्रेरयित्रीम्, याम्=प्रसिद्धाम्, आराम्=सूक्ष्मलोहाग्रदण्डम्, बिभर्षि=हस्ते धारयसि, तया=आरया, समस्य=सर्वस्य वणिग्जनस्य, हृदयम्=मनः, आरिख=आलिख अनुकूलय वा, किकिरा=प्रशिथिलन्, कृणु=कुरु।

हिन्दी अनुवाद—हे दीप्तिमान् पूषन्! अन्नों को प्रेरित करने वाली जिस आरा को (तुम) धारण करते हो, उस आरा से सभी लोभी व्यापारियों के हृदय को लिख दो (अनुकूल बना दो) और कोमल (शिथिल) कर दो।

शब्दार्थ—ब्रह्मचोदनीम्=अन्नों को प्रेरित करने वाली, आराम्=आरी को, बिभर्षि=(हाथ में) धारण करते हो, समस्य=सब (लोभी व्यापारियों) के, हृदयम्=मन को, आरिख=लिख दो या अनुकूल बना दो, किकिरा=शिथिल (कोमल) कृणु=कर दो।

व्याकरण—

बिभर्षि—भृ धातु, लट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

ब्रह्मचोदनीम्—चुद्+ल्युट+ङीप्=चोदनी। ब्रह्मणः अन्नस्य चोदनी=ब्रह्मचोदनी ताम्। द्वितीया विभक्ति एकवचन।

विशेष—(१) ब्रह्मचोदनी का अर्थ महीधर ने ब्रह्म को प्रेरित करने वाली, तथा पीटर्सन प्रार्थना को प्रेरित करने वाली किया है।

(२) छन्द की दृष्टि से 'बिभर्ष्याघृणे' के स्थान पर 'बिभर्षि आघृणे' उच्चारण करना चाहिये।

(३) अनुष्टुप् छन्द। इसमें आठ-आठ वर्णों के चार पाद होते हैं।

या ते अष्ट्रा गो ओपशाघृणे पशुसाधनी।
तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥९॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—आघृणे! या ते अष्ट्रा गोओपशा पशुसाधनी, तस्याः ते सुम्नम् ईमहे।

संस्कृत व्याख्या—आघृणे = हे आगतदीप्ते पूषन् !, या = प्रसिद्धा, ते = तव, अष्ट्रा = अष्ट्रा नाम्नी आरा, गो ओपशा = गोधनवर्धिका, पशुसाधनी = पशूनां साधयित्री अस्ति, तस्याः = आरायाः सम्बन्धि, सुम्नम् = सुखम्, ईमहे = याचामहे।

हिन्दी अनुवाद—हे दीप्तिमान पूषन् ! जो तुम्हारी अष्ट्रा आरा (लोहे का बना हुआ एक अष्ट्रा नामक अस्त्र) गोधन को बढ़ाने वाली अथवा गायों को हम तक पहुँचाने वाली है एवं पशुओं को संचालित या सिद्ध करने वाली है, इससे होने वाले सुख की हम याचना करते हैं।

शब्दार्थ—अष्ट्रा = लोहे से निर्मित एक अस्त्र, गो ओपशा = गोधन को बढ़ाने वाली अथवा गायों को हम तक पहुँचाने वाली, आघृणे = हे दीप्तिमान्, पशुसाधनी = पशुओं को संचालित करने वाली, सुम्नम्, सुख को, ईमहे = चाहते हैं।

व्याकरण—

अष्ट्रा—अश् + ष्ट्रन् + टाप्।

गो ओपशा—गवाम् ओपशा (आ + उप + शीङ् + ड + टाप्)।

सुम्नम्—सु + म्ना + क = सुम्न। द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

विशेष—(१) छन्द की दृष्टि से 'गो ओपशाघृण' को 'गो ओपशाआघृणे' उच्चारण करना चाहिये।

(२) गायत्री छन्द।

पूषा सूक्त

(ऋग्वेद ६/५४) (बुन्देल० अवध, मेरठ Hons)

सं पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति।
य एवेदमिति ब्रवत् ॥१॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद छठे मण्डल के पूषा सूक्त से लिया गया है। इसके ऋषि भरद्वाज और देवता पूषा हैं। पूषा पोषण शक्ति के प्रतीक देवता है।

अन्वयः—पूषन् ! विदुषा सम् नय, यः अञ्जसा अनुशासति। यः एव इदम् इति ब्रवत्।

संस्कृत व्याख्या—पूषन् = हे पोषण देव ! विदुषा = बुद्धिमता जनेन, संनय = संगमय, यः = बुद्धिमान् जनः, अञ्जसा = सरलमार्गेण, अनुशासति = नष्टधनलब्ध्युपायमुपदिशति। यः = विद्वान्, एवेदम् = एतत् नष्ट धनमिति, ब्रवत् = ब्रवीति।

हिन्दी अनुवाद—हे पूषन् देव ! उस बुद्धिमान् व्यक्ति से मिला दो, जो सरल मार्ग से, (नष्ट धन प्राप्ति का) उपाय बतलाता है तथा जो (नष्ट धन) यह है ऐसा कह देता है।

शब्दार्थ—विदुषा = विद्वान् व्यक्ति से, संनय = मिला दो, अञ्जसा = सरल

मार्ग से, अनुशासित=(नष्ट धन की प्राप्ति का) उपाय बतलाता है, इदमेव=(तुम्हारा नष्ट धन) यही है, ब्रवत्=कह देता है।

व्याकरण—

ब्रवत्—ब्रू धातु लेट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन। लेट् लकार का प्रयोग नित्य छान्दस है।

अनुशासति—अनु उपसर्ग+शास् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप। लोक में अनुशास्ति रूप बनता है।

विशेष—(१) छन्द—गायत्री। इसमें आठ-आठ वर्णों के तीन पाद होते हैं।

पूषणश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽवपद्यते।
नो अस्या व्यथते पविः।

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—पूषणः चक्रम् न रिष्यति, कोशः न अवपद्यते। अस्य पविः नो व्यथते।

संस्कृत व्याख्या—पूषणः=पोषकस्य सूर्यस्य, चक्रम्=एतन्नामकमायुधम्, न=नहि, रिष्यति=विनश्यति। (अस्य=चक्रस्य), कोशः मध्यभागः, न=नहि, अवपद्यते=हीयते। अस्य=चक्रस्य, पविः=धारा, नो=नहि, व्यथते=कुण्ठितो जायते।

हिन्दी अनुवाद—पूषा देवता का चक्र नामक आयुध नष्ट नहीं होता है। (इसका) कोश हीन नहीं होता है। इसकी धारा कुण्ठित नहीं होती है।

शब्दार्थ—चक्रम्=चक्र नामक आयुधविशेष, नरिष्यति=नष्ट नहीं होता है, कोशः=चक्र आयुध का मध्य भाग, न अवपद्यते=हीन न ही होता है, व्यथते=कुण्ठित होती है, पविः=धारा।

व्याकरण—

पूषणः—पूषन् शब्द से षष्ठी विभक्ति के एकवचन का रूप।

रिष्यति—रिष् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

व्यथते—व्यथ् धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

अवपद्यते—अव उपसर्ग पूर्वक पद् धातु से लट् लकार में प्रथम पुरुष, एकवचन का रूप।

विशेष—(१) छन्द—गायत्री।

यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते।
प्रथमो विन्दते वसु ॥४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—यः अस्मै हविषा अविधत्, तम् पूषा अपि न मृष्यते। प्रथमः वसुविन्दते।

संस्कृत व्याख्या—यः=यजमानः, अस्मै=पूषन्देवाय, हविषा=पुरोडाशादि-हविर्द्रव्येन, अविधत्=परिचरति, तम्=यजमानम्, पूषा अपि=देवः पूषा अपि, न मृष्यते=हानिं न प्रयच्छति। प्रथमः=प्रमुखः सः पुरुषः, वसु=धनम्, विन्दते=प्राप्नोति।

हिन्दी अनुवाद—जो (यजमान) इस (पूषा देवता) के लिये हवियों के द्वारा परिचर्या करता है, उस (यजमान) को पूषा देवता भी कभी हानि नहीं पहुंचाता है। वह प्रमुख (यजमान) धन को प्राप्त करता है।

शब्दार्थ—हविषा=चरु पुरोडाश आदि हविद्रव्य के द्वारा, अविधत्=परिचया करता है, न मृष्यते=हानि नहीं पहुँचाता है, प्रथमः=(सभी उपासकों या यजमानों में) प्रमुख, विन्दते=प्राप्त करता है, वसुम्=धन को।

व्याकरण—

अविधत्—यह विध् धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन का रूप है, जो यहाँ पर लट् लकार के अर्थ में प्रयुक्त हुआ।

विन्दते—विद् धातु, लट् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष—मैक्डानल ने मृष्यते का अर्थ नहीं भूलता है किया है। सायण ने इसका अर्थ 'थोड़ी भी हानि नहीं पहुँचाता है' (ईषदपि न हिनस्ति) किया है।

(२) छन्द—गायत्री।

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः
पूषा वाजं सनोति नः ॥४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—पूषा नः गाः अन्वेतु, पूषा अर्वतः रक्षतु, पूषा नः वाजम् सनोतु।

संस्कृत व्याख्या—पूषा=पोषकः देवः, नः=अस्माकम्, गाः=धेनूः, अन्वेतु=रक्षार्थमनुगच्छतु, पूषा=पोषकः देवः, अर्वतः=अश्वान्, रक्षतु=अवतु, पूषा=पोषकः देवः, नः=अस्मभ्यम्, वाजम्=अन्नम् बलम् वा, सनोतु=ददातु।

हिन्दी अनुवाद—पूषा देवता (रक्षा के लिये) हमारी गायों के पीछे-पीछे चले। पूषा देवता (हमारे) घोड़ों की रक्षा करे। पूषा देवता हमारे लिये अन्न या बल प्रदान करे।

शब्दार्थ—गाः=गायों का, अन्वेतु=अनुसरण करे या (रक्षा के लिये) पीछे-पीछे चले, अर्वतः=घोड़ों की, रक्षतु=रक्षा करे, वाजम्=अन्न या बल को, सनोतु=प्रदान करे, नः=हमारे लिये।

व्याकरण—

गाः—गो शब्द के द्वितीया विभक्ति का बहुवचन। अनु के योग में यहाँ पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

अन्वेतु—अ + इण्, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
अर्वतः—अर्वत् शब्द से द्वितीया विभक्ति का बहुवचन।
सनोतु—षणु धातु, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
विशेष—(१) मैक्डानल ने वाजम् का अर्थ लूटा हुआ धन किया है।
(२) छन्द—गायत्री।

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे।
अथारिष्टाभिरा गहि ॥७॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—माकिः नेशत्, माकीम् रिषत्, माकीम् केवटे संशारि। अथ अरिष्टाभिः आ गहि।

संस्कृत व्याख्या—(अस्माकं गोधनमिति अध्याह्रियते) माकिः=कदापि न, नेशत्=नश्यतु, माकीम्=कदापि न, रिषत्=हिंस्यताम्, माकीम्=कदापि न, केवटे=कूपे, संशरि=निपत्य नश्यतु। अथ=अनन्तरम्, अरिष्टाभिः=अहिंसिताभिः गोभिः=सह, आ गहि=आगच्छ।

हिन्दी अनुवाद—(हे पूषन् देव! हमारा गोधन) कभी भी नष्ट न होवे, कभी भी मारा न जावे, कभी भी कुवे में गिरकर नष्ट न होवे। इसके बाद तुम हिंसा न की गई गई गायों के साथ आ जाओ।

शब्दार्थ—माकिः=कभी नहीं, नेषत्=नष्ट होवे, माकीम्=कभी नहीं, रिशत्=मारा जावे, संशारि=(गिरकर) नष्ट होवे, केवटे=कुआ में, अरिष्टाभिः =हिंसा न की गई गायों के साथ, आ गहि=आ जाओ।

व्याकरण—

माकिः, माकीम्—'कदापि न' अर्थ में प्रयुक्त अव्यय पद।
नेशत्—नश् धातु, लेट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
रिषत्—रिष् धातु, लेट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।
संशारि—सम् + शृ धातु, लुङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

अरिष्टाभिः—न रिष्टा अरिष्टा, तृतीया विभक्ति का बहुवचन। रिष्टा= रिष् + क्त + टाप्।

विशेष—(१) मैक्डानल ने 'अरिष्टाभिः' का अर्थ 'घाव रहित' (Uninjured) किया है।
(२) छन्द—गायत्री।

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—पूषन् ! तव व्रते वयम् कदाचन न रिष्येम । इह ते स्तोतारः स्मसि ।

संस्कृत व्याख्या—पूषन्=हे पोषण देव !, तव=त्वदीये, व्रते=कर्माणि अनुशासने वा, वयम्=स्तोतारः, कदाचन=कदाचिदपि, न रिष्येम=हिंसिताः न स्याम। इह=अस्मिन् कर्माणि, ते=तव, स्तोतारः=स्तुतिकर्तारः, स्मसि=स्मः ।

हिन्दी अनुवाद—हे पूषन् देव ! तुम्हारे व्रत अनुशासन का पालन करते रहने पर हम लोग कभी भी हिंसित न होवें । इस व्रत में या कर्म में हम तुम्हारे स्तुति करने वाले बने रहें ।

शब्दार्थ—व्रते=व्रत या अनुशासन का पालन करते रहने पर, रिष्येम=हिंसित होवें, कदाचन=कभी भी, स्तोतार=स्तुति करने वाले, इह=इस व्रत या अनुशासन के विषय में, स्मसि=बने रहें ।

व्याकरण—

रिष्येम—रिष् धातु, विधिलिङ् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन ।

स्मसि—अस् धातु, लट् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन का वैदिक रूप। लोक में स्मः रूप प्रयुक्त होता है ।

विशेष—(१) मैक्डानल के अनुसार 'व्रते' का अर्थ 'सेवा' में रहने पर' हो ।
(२) छन्द—गायत्री ।

आपः सूक्त

(ऋग्वेद ७/४९) (गोरखपुर, अवध, मेरठ Hons)

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति
खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।
समुद्रार्था याः शुचय पावका
स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के आपः सूक्त से लिया गया है । इस सूक्त के ऋषि वसिष्ठ तथा देवता अपस् हैं । ऋग्वेद के चार सूक्तों में अपस् देवताओं का वर्णन किया गया है । ये जल के देवता हैं । इनका प्रयोग हमेशा बहुवचन में ही मिलता है ।

अन्वय.—याः आपः दिव्याः उतवा स्रवन्ति, खनित्रिमाः उतवा याः स्वयंजाः, समुद्रार्थाः याः शूचयः पावकाः ताः देवीः आपः इह माम् अवन्तु ।

संस्कृत व्याख्या—याः आपः=जलानि, दिव्याः=अन्तरिक्षलोकजाः सन्ति, उत वा=अपि च, स्रवन्ति=नद्यादिरूपेण प्रवहन्ति, खनित्रिमाः=खननेन कूपादिरूपेण सजाताः, उतवा=अपि च, यः स्वयंजाः=स्वयमेव समुत्पन्नाः सन्ति, समुद्रार्थाः=समुद्रे गमनशीला, याः शुचयः=दीप्तिमुक्त्ताः, पावकाः=शोधिश्च सन्ति ताः देवीः=दिव्यगुण-सम्न्वताः, आपः=जलानि, इह=अस्मिन् लोके, माम् अवन्तु=रक्षन्तु।

हिन्दी अनुवाद—जो जल अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले हैं और जो (नदी आदि के रूप में) बहते हैं, जो खोदने से (कुंआ आदि के रूप में) उत्पन्न हुए हैं और जो झरने आदि के रूप में) स्वय उत्पन्न होते हैं, जो समुद्र में मिल जाने वाले हैं, जो दीप्तिमान् हैं, जो पवित्र करने वाले हैं, वे दिव्यगुणों से सम्पन्न जलमेरी रक्षा करें।

शब्दार्थ—दिव्याः=अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले, स्रवन्ति=बहते हैं, खनित्रिमा=खोदने से उत्पन्न होने वाले, स्वयंजाः,=अपने आप उत्पन्न होने वाले, समुद्रार्थाः=समुद्र में मिल जाने वाले, शुचयः दीप्तिमान्, पावकाः=पवित्र कर देने वाले, देवीः=दिव्य गुणों से सम्पन्न, इह=लोक में, अवन्तु=रक्षा करें।

व्याकरण—

आपः—इसका प्रयोग नित्य बहुवचन में होता है।

देवीः—प्रथमा विभक्ति के बहुवचन का वैदिक रूप।

अवन्तु—अव् धातु, लोट् लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

विशेष—(१) सायण ने शुचयः का अर्थ दीप्तिमान् तथा मैक्डानल ने स्वच्छ किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्। इसके प्रत्येक पाद में ११-११ वर्ण होते हैं।

यासां राजा वरुणो याति मध्ये
सत्यानृते अवपश्यञ्जनाम्।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावका
स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥३॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—यासाम् राजा वरुणः जनानाम् सत्यानृते अवपश्यन् मध्ये याति, याः मधुश्चुतः शुचयः पावकाः ताः देवीः आपः इह माम् अवन्तु।

संस्कृत व्याख्या—यासाम्=अपाम्, राजा=स्वामी, वरुणः=वरुणदेवः, जनानाम्=मनुष्याणाम्, सत्यानृते=सत्यासत्ये, अवश्यम्=विलोकयन्, मध्ये=अन्तरिक्षलोके, याति=गच्छति, याः=आपः, मधुश्चुतः=मधुररसं क्षरन्तयः, शुचयः=दीप्तियुक्ताः, पावकाः=शोधयित्र्यः, ताः देवीः=दिव्यगुण सम्पन्नाः, आपः=जलानि, इह=अस्मिन् लोके, माम् अवन्तु=रक्षन्तु।

हिन्दी अनुवाद—जिनका राजा वरुण लोगों के सत्य एवं असत्य को देखता हुआ अन्तरिक्षलोक में गमन करता है, जो मधुर रस को टपकाने वाले, दीप्तिमान और पवित्र करने वाले हैं, वे दिव्यगुणों से सम्पन्न जल मेरी रक्षा करें।

शब्दार्थ—सत्यानृते=सत्य और झूठ को, अवपश्यन्=देखता हुआ, मध्ये=अन्तरिक्षलोक में, याति=गमन करता है, मधुश्चुत:=मधुर रस को टपकाने वाले, शुचय:=दीप्तिमान्, पावका:=पवित्र करने वाले, देवी:=दिव्य गुणों से सम्पन्न, इह=इस लोक में, अवन्तु=रक्षा करें।

व्याकरण—

सत्यानृते—सत्यम् अनृतम् च सत्यानृते। द्वितीया विभक्ति द्विवचन।

अवपश्यन्—अव+दृश्+शतृ।

विशेष—(१) सायण ने मधुश्चुत: का अर्थ 'रसं क्षरन्त्य:' (रस को टपकाने वाले) किया है, जबकि मैकडानल ने Distil Sweetness (मिठास टपकाने वाले) किया है।

(२) छन्द—गायत्री।

यासु राजा वरुणो यासु सोमो
विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्नि: प्रविष्ट
स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वय:—राजा वरुण: यासु, सोम: यासु, विश्वे देवा: यासु ऊर्जम् मदन्ति। वैश्वानर: अग्नि: यासु प्रविष्ट:। ता: देवी: आप: इह माम् अवन्तु।

संस्कृत व्याख्या—राजा=जलानां स्वामी, वरुण:, यासु=अप्सु, सोम: यासु:=अप्सु, विश्वे=सर्वे, देवा:=देवता:, यासु=अप्सु, ऊर्जम्=अन्नम्, मदन्ति=प्रसन्नतामनुभवन्ति, वैश्वानर:=सर्वेषां नेता, अग्नि: यासु=अप्सु, प्रविष्ट:=संविष्ट:, ता:=तादृशा:, देवी:=दिव्यगुणसम्पन्ना:, आप:=जलानि, इह=अस्मिन् लोके, माम् अवन्तु=रक्षन्तु।

हिन्दी अनुवाद—(जलों का) राजा वरुण जिनमें विद्यमान है, सोम जिनमें विद्यमान हैं, सभी देवता जिनमें अन्न से प्रसन्न होते हैं, सभी का नेता अग्नि जिनमें प्रविष्ट है, वे दिव्य गुणों से सम्पन्न जल इस लोक में मेरी रक्षा करें।

शब्दार्थ—ऊर्जम्=अन्न को (खाकर) या अन्न से, मदन्ति=प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, वैश्वानर:=सबका नेता, देवी:=दिव्य गुणों से युक्त, इह=इस लोक में, अवन्तु=रक्षा करें।

व्याकरण—

वैश्वानर:—विश्व+नर+अण् अथवा विश्वान्+कृ+अप्=विश्वानर+अण्=वैश्वानर। यास्क ने वैश्वानर का निर्वचन इस प्रकार किया है—'विश्वान्नरान्नयति' विश्व एनं नरा नयन्तीति वा, अपि वा, अपि वा, विश्वानर एव स्यात्—प्रत्यृत: सर्वाणि भूतानि तस्य-वैश्वानर:।

विशेष—(१) 'विश्वे देवा यासृजं मदन्ति' का अर्थ मैक्डानल ने 'सभी देवता जिनमें अत्यन्त शक्ति का पान करते हैं' (in whom all the Gods drink exhilarating strength) किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

वास्तोष्पति सूक्त

(ऋग्वेद ७/५४) (मेरठ)

वास्तोस्पते प्रति जानीह्यस्मा
न्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद में एक मात्र प्राप्त सप्तम मण्डल के वास्तोस्पति सूक्त से लिया गया है। इसके ऋषि वसिष्ठ और देवता वास्तोष्पति है। वास्तोष्पति गृह के पालक देवता हैं।

अन्वय:—वास्तोष्पति! अस्मान् प्रतिजानीहि न: सु आवेश: अनमीव: भव। त्वा ईमहे तत् त: प्रतिजुषस्व। न: द्विपदे शम्, चतुष्पदे शम् भव।

संस्कृत व्याख्या—वास्तोष्पते! हे गृहस्थ पालक देव! अस्मान्=स्तोतॄन्, प्रतिजानीहि=प्रबुध्यस्व। न:=अस्माकम्, स्वावेश:=शोभन:, निवास:, अनमीव:=रोगरहित:, भव। त्वा=त्वाम्, ईमहे=यद्धनादिकं याचामहे, तत्=तद्धनादिकम्. न:=अस्मभ्यम्, प्रतिजुषस्व=प्रयच्छ, न:=अस्माकम्, द्विपदे=पुत्रादिकाय, शम्=सुखकर:, चतुष्पदे=गवादिकाय, शम्=सुखकरो भव।

हिन्दी अनुवाद—हे वास्तोष्पते देव! हम लोगों को पहचान लो। हमारे सुन्दर दाता एवं रोग रहित करने वाले हो जाओ। तुमसे जो याचना करते हैं, वह हमें प्रदान करो। हमारे पुत्रादिजनों के लिये और चौपाये गौ आदि पशुओं के लिये सुखकर बनो।

शब्दार्थ—वास्तोस्पते=हे घर के पालक वास्तोस्पते देव!, अनुजानीहि=पहचान लो, सु आवेश=सुन्दर निवास प्रदान करने वाले, अनमीव:=रोग मुक्त करने वाले, भव=बनो, ईमहे=याचना करते हैं, प्रतिजुषस्व=प्रदान करो,

द्विपदे=दो पैर वाले पुत्रादि जनों के लिये, चतुष्पदे=चौपाये पशुओं के लिये शम्=सुख प्रदान करने वाले।

व्याकरण—

वास्तोष्पते—वास्तोः=गृहस्य पते=स्वामिन्।

जानीहि—जा धातु लोट् लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

स्वावेशः—शोभनः आवेशः यस्मात् सः (बहुव्रीहि)।

जुषस्व—जुष् धातु लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) ग्रासमान ने स्वावेशः का अर्थ सुन्दर प्रवेश, रॉथ ने सरलता से प्रवेश योग्य तथा सायण ने सुन्दर निवास देने वाला किया है।

(२) छन्द की दृष्टि से 'आनीध्यस्मान्' को जानीहि अस्मान्' तथा 'स्वावेशः' को 'सु आवेश' पढ़ना चाहिये।

(३) छन्द—त्रिष्टुप्। इसके चारों पादों में ११-११ वर्ण होते हैं।

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि
गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव
पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ॥२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत।

अन्वय—वास्तोष्पते! नः प्रतरणः गयस्फानः एधि। इन्दो! सख्ये गोभिः अश्वेभिः अजरासः स्याम। पिता पुत्रान् इव नः प्रति जुषस्व।

संस्कृत व्याख्या—वास्तोष्पते=हे गृहस्य पालक देव!, नः=अस्माकम्, प्रतरणः=उन्नतिकर्ता, गयस्फानः=धनप्रवर्धकः, एधि=भव। इन्दो!=हे आह्लादक देव! ते=तव, सख्ये=मित्रतायाम्, गोभिः=धेनुभिः अश्वेभिः=घोटकैः च सह, अजरासः=जरारहिताः, स्याम=भवेम। पिता=जनकः, पुत्रान्=तनयान्, इव=यथा, नः=अस्मान्, प्रति जुषस्व सेवस्य।

हिन्दी अनुवाद—हे वास्तोष्पति देव! हमारी उन्नति करने वाले और धनों को बढ़ाने वाले बनो। हे आह्लादक देव! तुम्हारी मित्रता हो जाने पर हम गायों और घोड़ों के साथ जरा से रहित हो जावें। जिस प्रकार पिता पुत्रों का पालन करता है, उसी प्रकार हमारा पालन करो।

शब्दार्थ—प्रतरण उन्नति करने वाले, एधि=बनो, गयस्फानः=धनों को बढ़ाने वाले, इन्दो!=हे चन्द्रमा के समान आह्लादक देव!, अजरासः=जरारहित, प्रतिजुषस्व=पालन करो।

व्याकरण—

प्रतरण—प्र+तृ+ल्युट्→अन।

गयस्फानः—स्फाय् + ल्युट्→अन, यलोप=स्फानः। गयस्य धनस्य स्फानः प्रवर्धकः गयस्फानः।

अजरास—अजर शब्द से प्रथमा के बहुवचन का वैदिक रूप।

विशेष—(१) छन्द की दृष्टि से सख्ये को सखये और स्याम को सियाम पढ़ना चाहिये।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते
सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो
पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—वास्तोष्पते! शग्मया रण्वया गातुमत्या ते संसदा सक्षीमहि। क्षेमे उत योगे नः वरम पाहि। यूयम् स्वस्तिभिः सदा न पात।

संस्कृत व्याख्या—वास्तोष्पते=हे गृहस्य पालक देव! शग्मया=सुखदायिकया, रण्वया=रमणीयया, गातुमत्या=धनवत्या, ते=तव त्वयाप्रदेवया, संसदा=स्थानेन, सक्षीमहि=संगच्छेमाहि। क्षेमे=प्राप्तरक्षायाम्, उत=तथा, योगे=अप्राप्तप्रापणे, नः=अस्मदीयम्, वरम्=अभीष्टं धनम्, पाहि=रक्ष। यूयम्=भवन्तः वास्तोष्पते! स्वस्तिभिः=कल्याणैः, सदा=सर्वदा, नः=अस्मान्, पात=रक्षत।

हिन्दी अनुवाद—हे वास्तोष्पते! सुख देने वाले, रमणीय एवं धनों से सम्पन्न तुम्हारे घर रूपी स्थान से हम युक्त हो जावें। (तुम भी) प्राप्त वस्तु की रक्षा में और अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति में हमारे अभीष्ट धन की रक्षा करो। तुम कल्याणों के द्वारा सर्वदा हमारी रक्षा करो।

शब्दार्थ—वास्तोष्पते=हे घरों के रक्षक देव!, शग्मया=सुख देने वाले, रण्वया=रमणीय, गातुमत्या=धनों से सम्पन्न, संसदा=घर रूपी स्थान से, सक्षीमहि=संयुक्त हो जावें, क्षेमे=प्राप्त की रक्षा में, योगे=अप्राप्त की प्राप्ति में, नः=हमारे, वरम्=श्रेष्ठ धन की या अभीष्ट की, पाहि=रक्षा करो, स्वस्तिभिः=कल्याणों से, पात=रक्षा करो।

व्याकरण—

शग्मया, रण्वया—क्रमशः शम् एवं रम् धातु से निपातनात् सिद्ध शग्म एवं रण्व शब्द से स्त्रीलिङ्ग में तृतीया विभक्ति के एकवचन का रूप।

गातुमत्या—गातु + मतुप् + ङीप् (स्त्रीत्वविवक्षा में)→गातुमती। तृतीया विभक्ति, एकवचन का रूप।

सक्षीमहि—सच् धातु से विधिलिङ् लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन का वैदिक रूप।

विशेष—(१) रॉथ शग्म शब्द को शक् धातु से निष्पन्न माना है।
(२) छन्द की दृष्टि से 'स्वस्तिभिः' पद का उच्चारण 'सुवस्तिभिः' करना चाहिये।
(३) छन्द—त्रिष्टुप्।

अश्विनौ सूक्त

(ऋग्वेद ७/७१) (अवध)

उपायातं दाशुषे मर्त्याय
रथेन वाममश्विना वहन्ता।
युयुतमस्मदनिरा ममीवां
दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां न ॥२॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के अश्विनौ सूक्त से लिया गया है। इस सूक्त के ऋषि वसिष्ठ और देवता युगल अश्विनी कुमार हैं। ये हमेशा युगल के रूप में उपस्थित होते हैं तथा प्रकाश, प्राकृतिक आनन्द तथा कामपूर्ति के साधन प्रस्तुत करते हैं। ऋग्वेद के ५० सूक्तों में इनकी स्तुति की गई है।

अन्वयः—अश्विना दाशुषे मर्त्याय वामम् वहन्ता रथेन उपायातम्। अस्मत् अनिराम् अमीवाम् युयुतम। माध्वी नः दिवानक्तम् त्रासीथाम्।

संस्कृत व्याख्या—अश्विना=हे अश्विनौ, दाशुषे=हविर्प्रदायकाय, मर्त्याय =मनुष्याय, वामम् सेवनीयम् धनम्, वहन्ता=वहन्तौ, रथेन=स्यन्दनेन, उपायाताम्=उपागच्छतम्। अस्मत्=अस्मत्तः, अनिराम्=दरिद्रताम्, अमीवाम्= रोगम्, युयुतम्=पृथक्कुरुतम्। माध्वी=हे मधुमन्तौ अश्विनौ! नः=अस्माकम्, दिवानक्तम्=रात्रिदिवम्, त्रासीथाम्=रक्षतम्।

हिन्दी अनुवाद—हे अश्विनी देवो! हवि प्रदान करने वाले मनुष्य के लिये सेवनीय धन को धारण करते हुए (तुम दोनों) रथ के द्वारा आओ। हमसे दरिद्रता और रोग को दूर करो। हे मधु से परिपूर्ण अश्विनी देवो! हमारी दिन-रात रक्षा करो।

शब्दार्थ—उपायातम्=तुम दोनों) आओ, दाशुषे=हवि प्रदान करने वाले, मर्त्याय=मनुष्य के लिये, वामम् सेवन करने योग्य धन को, वहन्ता=धारण करते हुए, युयुतम्=पृथक करो, अनिराम्=दरिद्रता को, अमीवाम्=रोग को, दिवानक्तम्=रात दिन, माध्वी=हे मधु से परिपूण, त्रासीथाम्=रक्षा करो।

व्याकरण—

उपायातम्—उप+आ+या, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन।

अश्विना—अश्विन् शब्द से प्रथमा विभक्ति का द्विवचन। लोक में अश्विनौ रूप बनता है। यहाँ सम्बोधन में प्रयुक्त हैं।

वहन्ता—वह्+शतृ। प्रथमा विभक्ति का द्विवचन। लोक में वहन्तौ रूप बनता है।

अनिराम्—न+इरा=अन्नम्। द्वितीया विभक्ति, एकवचन।

माध्वी—सम्बोधन (प्रथमा) विभक्ति के द्विवचन का रूप।

विशेष—(१) मैक्डानल ने अनिरा का अर्थ आलस्य तथा माध्वी का अर्थ मधुप्रेम किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं
नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिम्
नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—युवम् च्यवानम् जरसः अमुमुक्तम्। पेदवे आशुम् अश्वन् निः ऊहथुः। अत्रिम् अंहसः तमसः निःस्पर्तम्। जाहुषम् शिथिरे अन्तः निधातम्।

संस्कृत व्याख्या—युवम्=युवाम् अश्विनौ, च्यवानम्=च्यवननामकं ऋषिम्, जरसः=जरायाः, अमुमुक्तम्=अमुञ्चतम्। पेदवे=पेदुनृपाय, आशुम्=शीघ्रगामिनम्, अश्वम्=घोटकम्, निःऊहथुः=युद्धे न्यवहतम्। अत्रिम्=अत्रिनामकं ऋषिम्, अंहसः=पापात्, तमसः=अन्धकारात् गुहान्तः स्थितात्, निःस्पर्तम्=अपारयतम्। जाहुषम्=एतन्नामानम् नृपम्, शिथिरे=शिथिले सञ्जाते, अन्तः=मध्ये. निधातम्=स्थापयतम्।

हिन्दी अनुवाद—तुम दोनों ने च्यवन ऋषि को बुढ़ापे से मुक्त किया था। पेदु नामक राजा के लिए शीघ्रगामी घोड़े को (युद्ध में) पहुँचाया था। अत्रि ऋषि को पाप से एवं अन्धकाराच्छन्न गुफा से पार कराया था तथा जाहुष नामक राजा को राज्यभ्रष्ट हो जाने पर फिर से राज्य पर स्थापित कराया था।

शब्दार्थ—युवम्=तुम दोनों ने, जरसः=वृद्धावस्था से, अमुमुक्तम्=मुक्त किया था, निःऊहथु=(युद्ध में) पहुँचाया था, आशुम्=शीघ्रगामी, अंहसः=पाप से, तमसः=अन्धकार से (अन्धकाराच्छन्न गुफा से), निःस्पर्तम्=पार कराया था, शिथिरे=राज्य भ्रष्ट हो जाने पर, अन्तः=राज्य पर, निधातम्=स्थापित कराया था।

व्याकरण—

युवम्—युष्मद् शब्द से प्रथमा विभक्ति, द्विवचन का वैदिक रूप।

जरसः—जरस् शब्द से पञ्चमी विभक्ति का एकवचन।

अमुमुक्तम्—मुच् धातु, लुङ् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन।

ऊहथुः—वह् धातु, लिट् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन।

शिथिरे—शिथिले। ल् के स्थान पर र् का प्रयोग।

विशेष—(१) छन्द—त्रिष्टुप्।

इयं मनीषा इयमश्विना गी-
रिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—अश्विना इयम् मनीषा इयम् गीः वृषणा इमाम् सुवृक्तिम् जुषेथाम् इमा ब्रह्माणि युवयूनि अग्मन्. यूयम् स्वस्तिभिः सदा नः पात।

संस्कृत व्याख्या—अश्विना=हे अश्विनौ, इयम्=एषा, मनीषा=मे कामना अस्तीति शेषः इयम्=एषा, गीः=मे स्तुतिः अस्तीति शेषः यत् इमाम्=एषाम्, सुवृक्तिम्=स्तुतिम्, वृषणा=कामानां वर्षितारौ युवाम्, जुषेथाम्=स्वीकुरुतम्। इमा=इमानि, ब्रह्माणि=व्यापकस्तवनवाक्यानि, युवयूनि=सदा युवकाभ्याम्, युवाभ्याम्, अग्मन्=प्राप्ताः भवेयुः। यूयम् स्वस्तिभिः=कल्याणैः, सदा=सर्वदा, नः=अस्मान्, पात=रक्षन्तु।

हिन्दी अनुवाद—हे अश्विनी देवो! यह मेरी कामना है एवं यह मेरी स्तुति है कि कामनाओं को पूरा करने वाले तुम दोनों इस स्तुति को स्वीकार करो। ये व्यापक स्तुति के वाक्य हमेशा युवक रहने वाले तुम दोनों के लिए प्राप्त होवें। तुम कल्याणों या आशीर्वादों के द्वारा हमेशा हमारी रक्षा करो।

शब्दार्थ—मनीषा=कामना, गीः स्तुति, सुवृक्तिम्=स्तुति को, वृषणा=कामनाओं को पूरा करने वाले (तुम) दोनों, जुषेथाम्=स्वीकार करो, इमा=ये, ब्रह्माणि=व्यापक स्तुतिवाक्य, युवयूनि=हमेशा युवक रहने वाले (तुम) दोनों के लिए, अग्मन्=प्राप्त होवें पात=रक्षा करो, नः=हमारी, स्वस्तिभिः=कल्याणों से या आशीर्वादों से।

व्याकरण—

सुवृक्तिम्—सु+वृज्+क्तिन्। द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

विशेष—(१) छन्द—त्रिष्टुप्।

इन्द्रावरुण सूक्त

(ऋग्वेद ७/८३) (मेरठ)

युवां नरा पश्यमानास आप्यं
प्राचा गव्यन्त पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च
सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥१॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मंत्र ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के इन्द्रावरुण सूक्त से लिया गया है। इस सूक्त के ऋषि वसिष्ठ और देवता इन्द्रावरुण हैं।

अन्वयः—नरा ! युवाम् आप्यम् पश्यमानासः गव्यन्तः पृथुपर्शवः प्राचा ययुः इन्द्रावरुण दासा च वृत्रा आर्याणि च हतम् । सुदासम् अवसा अवतम् ।

संस्कृत व्याख्या—नरा=हे नेतारौ, युवाम्=युवयोः 'अत्रषष्ठ्यर्थे द्वितीया, आप्यम्=भ्रातृत्वम्, पश्यमानासः पश्यन्तः, गव्यन्तः=गाः आत्मनः इच्छन्तः यजमानाः. पृथुपर्शवः=विस्तीर्णपरशुहस्ताः; प्राचा=पूर्वदिशम्, ययुः=जग्मुः। इन्द्रा-वरुणा=हे इन्द्रवरुणौ ! दासा=दासानि, च वृत्रा=वृत्राणि, आर्याणि च=कर्मा-नुष्ठानपराणि शत्रुजातानि अपि, हतम्=हिंस्तम् । सुदासम्=राजानम्, अवसा=रक्षणेन, अवतम्=रक्षतम् ।

हिन्दी अनुवाद—हे नेताओं इन्द्र और वरुण ! तुम्हारे भ्रातृभाव को देखते हुए, गायों को पाने की इच्छा वाले व्यक्ति बड़े बड़े परशुओं को धारण किये हुए पूर्व दिशा की ओर गये हैं। हे इन्द्र और वरुण ! दासों, वृत्रों और आर्य शत्रुओं को मार डालो। सुदास नामक राजा की अपने रक्षण उपाय से रक्षा करो।

शब्दार्थ—नरा=हे नेताओं इन्द्र और वरुण !, पश्यमानास=देखते हुए, आप्यम्=भ्रातृभाव को, प्राचा=पूर्व दिशा की ओर, गव्यन्तः=अपने लिए गायों को पाने की इच्छा वाले, पृथुपर्शवः=बड़े बड़े परशुओं को धारण किये हुए, दासा=दासों को, वृत्रा=वृत्रों को, आर्याणि च=और आर्यों (शत्रुओं) को, सुदासम्=सुदास नामक राजा को, अवसा=रक्षण उपाय से, अवतम्=रक्षा करो।

व्याकरण—

नरा—नर शब्द से प्रथमा (सम्बोधन) विभक्ति का द्विवचन। नरौ का वैदिक रूप।

पश्यमानासः—दृश्+शानच्। प्रथमा विभक्ति के बहुवचन का छान्दस रूप।

हतम्—हन् धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, द्विवचन।

अवतम—अव् धातु, लोट् लकार, मध्यमपुरुष, द्विवचन।

दासा—द्वितीया का बहुवचन। दासानि का वैदिक रूप।

वृत्रा—द्वितीया का बहुवचन। वृत्राणि का वैदिक रूप।

गव्यन्तः—गाः आत्मनः इच्छन्तः गव्यन्तः। गो+क्यप्+शतृ=गव्यन्। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

विशेष—(१) पृथुपर्शवः का अर्थ सायण ने विस्तीर्ण अश्वपर्शु नामक अस्त्र वाला किया है। लुडविग इसे संज्ञावाची मानकर पृथु और पर्शु दो जातियों का बोधक मानते हैं। उनके अनुसार इन्द्र है—पृथुश्च पर्शुश्च।

(२) पीटर्सन ने प्राचा का अर्थ 'प्राचीन सरल मार्ग से' किया है।

(३) छन्द की दृष्टि से आप्यम् को आपियम् तथा आर्याणि को अरियाणि पढ़ना चाहिये।

(४) पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार सुदास तृत्सुओं का राजा था। उसके आर्य एवं आर्येतर सामन्तों ने विद्रोह कर दिया है। इसलिए उसके पुरोहित वसिष्ठ ने यजमान सुदास की सहायता के लिए इन्द्रावरुण की स्तुति की थी। इन्द्रावरुण की सहायता से सुदास ने विजय प्राप्त की थी। इसी ऐतिहासिक घटना का इस मन्त्र में संकेत है।

(५) छन्द—जगती।

यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो
यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम्।
यत्रा भयन्ते भुवनः स्वर्दृश-
स्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—यत्र नरः कृतध्वजः समयन्ते। यस्मिन् आजा किम् च प्रियम् न भवति। यत्र भुवना स्वर्दृशः भयन्ते। इन्द्रावरुण! तत्र नः अधिवोचतम्।

संस्कृत व्याख्या—यत्र=यस्मिन् युद्धे नरः=जनाः, कृतध्वजाः=उच्छ्रितपताका समयन्ते=युद्धार्थं संगच्छन्ते। यस्मिन् आजा=युद्धे, किं च=किमपि, प्रियम् =सुखकरम्, न भवति=न वर्तते। अत्र किंचन इति निपातद्वयी च न इति विभज्य प्रयुक्ता। यत्र=यस्मिन् युद्धे, भुवना=सर्वेजनाः, स्वर्दृशः=स्वर्गं पश्यन्तः, भयन्ते =बिभ्यति। इन्द्रावरुणा!=हे इन्द्रवरुणौ! तत्र=तस्मिन् युद्धे, नः=अस्मान्, अधिवोचतम्=अस्मत्पक्षपातवचनो भवतम्।

हिन्दी अनुवाद— जहाँ पर मनुष्य ध्वजाओं को धारण किये हुए युद्ध में भिड़ जाते हैं। जिस युद्ध में कुछ भी प्रिय नहीं होता है। जिसमें सभी लोग स्वर्ग को देखते हुए डरते हैं। हे इन्द्र और वरुण देवो! उस युद्ध में हमारी तरफ से बोलो।

शब्दार्थ—कृतध्वजः=ध्वजाओं को धारण किये हुए, समयन्ते=युद्ध में भिड़ जाते हैं, आजा=युद्ध में, भुवना=सभी लोग, स्वर्दृशः=स्वर्ग को देखते हुए, अधिवोचतम्=हमारी तरफ से बोलो।

व्याकरण—

नरः—नृ शब्द, प्रथमा विभक्ति, बहुवचन ।

आजा—आजौ के स्थान पर प्रयुक्त वैदिक रूप । सप्तमी विभक्ति एकवचन ।

वोचतम्—वच् लोट् लकार, मध्यमपुरुष, द्विवचन ।

विशेष—(१) 'कि चन' में चन का च और न दो निपातों में योग विभाजन करके अर्थ करना उपयुक्त है ।

(२) छन्द की दृष्टि से 'स्वर्दृशः' का उच्चारण 'सुअर्दृशः' करना चाहिये ।

(३) छन्द—जगती ।

इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति

भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।

ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि

सत्या तृत्सूनामभवत्पुरोहितिः ॥४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत ।

अन्वयः—इन्द्रावरुण ! वधनाभिः अप्रति भेदम् वन्वन्त सुदासम् प्र आवतम् । हवीमनि एषाम् ब्रह्माणि शृणुतम् । तृत्सूनाम् पुरोहितिः सत्या अभवत् ।

संस्कृत व्याख्या—इन्द्रावरुणा=हे इन्द्रवरुणौ ! वधनाभि=वधकारकैरायुधैः, अप्रति=अप्रतिगतम्, भेदम्=भेदनामकं सुदासस्य शत्रुम्, वन्वन्ता=हिंसन्तौ, सुदासम्=एतन्नामानं राजानम्, प्र आवतम्=प्रकर्षेणारक्षतम् । हवीमनि=युद्धे, एषाम्=तृत्सूनाम्, ब्रह्माणि=स्तोत्राणि शृणुतम्=अशृणुतम् । तृत्सूनाम् तृत्सुसंज्ञकानां मम याज्यानाम्, पुरोहितिः=पुरोहित्यम्, सत्या=सफलम्, अभवत्=जातम् ।

हिन्दी अनुवाद—हे इन्द्र और वरुण ! वध करने वाले आयुधों से मुकाबला न कर सकने वाले भेद नामक शत्रु को मारते हुए तुम दोनों सुदास राजा की अच्छी तरह रक्षा करो । युद्ध में इन (तृत्सुओं) की स्तुतियों को सुनो । इन तृत्सुओं का पुरोहित होना सत्य (सफल) हो गया है ।

शब्दार्थ—वधनाभिः=वध करने वाले आयुधों से, अप्रति=मुकाबला न कर सकने वाले, भेदम्=सुदास के शत्रु भेद को, वन्वन्ता=मारते हुए, आवतम्=रक्षा करो, ब्रह्माणि=स्तुतियों को, हवीमनि=युद्ध में, सत्या=सफल, तृत्सूनाम्=तृत्सुओं का, पुरोहितः=पुरोहित होना, अभवत्=हो गया है ।

व्याकरण—

वधनाभिः—वध्+युच्→अन+टाप्=वधना । तृतीया विभक्ति का बहुवचन ।

वन्वन्ता—प्रथमा विभक्ति द्विवचन वन्वन्तौ के स्थान पर प्रयुक्त वैदिक रूप ।

हवीमनि—वैदिक निपातनात् सिद्ध हवीमन् शब्द से सप्तमी विभक्ति के एक वचन का रूप ।

पुरोहितः—पुरस् + धा + क्तिन् ।

विशेष—(१) छन्द की दृष्टि से 'ब्रह्माण्येषाम्' का उच्चारण 'ब्रह्माणि एषाम् करना चाहिये ।

(२) यहाँ पर 'तृत्सूनाम्' में बहुवचन का प्रयोग तृत्सु वंश या गोत्र के लोगों का बोध कराने के लिए हुआ है ।

(३) छन्द—जगती ।

युवां हवन्त उभयास आजि-
ष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं
प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—उभयासः आजिषु इन्द्रम् च वरुणम् च युवाम् वस्वः सातये हवन्ते । यत्र दशभिः राजभिः निबाधितम् सुदासम् तृत्सुभिः सह प्र आवतम् ।

संस्कृत व्याख्या—उभयासः=सुदाः राजा तृत्सवश्च, आजिषु=संग्रामेषु, इन्द्रम् च वरुणम् च युवाम्=इन्द्रवरुणौ, वस्वः=धनस्य, सातये=प्राप्तये, हवन्ते=आह्वयन्ते । यत्र=यस्मिन् युद्धे, दशभिः=दशसंख्याकैः, राजभिः=शत्रुनृपैः, निबाधितम्=पीडितम्, सुदासम्=एतन्नामकं नृपम्, तृत्सुभिः सह=तृत्सुवंशजनैः सह, प्र आवतम्=प्रकर्षेण अरक्षतम् ।

हिन्दी अनुवाद—दोनों (राजा सुदास और उसकी प्रजा तृत्सु वंश के लोग) व्यक्ति युद्धों में इन्द्र और वरुण तुम दोनों को धन की प्राप्ति के लिए बुला रहे हैं । जिन युद्धों में दश शत्रु राजाओं के द्वारा पीडित होते हुए सुदास की तृत्सुओं के साथ रक्षा करो ।

शब्दार्थ—हवन्ते=बुला रहे हैं, उभयासः=सुदास और उसकी प्रजा तृत्सु, आजिषु=युद्धों में, वस्वः=धन की, सातये=प्राप्ति के लिए, दशभिः राजभिः=शत्रुभूत दश राजाओं के द्वारा, निबाधितम्=पीडित होते हुए, प्र आवतम्=प्रकर्ष रूप से रक्षा करो ।

व्याकरण—

उभयास—उभय शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन का वैदिक रूप । लोक में उभये रूप बनेगा क्योंकि यह द्विवचन में प्रयुक्त होगा ।

वस्वः—वसु शब्द से षष्ठी के एकवचन वसुनः के स्थान पर प्रयुक्त वैदिक रूप ।

सुदासम्—सुदास् (सु + दा + असुन) शब्द से द्वितीया विभक्ति का एकवचन ।

आवतम्—आ + अव् धातु, लङ् लकार, मध्यम पुरुष, द्विवचन :

निबाधितम् = नि + बाध् + क्त । द्वितीय विभक्ति का एकवचन ।

विशेष—(१) छन्द की दृष्टि से 'आजिष्विन्द्रं' को आजिषु इन्द्रम् विभक्त करके आजिषु को प्रथम पाद के अन्त में तथा इन्द्रं को द्वितीया पाद के प्रारम्भ में पढ़ना चाहिये ।

(२) छन्द—जगती ।

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः
सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो
धिया धीवन्तो अपसन्त तृत्सवः ॥८॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—इन्द्रावरुणौ ! दाशराज्ञे विश्वतः परियत्ताय सुदासे अशिक्षतम् । यत्र श्वित्यञ्चः कपर्दिनः धीवन्तः तृत्सवः नमसा धिया अपसन्त ।

संस्कृत व्याख्या—इन्द्रावरुणौ = हे इन्द्रवरुणौ, दाशराज्ञे = दशभिः राजभिः सह प्रवृत्तं युद्धं तस्मिन् अथवा दशभिः राजभिः शत्रुभूतैः, विश्वतः = सर्वतः, परियत्ताय = परिवेष्टिताय, सुदासे = सुदाः राज्ञे, अशिक्षतम् = बलं प्रादत्तम् । यत्र = यस्मिन् प्रदेशेः, श्वित्युञ्चः = श्वेतवस्त्रधारिणः अथवा निर्मलकर्मकारिणः, कपर्दिनः = जटाधारिणः, धीवन्तः = कर्मशीलाः तृत्सवः, = तृत्सुवंशजाः राज्ञः प्रजाः वशिष्ठशिष्याश्च, नमसा = हव्यद्रव्येन अन्नेन वा, धिया = स्तुत्या, अपसन्त = पर्यचरन् ।

हिन्दी अनुवाद—हे इन्द्र और वरुण देवताओं ! दस शत्रु राजाओं के द्वारा चारों ओर से घिरे हुए अथवा दस राजाओं के द्वारा प्रवृत्त युद्ध में चारों तरफ से घिरे हुए सुदास राजा को तुमने बल प्रदान किया है। जहाँ पर श्वेत वस्त्रों को धारण करने वाले अथवा निर्मल कर्म करने वाले, जटाधारी और कर्मशील तृत्सु लोगों ने हवि द्रव्य या अन्न के द्वारा तथा स्तुति द्वारा परिचर्या की है ।

शब्दार्थ—दाशराज्ञे = दस राजाओं के द्वारा प्रवृत्त युद्ध में अथवा दस शत्रु राजाओं के द्वारा, परियत्ताय = घिरे हुये, विश्वत. = चारों ओर से, सुदसे = सुदास नामक राजा के लिये, अशिक्षतम् = बल प्रदान किया था, श्वित्यञ्चः सफेद कपड़ों को धारण करने वाले अथवा निर्मल कर्म करने वाले, नमसा = हवि रूप अन्न के द्वारा, कपर्दिनः = जटा धारण करने वाले, धिया = स्तुति के द्वारा, धीवन्तः = कर्म से युक्त, अपसन्त = स्तुति या परिचर्या की है, तृत्सवः = तृत्सु वंश के लोग राजा सुदास की प्रजा तथा वशिष्ठ के शिष्य ।

व्याकरण—

(१) दशभिः राजभिः सह प्रवृत्तं युद्धम् तस्मिन्।

अशिक्षतम्—दानार्थक शक धातु से अथवा शक्तयर्थक शक्लृ धातु से स्वार्थिक सन् प्रत्यय करने पर लङ् लकार मध्यम पुरुष द्विवचन का रूप। शिक्ष् धातु से भी यह रूप निष्पन्न होता है। परन्तु यहाँ पर पूर्व की दो धातुओं से ही निष्पन्न मानना उचित है।

अपसन्त=सप् धातु (समवाये), लङ् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

श्वित्यञ्चः—श्विति+अञ्च+क्विप्। प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

परियत्ताय—परि+यत्+क्त। चतुर्थी विभक्ति, एकवचन।

विशेष—(१) छन्द—जगति।

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा
द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।
अवध्रम् ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो
देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥१०॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा अस्मे द्युम्नम् यच्छन्तु, महि सप्रथः शर्म (यच्छन्तु)। ऋतावृधः अदितेः ज्योतिः अवध्रम्। देवस्य सवितु श्लोकम् मनामहे।

संस्कृत व्याख्या—इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा=इन्द्रादयः सर्वे देवाः, अस्मे=अस्मभ्यम्, द्युम्नम्=द्योतमानं धनम्, यच्छन्तु=ददतु, महि=महत्, सप्रथः=सर्वथा विस्तृतम्, शर्म=गृहम् (यच्छन्तु=प्रददतु)। ऋतावधः=यज्ञस्य वर्धयित्र्याः, अदितेः=देवमातु, ज्योतिः=तेजः, अवध्रम्=अहिंसकम् भवतु। देवस्य=दानादि-गुणसमन्वितस्य, सवितुः=सवितृदेवस्य, श्लोकम्=कीर्तिम्, मनामहे=याचामहे।

हिन्दी अनुवाद—इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा (यमप्रेरक देवता) देव हमारे लिये प्रकाशमय धन को देवे तथा महान् विस्तृत घर को प्रदान करें। यज्ञ को बढ़ाने वाली देवमाता अदिति का तेज अहिंसक होवे। दानादि दिव्य गुणों से युक्त सविता देवता की हम कीर्ति की इच्छा करते हैं अथवा स्तुति करते हैं।

शब्दार्थ—अस्मै=हमारे लिये, अर्यमा=यम का प्रेरक एक देवता, द्युम्नम्=प्रकाशमय धन को, यच्छन्तु=प्रदान करें, महि=महान्, शर्म=घर, सप्रथः=सभी प्रकार से विस्तृत। अवध्रम्=अहिंसक बना रहे, ज्योति=तेज, अदिते=देवताओं की माता अदिति का, ऋतावृद्धो=यज्ञ को बढ़ाने वालीः देवस्य=दानादि दिव्य गुणों से सम्पन्न, श्लोकम्=कीर्ति स्तुति, मनामहे=याचना करते हैं।

व्याकरण—

अस्मे—अस्मभ्यम् के स्थान पर प्रयुक्त वैदिक रूप।

यच्छन्तु—यच्छ् धातु, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

सप्रथ—प्रथ् धातु+अच् प्रत्यय=प्रथ। प्रथेन सहितं सप्रथः।

अवध्रम्—वध्+रा+अच्=वध्रम्=वधं राति। न वध्रम् अवध्रम्=अहिंसकम्।

ऋतावृधः—ऋत्+वृध्+क्विप् प्रत्यय=ऋतावृध्। ऋतावृध शब्द से षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

मनामहे—मन् धातु, लट् लकार, उत्तम पुरुष, बहुवचन।

विशेष—(१) छन्द—जगती।

वरुण सूक्त

(ऋग्वेद ७।८६) (गोरख० बुन्देल, मेरठ B. A. Hons)

किमाग आस वरुण ज्येष्ठं
यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम्।
प्र तन्मे वोचो दूलभ स्वधावो-
ऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम्॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के वरुणसूक्त से उद्धृत है। इस सूक्त के ऋषि वशिष्ठ और देवता वरुण हैं। वरुण ऋग्वेद के एक प्रमुख देवता हैं। उसकी स्तुति में लगभग १२ सूक्त सम्बोधित किये गये हैं। इनमें उसके कार्यों का वर्णन किया गया है।

अन्वयः—वरुणः! किम् ज्येष्ठम् आगः आस यत् सखायम् स्तोतारम् जिघांससि। दूलभ स्वधाव! तत् मे प्रवोचः। अनेनाः तुरः नमसा त्वा अव इयाम्।

संस्कृत व्याख्या—वरुणः! किम् ज्येष्ठमागः=को महानपराधः, आस=कृतो बभूव, यत्=येनपराधेन, सखायम्=मित्रम्, स्तोतारम्=स्तुतिकर्तारम्, जिघांससि=हन्तुमिच्छसि। दुलभ=हे अन्यैर्बाधितुशक्य, स्वधावः=हे तेजस्विन्! तत्=आग, मे=मह्यम्, प्रवोचः=प्रब्रूहि। अनेना=अपापः भूत्वा, तुरः=शीघ्रम्, नमसा=प्रार्थनया नमस्कारेण वा, त्वा=त्वाम्, अवइयाम्=अवगच्छेयम।

हिन्दी अनुवाद—हे वरुण देव! कौनसा वह महान् पाप या अपराध था, जिससे तुम अपने मित्र स्तुति करने वाले को मारना चाहते हो। हे दूसरों के द्वारा न सताये जाने वाले तेजस्विवरुण! उसको मुझसे कहो। निष्पाप या निरपराध होकर मैं शीघ्र ही प्रार्थना नमस्कार के द्वारा तुम्हारे पास पहुँच सकूं।

शब्दार्थ—आगः=पाप या अपराध, आस=था, ज्येष्ठम्=बड़ा, स्तोतारम्=स्तुति करने वाले को, जिघांससि=मारना चाहते हो, सखायम्=मित्र को, मे=मुझसे से, प्रवोचः=करो, दूलभ=हे दूसरों के द्वारा न सताये जाने वाले, स्वधावः=हे तेजस्वी वरुण, अनेनाः=निष्पाप या निरपराध होकर, नमसः=प्रार्थना या नमस्कार के द्वारा, तुरः=शीघ्र, अव इयाम्=पहुँच सकूं।

व्याकरण—

आस—अस् धातु लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का वैदिक रूप।

जिघांससि—सन्नन्त हन् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

प्रवोचः—प्र+वच्, लुङ् लकार, मध्यम पुरुष एकवचन।

दूलभ—दुर+दभ्+खल्→दूलभ। सम्बोधन एकवचन, वैदिक प्रयोग।

इयाम्—इण् धातु विधिलिङ् लकार प्रथक पुरुष एकवचन।

विशेष—(१) मैक्डानल ने दूलभ का अर्थ जिसे ठगा न जा सके, स्वधाव: का अर्थ आत्मनिर्भरता तथा नमसा का अर्थ पूजा से, किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुति. सा
सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे
स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—वरुण: सः स्व: लक्षः न, सा ध्रुतिः सुरा मन्यु विभीदकः अचिन्तिः। कनीयसः उपारे ज्यायान् अस्ति। स्वप्नः चन इत् अनृतस्य प्रयोता।

संस्कृत व्याख्या—हे वरुण देव! सः स्वः=तत् स्वभूतम्, दक्ष=बलम्, न=पापप्रवृत्तौ कारणं नास्ति, अपितु सा ध्रुतिः=स्थिरा दैवगति, सुरा=मदिरा, मन्युः=क्रोधः, विभीदकः=द्यूतक्रीड़ा, अचित्तिः=अज्ञानम् च कारणमस्ति। कनियसः=अल्पस्य, उपारे=पापकार्ये उपागते, ज्यायान्=अधिकः ईश्वरः कारणमस्ति। स्वप्नः=मनोभाव, चन=अपि, अनृतस्य=पापस्य, प्रयोता=प्रवृत्तिकारकः अस्ति।

हिन्दी अनुवाद—हे वरुण! वह अपना बल (पाप की प्रवृत्ति में कारण) नहीं है, अपितु दैवगति, मदिरा, क्रोध, जुआ तथा अज्ञान है। छोटे व्यक्ति के पापकार्य में बड़े कारण हैं। स्वप्न (मनोभाव) भी पाप की प्रवृत्ति करने वाला है।

शब्दार्थ—स्वः=अपना, दक्ष=बल, ध्रुति=स्थिर दैवगति, सुरा=मदिरा, मन्युः=क्रोध, विभीदकः=द्यूतक्रीडा, अचित्तिः=अज्ञान, ज्यायान्=बड़ा, कनीयसः=छोटे (व्यक्ति) के, उपारे=पापकार्य के निकट आ जाने पर, स्वप्नः=स्वप्न मनोभाव, अनृतस्य=पाप का, प्रयोता=प्रवृत्ति कराने वाला।

व्याकरण—

ध्रुति=ध्रु+क्तिन्।

ज्यायान—प्रशस्य+ईयसुन्। प्रशस्य शब्द का ज्य तथा ईयसुन् के ई को आ आदेश होकर ज्यायस् रूप बनता है। प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

कनीयस—अल्प+ईयसुन्। अल्प को कन् आदेश=कनीयस्। कनीयस शब्द से षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

विशेष—(१) ध्रुति शब्द का अर्थ सायण ने क्षैवगति, विल्सन ने हालात (Condition), मैक्डानल ने चारित्रदोष (Seduction), ग्रासमान एवं ग्रिफिथ ने भी चारित्रदोष (Seduction), गेल्डनर ने अवसर (Chance) तथा पीटर्सन ने प्रलोभन (Temptation) किया है।

(२) छन्द त्रिष्टुप्।

अरं दासो न मीलहुषे करा-
ण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः।
अचेतयदचितो देवो अर्यो
गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥७॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—मील्हुषे भूर्णये देवाय अनागाः अहं दासः न अरं कराणि। अर्यः देवः अचितः अचेतयत्ः कवितरः ग्रत्सं राये जुनाति।

संस्कृत व्याख्या—मल्हिुषे=कामानां पूरकाय, भूर्णये=जगत्पोषकाय, देवाय =दानादिगुणसमन्विताय वरुणाय, अनागाः=अपापः सन्, अहम्=स्तोता, दासःन =भृत्यः इव, अरम्=अल्म् पर्याप्तमित्यर्थः कराणि=परिचर्यां करवाणि। अर्य =सर्वेषां स्वामी, देव.=वरुणः, अचितः=अजानतोऽस्मान्; अचेतयत्=प्रज्ञानं ददातु; कवितरः=बुद्धिमत्तमः, गृत्सम्=स्तुति कर्तारम् राये=धनाय, जुनाति= प्रेरयतु ददातु वा।

हिन्दी अनुवाद—कामनाओं को पूर्ण करने वाले एवं संसार का भरण-पोषण करने वाले वरुण देव के लिए मैं निष्पाप होकर नौकर की तरह अत्यन्त सेवा करूँ। सबका स्वामी वरुण देव हम अज्ञानियों को चेताये या ज्ञान प्रदान करे। अत्यन्त बुद्धिमान् वरुण स्तुति करने वाले को धन प्रेरित करे या देवे।

शब्दार्थ—अरम्=अत्यन्त वा पर्याप्त रूप से, दासः न=नौकर की तरह, मीलहुषे=कामनाओं को पूरा करने वाले, कराणि=सेवा करूँ भूर्णये=संसार का भरण पोषण करने वाले, अनागाः=निष्पाप होकर, अचेतयत्=चेताये या ज्ञान प्रदान करे, अचितः=हम अज्ञानियों को, अर्यः=सबका स्वामी, गृत्सम्=स्तुति करने वाले को, कवितरः=अत्यधिक बुद्धिमान्, जुनाति=प्रेरित करे या देवे, राये =धन के लिए।

व्याकरण—

भूर्णये—भूर्णि (भृ+क्तिन् का छान्दस रूप) से चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

कराणि—कृ धातु लोट् लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

अचेतयत्—चित्+णिच्, लङ्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) मैक्डानल ने भूर्णि का अर्थ क्रुद्ध, गृत्सम् का अर्थ अनुभवी व्यक्ति तथा जुनाति का अर्थ शीघ्रता करता है, किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो
हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वय:—स्वधावः वरुण ! तुभ्यम् अयम् स्तोमः हृदि सु उपश्रितः चित् अस्तु। नः क्षेमे उ नः योगे शम् अस्तु। यूयम् स्वस्तिभिः सदा नः पात।

संस्कृत व्याख्या—स्वधावः=हे अन्नसम्पन्न, वरुण=वरुण देव ! तुभ्यम् =त्वदर्थं क्रियमाणः, अयम् स्तोत्रः=एषा सूक्तात्मका स्तुतिः हृदि=हृदये, सु उपश्रितः=सुष्ठु स्थितः, चित्=इति पादपूरकः निपातः, अस्तु=भवतु। नः अस्माकम्, क्षमे=प्राप्तस्य रक्षणे शम्=कल्याणम्, उ=अथ च, योगे प्राप्तस्य प्रापणे, शम् =कल्याणम् अस्तु=भवतु। यूयम्=वरुणादयः सर्वे देवाः, स्वस्तिभिः=कल्याणैः आशीर्वादैर्वा सदा,=सर्वदा नः=अस्मान्, पात=रक्षत।

हिन्दी अनुवाद—हे अन्नसम्पन्न या शक्तिशाली वरुण देव ! तुम्हारे लिए निर्मित यह स्त्रोत अच्छी तरह से पहुँच जावे। प्राप्त की रक्षा में तथा अप्राप्त की प्राप्ति में हमारा कल्याण होवे। तुम सब कल्याणों या आशीर्वादों से हमेशा हमारी रक्षा करो।

शब्दार्थ—स्वधावः=अन्नों से सम्पन्न या शक्तिशाली, हृदि=हृदय में, स्तोमः=स्तुति, उपश्रितः=स्थित या पहुँचा हुआ, शम्=कल्याण, क्षेमे=प्राप्त वस्तु की रक्षा में, योगे=अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति में, पात=रक्षा करो स्वस्तिभिः =कल्याणों या आशीर्वादों से, नः=हमारी।

व्याकरण—

पात—पा धातु लोट्लकार मध्यम पुरुष, बहुवचन।

उपश्रित—उप+श्रि+क्त।

विशेष—(१) मैक्डानल ने स्वधावः का अर्थ आत्मनिर्भर किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

विश्वेदेवाः सूक्त

(ऋग्वेद ८/३०) (मेरठ)

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च।
मनोर्देवा यज्ञियासः ॥२॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के विश्वेदेवाः सूक्त से उद्धृत किया गया है। इस सूक्त के ऋषि वैवस्वत मनु और देवता विश्वेदेव हैं। विश्वेदेव हैं। विश्वेदेव देवसमूह का नाम है। ऋग्वेद के लगभग ४० सूक्तों में इनकी स्तुति की गई है। विश्वेदेव मानव का कल्याण करने वाले देवता हैं।

अन्वयः—रिशादसःमनोः यज्ञियासः देवाः ये त्रयः च त्रिंशत् च स्थ इति स्तुतासः असथ।

संस्कृत व्याख्या—रिशादसः=हे हिंसकानां भक्षकाः! मनोः=मम मनु-नामकस्य वैवस्वतस्य, यज्ञियासः=यज्ञयोग्याः! देवाः=विश्वेदेवाः! ये=यूयम्, त्रयश्च त्रिंशच्च=त्रयस्त्रिंशत्संख्याकाः स्थ=भवथ, स्तुतासः=मया स्तुताः, असथ =भवथ।

हिन्दी अनुवाद—हे हिंसक शत्रुओं के नाशक तथा मनु के यज्ञ के योग्य विश्वेदेवो! जो तुम तेंतीस (तीन और तीस) हो वे स्तुति किये जाते हो।

शब्दार्थ—स्तुतासः=स्तुति किये जाते, असथ=रहे हो या हो, रिशादसः =हिंसकों के भक्षक या नाशक, मनोः=मुझ वैवश्वत मनु के यज्ञियासः=यज्ञ के योग्य।

व्याकरण—

स्तुतासः—ष्टुञ् (स्तु)+क्त। प्रथमा के बहुवचन का वैदिक रूप। लोक में स्तुताः रूप बनता है।

रिशादसः—रिशान्ते (हिंसन्ति) इति रिशाः। तान् अदन्ति (भक्षयन्ति) इति रिशादसः।

असथ—अस् धातु लेट् लकार, मध्यम पुरुष, बहुवचन।

यज्ञियासः—यज्ञिय शब्द से प्रथमा का बहुवचन। यज्ञ+घञ्→इय= यज्ञिय।

विशेष—(१) इस मन्त्र में उष्णिक् छन्द है। इस छन्द में तीन पाद होते हैं, जिनमें दो आठ-आठ वर्णों के तथा एक बारह वर्ण का होता है। इसमें कुल २८ वर्ण होते हैं।

ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधिवोचत।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—ते नः त्राध्वम् ते अवत, ते उ नः अधिवोचत। मानवात् पित्र्यात् परावतः पथः नः दूरम् मा अधिनैष्ट।

संस्कृत व्याख्या—ते=सर्वे विश्वेदेवाः, नः=अस्मान्, त्राध्वम्=राक्षसेभ्यः त्रायध्वम्, ते=सर्वे विश्वेदेवाः एव, अवत=रक्षत, ते=ते देवाः एव, नः=अस्मान्, अधिवोचत=अस्मत्पक्षे ब्रूत। मानवात्=मनुना प्रदर्शितात्, पित्र्यात्=पितृपरम्परा-

गतात्, परावतः=सुदूरस्थितात्, पथः=मार्गात्, नः=अस्मान्, दूरम्=विप्रकृष्टम्, मा=नहि, अधिनैष्ट=अपनयत।

हिन्दी अनुवाद—वे तुम हमारी रक्षा करो, वे तुम हमें बचाओ, वे तुम हमारे पक्ष में बोलो। मनु द्वारा प्रदर्शित पितरों के दूर स्थित मार्ग से हमें दूर मत ले जाओ।

शब्दार्थ—त्राध्वम्=रक्षा करो, अवत=बचाओ या रक्षा करो, अधिवोचत =हमारे पक्ष में बोलो, पथः=रास्ते से, पित्र्यात्=पितृपरम्परा से आगत, मानवात्=मनु द्वारा प्रदर्शित, मा=मत, अधिनैष्ट=ले जाओ, परावतः=अत्यन्त दूर स्थित।

व्याकरण—

त्राध्वम्—त्रै धातु, लोट् लकार मध्यमपुरुष, बहुवचन का त्रायध्वम् के स्थान पर प्रयुक्त वैदिक रूप।

नेष्ट—नी धातु, लुङ्लकार मध्यमपुरुष, बहुवचन का वैदिक रूप।

विशेष—(१) इस मन्त्र में बृहती छन्द है। इस छन्द में ४ पाद होते हैं, जिनमें ३ पाद आठ-आठ वर्णों के तथा एकपाद बारह वर्णों का होता है। इसमें कुल ३६ वर्ण होते हैं।

ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—ये विश्वे देवासः इह स्थन, उत वैश्वानराः; अस्मभ्यम् गवे अश्वाय सप्रथः शर्म यच्छत।

संस्कृत व्याख्या—ये विश्वेदेवासः इह=अस्मिन् यज्ञे, स्थन=उपस्थिताः भवथ उत वैश्वानराः=सर्वजनकल्याणकारकाः यज्ञाग्न्यः अत्र उपस्थिताः, ते सर्वे यूयम्, अस्मभ्यम्=स्तुति कर्तृभ्यः, गवे=धेनवे, अश्वाय=घोटकाय सप्रथः= पृथुनमम्, च शर्म=सुखम्, यच्छत=प्रदत्त।

हिन्दी अनुवाद—जो तुम विश्वेदेव यहाँ उपस्थित हो तथा जो यज्ञ की अग्नियाँ यहाँ उपस्थित हैं वे सब तुम हमारे लिए, गायों के लिए तथा अश्वों के लिए अत्यन्त सुख प्रदान करो।

शब्दार्थ—इह=यहाँ, स्थन=उपस्थित हो, वैश्वानराः=यज्ञ की अग्नियाँ, अस्मभ्यम्=हमारे लिए, शर्म=सुख, सप्रथः=अत्यधिक, गवे=गायों के लिए, अश्वाय=घोड़ों के लिए, यच्छत=प्रदान करो।

व्याकरण—

यच्छत—यच्छ (दाण्) धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन।

स्थन—अस् धातु, लट्लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन का वैदिक प्रयोग।

शर्म—शृ+मनिन्।

विशेष—(१) छन्द की दृष्टि से यहाँ पर 'गवेऽश्वाय' के स्थान पर 'गवे अश्वाय' उच्चारण करना चाहिये।

(२) प्रकृत मन्त्र में अनुष्टुप् छन्द है। इस छन्द में ८-८ वर्णों के चार पाद होते हैं। इसमें कुल ३२ वर्ण होते हैं।

यम सूक्त

(ऋग्वेद १०/१४) (गोरखपुर)

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्

बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः।

यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्

स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के यम सूक्त से उद्धृत किया गया है। यमसूक्त को मृत्यु सूक्त भी कहा जाता है। इस सूक्त के ऋषि वैवास्वत मनु तथा देवता यम एवं पितर हैं यम प्राणों का देवता है, जो मृतात्मा का मार्गदर्शन करता है।

अन्वयः—मातली कव्यैः वावृधानः, यमः अङ्गिरोभिः बृहस्पतिः ऋक्वभिः (वावृधानः)। देवाः च यान् ववृधुः ये च देवान्, अन्ये स्वाहा मदन्ति, अन्ये स्वधया (मदन्ति)।

संस्कृत व्याख्या—मातली=इन्द्रः मातलिः सारथिः यस्य सः, कव्यैः=कव्यनामकैः पितरैः, वावृधानः=वर्धमानः भवतिः, यमः अङ्गिरोभिः=अङ्गिरोनामकैः पितरैः, बृहस्पतिश्च ऋक्वभिः=ऋक्वनामकैः पितरैः (वावृधानः=वर्धमानः भवति)। देवाः=इन्द्रादयः, याव्=पितृन्, ववृधुः=वर्धयन्ति, ये च=पितरश्च, देवान्=इन्द्रादीन् (ववृधुः=वर्धयन्ति), अन्ये=इन्द्रादयः, स्वाहा=स्वाहाकारेण, मदन्ति=हृयन्ति, अन्ये=पितरः स्वधया=स्वधाकारेण (मदन्ति=हृष्यन्ति)।

हिन्दी अनुवाद—इन्द्र (मातलि है सारथि जिसका वह) कव्य नामक पितरों से वृद्धि को प्राप्त होते हैं, यम अङ्गिरस् नामक पितरों से तथा बृहस्पति ऋक्व नामक पुरुषों से वृद्धि को प्राप्त करते हैं। देवता पितरों की वृद्धि करते हैं और पितर देवताओं की वृद्धि करते हैं। कुछ (इन्द्रादि देवता) स्वाहा (द्वारा प्रदत्त हवि से) प्रसन्न होते हैं तथा पितर स्वधा के द्वारा प्रसन्न होते हैं।

शब्दार्थ—मातली=इन्द्र (मातलि है सारथि जिसका), कव्यैः=कव्य नामक पितरों से, वावृधानः=वृद्धि को प्राप्त होते हैं, ववृधुः=बढ़ाते हैं या वृद्धि करते हैं, मदन्ति=प्रसन्न होते हैं।

व्याकरण—

वावृधानः—वृध्+कानच्।

स्वाहा—तृतीया विभक्ति, एकवचन का वैदिक रूप ।

विशेष—(१) कव्य, अंगिरस् और ऋक्व तीन प्रकार के पितर होते हैं, जिनका सम्बन्ध क्रमशः इन्द्र, यम और बृहस्पति के साथ माना गया है ।

(२) छन्द की दृष्टि से 'स्वाहान्ये' का उच्चारण 'स्वाहा अन्ये, करना चाहिये ।

(३) छन्द—त्रिष्टुप् ।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानाम्
अपि भद्रे सौमनसे स्याम ।।६।।

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—अङ्गिरसः, अथर्वाणः, भृगवः नः पितरः नवग्वा सोम्यासः । वयम् तेषाम् यज्ञियानाम् सुमतौ स्याम अपि सौमनसे भद्रे (स्याम) ।

संस्कृत व्याख्या—अङ्गिरसः अथर्वाणः भृगवः = अङ्गिरोऽथर्वभृगुनामकाः, नः = अस्माकं, पितरः = पितृजनाः, नवग्वा = नूतनवदानन्ददायकाः, सोम्यासः = सोम्याः चन्द्रवदाह्लादको वा । तेषां यज्ञियानाम् = यज्ञयोग्यानाम्, सुमतौ = सुबुद्धौ, स्याम = तिष्ठेम, आपि च सौमनसे = सौमनस्यस्य कारणे, भद्रे = कल्याणे स्याम = तिष्ठेम ।

हिन्दी अनुवाद—अङ्गिरस्, अथर्वा और भृगु नामक हमारे पितर नवीन वस्तु के समान आनन्ददायक एवं सोम इसके अधिकारी अथवा चन्द्रमा के समान आह्लादक हैं हम उन यज्ञ के योग्य पितरों की सुबुद्धि में रहें तथा सौमनस्ययुक्त कल्याण में रहें ।

शब्दार्थ—सोम्यासः = सोमरस के अधिकारी या चन्द्रमा के समान आह्लादक, सुमतौ = सुबुद्धि में, स्याम = रहें, यज्ञियानाम् = यज्ञ के योग्य, भद्रे = कल्याण में, सौमनसे = सौमनस्ययुक्त ।

व्याकरण—

नवग्वाः—नव + गम् + ड्वन् (औणादिक) प्रत्यय = नवग्व । प्रथमा विभक्ति का बहुवचन ।

सोम्यासः—सोम + यत् = सोम्य । प्रथमा विभक्ति, बहुवचन का वैदिक रूप ।

विशेष—(१) रॉथ नवग्वाः को विशेषण न मानकर संज्ञा मानते हैं । उनके अनुसार नवग्व प्राचीन काल में अथर्वन् के समान एक जाति थी ।

(२) रॉथ ने सोम्यासः का अर्थ किया है—'सोम रस को प्रदान करने वाले' ।

(३) छन्द की दृष्टि से सोम्यासः का उच्चारण सोमियासः तथा स्याम का उच्चारण सियाम करना चाहिये।

(४) छन्द—त्रिष्टुप्।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता
यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥७॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—यत्र नः पूर्वे परेयुः, पूर्व्येहिः पथिभिः प्रेहि प्रेहि। स्वधया मदन्ता राजाना यमम् वरुणम् च उभा देवम् पश्यासि।

संस्कृत व्याख्या—यत्र=यस्मिन् स्थाने, नः=अस्माकम्, पूर्वे=पुरातनाः पितरः परेयुः=जग्मुः, पूर्व्येभिः=पुरातनैः, पथिभिः=मार्गैः, प्रेहि प्रेहि=गच्छ गच्छ। स्वधया=अन्नैः भोग्यपदार्थैः वा, मदन्ता=आनन्दमनुवन्तो, राजाना=दीप्तिमन्तौ, उभा=उभौ यमं वरुणं च देवम्, पश्यासि=पश्य।

हिन्दी अनुवाद—जहाँ पर हमारे पुरातन पितर गये हैं, प्राचीन उन्हीं मार्गों से (हे पिता ! तुम) जाओ जाओ। वहाँ भोग्य पदार्थों या अमृतान्नों से आनन्द का अनुभव करते हुए एवं दीप्तिमान् होते हुए वरुण और यम दोनों देवों को देखो।

शब्दार्थ—प्रेहि प्रेहि=जाओ जाओ, पथिभिः=मार्गों से, पूर्व्येभिः=प्राचीन, परेयुः=गये हैं, राजाना=दीप्तिमान् होते हुए, स्वधया=भोग्य पदार्थों से या अमृतान्नों से, मदन्ता=आनन्दित होते हुए, पश्यासि=देखो।

व्याकरण—

प्रेहि—प्र+इण्, लोट्लकार मध्यपुरुष, एकवचन।

पूर्व्येभिः—पूर्व+यत्=पूर्व्य। तृतीया विभक्ति, बहुवचन का वैदिक रूप।

परेयुः—परा+इण्, लिट्लकार प्रथमपुरुष, बहुवचन।

उभा, राजाना, मदन्ता—उभौ, राजानौ, मदन्तौ (मद्+शतृ) के स्थान पर प्रयुक्त प्रथमा विभक्ति के द्विवचन के वैदिक रूप।

पश्यासि—दृश्धातु से लट्लकार, मध्यमपुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) छन्द की दृष्टि से 'पूर्व्येभिः' का उच्चारण 'पूर्वियेभिः' करना चाहिये।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेने-
ष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि
सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥८॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—परमे व्योमन् पितृभिः संगच्छस्व, यमेन इष्टापूर्तेन सम् (गच्छस्व)। अवद्यम् हित्वाय पुनः अस्तम् आ इहि । सुवर्चा तन्वा संगछस्व ।

संस्कृत व्याख्या—(हे पितः !) परमे=उत्कृष्टे, व्योमन्=पितृलोके, पितृभिः =स्ववंशीयै पूर्वजनैः सह, संगच्छस्व । यमेन=यमदेवेन, इष्टापूर्तेन=श्रौतस्मार्त दानफलेन सम्=संगच्छस्व । अवद्यम्=पापम्, हित्वाय=परित्यज्य, पुनः अस्तम् =गृहम् एहि=आगच्छ । सुवर्चाः=सुन्दरदीप्तियुक्तेन अत्र तृतीयार्थे प्रथमा, तन्वा =शरीरेण, संगच्छस्व ।

हिन्दी अनुवाद—(हे पिता !) उत्कृष्ट पितृलोक में अपने पूर्वज पितरों के साथ मिल जाओ, यमदेव तथा श्रौतस्मार्तदान आदि फलों से मिल जाओ। पाप को छोड़कर फिर घर में आ जाओ। सुन्दर दीप्तियुक्त शरीर से युक्त हो जाओ।

शब्दार्थ—संगच्छस्व=मिल जाओ, इष्टापूर्तेन=श्रुति एवं स्मृतियों द्वारा विहित दानादि फल से, परमे=उत्कृष्ट, व्योमन्=अन्तरिक्ष या पितृलोक में, हित्वाय =छोड़कर, अवद्यम्=पाप को, अस्तम्=घर, तन्वा=शरीर से, सुवर्चाः= दीप्तियुक्त ।

व्याकरण—

इष्टापूर्तेन—इष्टं च पूर्तं च तयोः समाहारः (समाहारद्वन्द्व समास)।

व्योमन्—सप्तमी विभक्ति के एकवचन में विभक्ति लोप होकर वैदिक रूप ।

हित्वाय—हा+क्त्वा (वैदिक रूप)।

सुवर्चाः—शोभनं वर्चं यस्य तत् । तृतीया के अर्थ में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग ।

विशेष—(१) रॉथ ने इष्टापूर्तं का अर्थ इच्छाओं की पूर्ति किया है।

(२) छन्द की दृष्टि से 'यमेनेष्टापूर्तेन' का 'यमेन इष्टापूर्तेन,' 'व्योमन्' का 'वि ओमन्', 'गच्छस्व' का 'गच्छसुव' तथा 'तन्वा' का 'तनुवा' उच्चारण करना चाहिये ।

(३) छन्द—त्रिष्टुप् ।

यमाय सोमं सुनुत
यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्य्
अग्निदूतो अरंकृतः ॥१३॥

प्रसंङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—यमाय सोमम् सुनुत । यमाय हविः जुहुत । अग्निदूतः अरंकृतः यज्ञः यमम् ह गच्छति ।

संस्कृत व्याख्या—यमाय=यमदेवाय, सोमम्=सोमलतात्मकं रसम्, सुनुत =अभिषुणुत। यमाय हविः=द्रव्यम्, जुहुत=हवनं कुरु। अग्निदूतः=वह्निदूतः, अरंकृतः=बहुभिः पदार्थैः सुशोभितः, यज्ञः=क्रतुः, यमम्=यमदेवम् ह=एव, गच्छति।

हिन्दी अनुवाद—यम के लिए सोमरस का अभिषव करो। यम के लिए हवि से हवन करो। अग्नि रूप दूत वाला तथा (अनेक प्रकार के पदार्थों से) सुशोभित यज्ञ यम को ही प्राप्त होता है।

शब्दार्थ—सुनुत=अभिषव करो, जुहुत=हवन करो, अग्निदूतः=अग्नि रूप दूत वाला, अरंकृतः=सुशोभित, गच्छति=प्राप्त होता है।

व्याकरण—

सुनुत—षुञ् धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, बहुवचन।

अरंकृतः—अरम् (अलम्)+कृ+क्तः। अलम् के स्थान पर अरम् का प्रयोग वैदिक है।

विशेष—(१) मैक्डानल ने अरंकृतः का अर्थ 'भलीभाँति तैयार किया गया' किया है।

(२) छन्द की पूर्ति के लिए गच्छत्यग्निदूतः का उच्चारण 'गच्छति अग्निदूतः' करना चाहिये।

(३) छन्द—अनुष्टुप्। इस के चारों पादों में ८-८ वर्ण कुल ३२ वर्ण होते हैं।

अक्ष सूक्त

(रुहेल गढ़०)

(ऋग्वेद १०/३४)

न मा मिमेथ न जिहील एषा
शिवा सखिभ्यः उत मह्यमासीत्।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतो-
रनुव्रतामप जायामरोधम् ॥२॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के अक्ष सूक्त से उद्धृत है। इस सूक्त में जुआ की निन्दा और कृषि की प्रशंसा की गई है। सामाजिक दृष्टि से इस सूक्त का ऋग्वेद में महत्वपूर्ण स्थान है। इसके ऋषि कवष ऐलूष हैं।

अन्वयः—एषा मा न मिमेथ न जिहीले; सखिभ्यः उत मह्यम् शिवा आसीत् एकपरस्य अक्षस्य हेतोः अहम् अनुव्रताम् जायाम् अप अरोधम्।

संस्कृत व्याख्या—एषा=इयं मम पत्नी, मा=माम्, न=नहि, मिमेथ= चुक्रोध, न=नही, जिहीले=लज्जितवती आसीत्, सखिभ्यः=मित्रेभ्यः, उत=अपि

च, मध्यम्=मदर्थम्, शिवा=सुखदा आसीत्, एकपरस्य=एकमात्रस्य, अक्षस्य=द्यूतस्य, हेतो=कारणात्, अहम् अनुव्रताम्=पतिव्रतामनुकूलाम् च, जायाम्=पत्नीम्, अप अरोधम्=व्यक्तवानस्मि।

हिन्दी अनुवाद—यह मुझ पर क्रोध नहीं करती थी और न लज्जित करती थी। मित्रों के लिये और मुझे सुख प्रदान करने वाली थी। एकमात्र जुआ के कारण से मैंने पतिव्रता अनुकूल पत्नी का त्याग कर दिया है।

शब्दार्थ—मिमेथ=क्रोध करती थी, जिहीले=लज्जित करती थी, शिवा=सुख प्रदान करने वाली, सखिभ्यः=मित्रों के लिये, मध्यम्=मेरे लिये, अक्षस्य=जुआ के, हेतो=कारण से, एकपरस्य=एकमात्र, अनुव्रताम्=पतिव्रता और अनुकूल, जायाम्=पत्नी को, अप अरोधम्=त्याग दिया है।

व्याकरण—

मिमेथ—मिथ् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

जिहीले—हील् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

अरोधम्—रुध् धातु, लुङ् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) छन्द—त्रिष्टुप्।

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि
न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य
नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्॥३॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—श्वश्रूः द्वेष्टि, जाया अवरुणद्धि। नाथितः मर्डितारम् न विन्दते। वस्न्यस्य जरतः अश्वस्य इव अहम् कितवस्य भोगम् न विन्दामि।

संस्कृत व्याख्या—श्वश्रू=पत्न्याः जननी, द्वेष्टि=द्वेषं करोति, जाया=पत्नी, अपरुणद्धि=विरुद्धा भवति। नाथितः=याचमानः कितवः, मर्डितारम्=धनेन सुखयितारम्, न विन्दते=नहि लभते। वस्न्यस्य=बहुमूल्यस्य, जरतः=वृद्धस्य, अश्वस्य इव, कितवस्य=द्यूतकारस्य, भोगम् न विन्दामि=न प्राप्नोमि।

हिन्दी अनुवाद—सास (उस जुआरी से) द्वेष करती है. पत्नी विरोधिनी हो जाती है। वह याचना करने पर भी (धन देकर) सुख प्रदान करने वाले को नहीं पाता है। बहुमूल्य बुढ़े घोड़े के समान में जुआरी होने से भोगों को प्राप्त नहीं कर रहा हूँ।

शब्दार्थ—द्वेष्टि=द्वेष करती है, श्वस्रू=सास, जाया पत्नी, अपरुणद्धि=विरुद्ध हो जाती है, नाथितः=याचना किये जाने पर या याचना करता हुआ, विन्दते=प्राप्त करता है।, मर्डितारम्=सुख देने वाले को, जरतः=वृद्ध, वस्न्यस्य=बहुमूल्य कितवस्य=जुआरी होने के, भोगम्=भोग्य वस्तुओं को।

व्याकरण—

मर्डितारम्—मृड् + तृच्→मर्डितृ। द्वितीया विभक्ति. एकवचन।

द्वेष्टि—द्विष् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

रुणद्धि—रुध् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विन्दते—विद (विन्द्) धातु लट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

नाथितः—नाथ + क्त। इट् का आगम।

वस्न्यस्य—वस्न + यत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

जरतः—जृ + शतृ→जरत्। षष्ठी विभक्ति का एकवचन।

विशेष—(१) मैक्डानल ने वस्न्यस्य का अर्थ 'बेचने के लिये ले जाये गये' किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्य-
हस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः
शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥९॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।……पासों का वर्णन करते हुए ऋषि कहता है।

अन्वयः—नीचा वर्तन्ते उपरि स्फुरन्ते। अहस्तासः हस्तवन्तम् सहन्ते। दिव्याः अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीता. सन्तः हृदयम् निर्दहन्ति।

संस्कृत व्याख्या—नीचाः=निम्नस्थले, वर्तन्ते=प्रक्षिप्यन्ते तथापि, उपरि स्फुरन्ति=भीतानां हृदयस्योपरि स्फुरन्ति, पराजयकारणात्। अहस्तासः=हस्तरहिताः अपि, हस्तवन्तम्=हस्तयुक्तं मनुष्यम्, सहन्ते=अभिभवन्ति। दिव्याः=अद्भुताः, अङ्गाराः=अङ्गारसदृशाः, इरिणे=अस्फारे, न्युप्ताः→प्रक्षिप्ताः शीताः=शीतलस्पर्शाः सन्तः, हृदयम्=अन्तकर्णम्, निर्दहन्ति=भस्मीकुर्वन्ति।

हिन्दी अनुवाद—(पासें) नीचे डाले जाते हैं परन्तु (जुआरियों के हृदय को) ऊपर उछाल देते हैं अथवा ऊपर उछल जाते हैं। हाथों से हीन भी हाथों वाले को अभिभूत कर देते हैं। अद्भुत अङ्गारों के समान ये अक्षपट्ट पर फेंके जाते हुए शीतल होते हुए शीतल होने पर भी हृदय को जलाते हैं।

शब्दार्थ—नीचाः=नीचे, वर्तन्ते=डाले जाते हैं, उपरि=ऊपर, स्फुरन्ति= उछाल देते हैं या उछल जाते हैं, अहस्तासः=हाथ से रहित, हस्तवन्तम्=हाथ वाले मनुष्य को, सहन्ते=अभिभूत कर देते हैं, दिव्याः=अद्भुत, अंगारा=अंगारों के समान, इरिणे=अक्षपट्ट पर, न्यूप्ताः=फैंके जाते हुए, शीताः सन्तः=शीतल होने पर भी, निर्दहन्ति=जलाते हैं।

व्याकरण—

न्युप्ता—नि + वप् + क्त (व् को सम्प्रसारण)=न्युप्त। प्रथमा विभक्ति का बहुवचन।

विशेष—(१) सायण "उपरि स्फुरन्ति" का अर्थ 'ऊपर जुआरियों के हृदय को उछाल देते हैं, करते हैं' तथा मैक्डानल 'ऊपर को उछलते हैं' करते हैं।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

जाया तप्यते कितवस्य हीना

माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित्।

ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानो-

ऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—क्व स्वित् चरतः कितवस्य हीना जाया तप्यते। पुत्रस्य माता (तप्यते) ऋणावा विभ्यद्धनम् इच्छमानः अन्येषाम् अस्तम् नक्तम् उप एति।

संस्कृत व्याख्या—क्वस्वित्=क्वापि, चरतः—विचरतः, कितवस्य=द्यूतकारस्य, हीना=त्यक्ता, जाया=पत्नी, तप्यते=दुःखिता जायते। पुत्रस्य=कितवस्य, माता=जननी तप्यते। ऋणावा=ऋणवान् कितवः, विभ्यद्धनम्=चोर्यजं द्रविणम्, इच्छमानः=कामयमानः, अन्येषाम्=अपरेषाम्, अस्तम्=गृहम्, नक्तम्=रात्री, उपएति=गच्छति।

हिन्दी अनुवाद—कहीं घूमते हुए जुआरी की परित्यक्त पत्नी दुःखी होती है, जुआरी पुत्र की माता दुःखी होती है, ऋणवान् वह चोरी के धन को चाहता हुआ दूसरों के घर में रात को (चोरी के लिये) जाता है।

शब्दार्थ—तप्यते=दुःखी होती है, हीना=परित्यक्ता, चरतः=घूमते हुए, क्वस्वित्=कहीं पर, ऋणावा=कर्जदार, विभ्यद्धनम्=चोरी के धन को, इच्छमानः=चाहता हुआ, अस्तम्=घर में, नक्तम्=रात्रि से, उपएति=जाता है।

व्याकरण—

तप्यते—तप् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

चरतः—चर्+शतृ→चरत्। शष्ठी विभक्ति एकवचन।

ऋणावा—ऋण+वनिम्=ऋणावन्। प्रथमा विभक्ति एकवचन।

विशेष—(१) मैक्डानल ने 'विभ्यत्' को कितव का विशेषण मानकर उसका अर्थ 'डरता हुआ' किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृषस्व

वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।

तत्र गाव कितव तत्र जाया

तन्मे विचष्टे सवित यमर्यः ॥१३॥

प्रसङ्ग—……जुआ की निन्दा और कृषि की प्रसंसा करता हुआ ऋषि लोगों को उपदेश देता है कि—

अन्वय:—कितव ! अक्षैः मा: दीव्य: । कृषिम् इत् कृषस्व । विते बहु मन्यमान: रमस्व तत्र गाव:, तत्र जाया । अयम् सविता अर्य: तत् मे वि चष्टे ।

संस्कृत-व्याख्या—कितव=हे द्यूतकार !, अक्षैः मा दीव्य:=द्यूतं मा क्रीड । कृषिम् इत्=इव, कृषस्व=कुरु । वित्ते=धने, बहुमन्यमान:=विश्वासं कुर्वन्, रमस्व=रतिं कुरु । तत्र=कृषिकार्ये, गाव:=धेन्वादिपशव:, तत्र जाया=पत्नी । अयम् सविता=संसारस्य प्रेरक: देव:, अर्य:=ईश्वर:, तत्=तदेव, मे=मह्यम्, विचष्टे=आख्यातवान् ।

हिन्दी अनुवाद--हे जुआरी पासों में मत खेलो, कृषि ही करो । (उससे प्राप्त धन में विश्वास करते हुए आनन्द प्राप्त करो । वहीं (उसी कृषि में) गोधन है और उसी में पत्नी (दाम्पत्य आनन्द है । इस संसार के प्रेरक ईश्वर ने यही मेरे लिये बताया है ।

शब्दार्थ—मा दीव्य: =जुआ मत खेलो, रमस्व=आनन्द प्राप्त करते हुए, बहुमन्यमान:=विश्वास करते हुए, गाव:=गौ आदि धन, कितव=हे जुआरी, जाया=पत्नी (दाम्पत्य सुख) विचष्टे=बताया है, सविता=सबके प्रेरक, अर्य:= ईश्वर में ।

व्याकरण—

मा दीव्य:—दिव् धातु, लुङ् लकार, मध्यम पुरुष एकवचन । माङ् के योग में अडागम् का अभाव ।

विचष्टे—वि+चक्ष्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन ।

विशेष—छन्द—त्रिष्टुप् ।

पुरुष सूक्त

(ऋग्वेद १०/९० एवम् यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र १-१६)

(मेरठ, रुहेल,० बुन्देल० आगरा गढ़०, कान०)

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

प्रसङ्ग--प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दशममण्डल के/शु०यजुर्वेद के ३१वें अध्याय के पुरुष सूक्त से उद्धृत किया गया है । सृष्टि की उत्पत्ति विषयक सूक्तों में पुरुष सूक्त का महत्वपूर्ण स्थान है । इस सूक्त में बताया गया है कि सृष्टि का मूल कारण एक पुरुष है, जिसके सभी अंग सृष्टि के भिन्न-भिन्न अंग बन जाते हैं । इसके ऋषि नारायण तथा देवता पुरुष है ।

अन्वयः—इदम् सर्वम् पुरुषः एव, यत् भूतम् यत् च भाव्यम्। अमृतत्वस्य ईशानः उत अन्नेन अतिरोहित।

संस्कृत व्याख्या—इदं सर्वम्=एतत् वर्तमानं जगत्, पुरुष=परमपुरुषः स्वास्ति, यत् भूतम्=अतीतम्, यत् च भाव्यम्=भविष्यम् तत्सर्वमपि पुरुष एवास्ति। अमृतत्वस्य=देवस्य, ईशानः=अधिपति,। उत=अपि च, अन्नेन=भोग्येन पदार्थेन, अतिरोहति=वर्धते।

हिन्दी अनुवाद—यह सब (वर्तमान जगत) पुरुष ही है। जो हो चुका है और जो होगा (वह पुरुष ही हे)। वह अमरता का अथवा देवताओं का स्वामी है और अन्न के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है।

शब्दार्थ—इदं सर्वम्=वर्तमान जगत्, भूतम्=हो चुका, भाव्यम्=होगा, अमृतत्वस्य=अमरता का अथवा देवों का, ईशानः=स्वामी, अतिरोहति=वृद्धि को प्राप्त होता है।

व्याकरण—

भूतम्—भू+क्त।

भाव्यम्—भू+ण्यत्।

ईशानः—ईश+शानच्।

विशेष—(१) अमृत शब्द के तीन अर्थ हैं—अमृत, जल, सुधा देवता। इसी दृष्टि से मन्त्र की अनेक व्याख्यायें की गई हैं।

(२) छन्द की दृष्टि से भाव्यम् को भावियम् पढ़ना चाहिये।

(३) छन्द अनुष्टुप्। इसके चारों पादों में ८-८ पाद होते हैं।

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—एतावान् अस्य महिमा। पुरुषः च अतः ज्यायान्। विश्वा भूतानि अस्य पादः। अस्य त्रिपात् अमृतम् दिवि।

संस्कृत व्याख्या—एतावान्=अतीतानागतवर्तमानकालपरिमितः, अस्य=पुरुषस्य, महिमा=विभूतिः सामर्थ्यविशेषो वा। पुरुषः=परमपुरुषः च, अतः=अस्मात्, ज्यायान्=अधिकः। विश्वाः=सर्वाणि, भूतानि=प्राणिजातानि, अस्य=पुरुषस्य, पादः=चतुर्थांश, अस्य=पुरुषस्य, त्रिपात्=त्रय चतुर्थांशः, अमृतम्=विनाशरहितम्, दिवि=द्युलोके अवतिष्ठते।

हिन्दी अनुवाद—इतनी इसकी महिमा है और पुरुष इससे भी अधिक है। सभी लोक इसका पाद (एक चौथाई अंश अर्थात् २५% भाग) है। इसके तीन पाद तीन चौथाई अंश अर्थात् ७५% भाग) अमरलोक अन्तरिक्ष में है।

शब्दार्थ—एतावान्=इतनी, महिमा=विभूति या ऐश्वर्य, अतः=इससे, ज्यायान्=अधिक, पादः=एक चौथाई अंश, विश्वा=सम्पूर्ण, भूतानि=प्राणिलोक, त्रिपात्=तीन चौथाई अंश, अमृतम्=अमर लोक, दिवि=अन्तरिक्ष में ।

व्याकरण—

ज्यायान्—प्रशस्य+ईयसुन् । प्रशस्य को ज्य आदेश । ईयसुन् के ई को आ=ज्यायस् । ज्यायस् शब्द से प्रथमा विभक्ति के एकवचन का रूप ।

त्रिपात्—त्रयाणां पादानां समाहारः । पाद शब्द के अ का लोप ।

पुरुषः—पुरुषः में उ का छान्दस दीर्घ (संहिता पाठ में) ।

महिमा—महत्+इमनिच् । प्रथमा विभक्ति, एकवचन ।

एतावान्—एतत्+मतुप्=एतावत् । प्रथमा विभक्ति, एकवचन ।

विशेष—(१) छन्द की दृष्टि से 'महिमातो' का उच्चारण 'महिमा अतो' करना चाहिये ।

(२) पीटर्सन ने 'दिवि' का आकाश में, मैक्डानल ने स्वर्ग में तथा सायण ने स्वप्रकाश रूप में किया है ।

(३) छन्द—अनुष्टुप् ।

तस्माद्विरालजायत विराजो अधिपूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—तस्मात् विराट् अजायत । विराजः अधि पुरुषः (अजायत) । सः जातः अत्यरिच्यत । पश्चात् भूमिम् अथो पुरः ।

संस्कृत व्याख्या—तस्मात्=आदिपुरुषात्, विराट्=ब्रह्माण्डदेहः, अजायत=सञ्जातः । विराजः=ब्रह्माण्डदेहात्, अधि=पश्चात्, पुरुष=जीवात्मनः रूपे पुरुषः, अजायत=अभवत् । सः=जीवात्मा, जातः=संजातः एव, अतिरिच्यत=अतिरिक्तो देवतिर्यङ्मनुष्यादिरूपः अभवत् । पश्चात्=अनन्तरम्, भूमिम्=पृथिवीम्, अथो=अनन्तरम्, पुरः शरीराणि, ससर्जेति शेषः ।

हिन्दी अनुवाद—उस (आदिपुरुष) से विराट् उत्पन्न हुआ । विराट् के बाद फिर पुरुष (जीवात्मा) उत्पन्न हुआ । उसने उत्पन्न होते ही अपने को (देव मनुष्यादि रूप से) अलग कर लिया । बाद में भूमि को और फिर इसके बाद शरीरों को उत्पन्न किया ।

शब्दार्थ—विराट्=ब्रह्माण्डदेह या पुरुष से उत्पन्न होने वाला प्रथम तत्त्व, अजायत=उत्पन्न हुआ, विराजः=विराट् या ब्रह्माण्डदेह नामक परमपुरुष से उत्पन्न होने वाले प्रथम तत्त्व से, अधि=बाद में, पुरुषः=जीवात्मा के रूप में पुरुष, जातः=उत्पन्न होते ही, अत्यरिच्यत्=(देव, मनुष्य, तिर्यञ्च आदि से) अपने को अलग कर

लिया, पश्चात्=बाद में, भूमिम्=पृथिवी को, अथो=इसके अनन्तर, पुरः=(जीवात्मा के लिए) शरीर।

व्याकरण—

विराट्—वि+राज्+क्विप्।

अत्यरिच्यत—अति+रिच् धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) सायण और महीधर ने पुरः शब्द का अर्थ शरीर किया है। पीटर्सन और मैक्डानल ने इसका अर्थ 'पहले' Before किया है। ग्रिफिथ ने पुरः का अर्थ पूर्व दिशा की ओर' Eeastward किया है।

(२) भूमिम् के बाद ससर्ज का अध्याधार करके सायण ने संगति बैठाई है, परन्तु पीटर्सन भूमिम् पद को अत्यरिच्यत क्रिया का ही कर्म मानती हैं।

(३) छन्द—अनुष्टुप्।

तस्माद् यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥

प्रसङ्ग—……उस आत्म रूप पुरुष से वेदत्रयी की उत्पत्ति का वर्णन करता हुआ ऋषि कहता है।

अन्वयः—सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे। तस्मात् छन्दांसि जाज्ञिरे। तस्मात् यजुः अजायत।

संस्कृत व्याख्या—सर्वहुतः=आत्मपुरुषस्य अहुतिवतः, तस्मात्=पूर्वकथितात्, यज्ञात्=क्रतोः, ऋचः सामानि जज्ञिरे=उत्पन्नाः। तस्मात्=पूर्वोक्तात् यज्ञात् छन्दांसि=गायत्र्यादीनि जज्ञिरे=समुत्पन्नाः। तस्मान् यज्ञात् यजुः अपि रजायत=उत्पन्नः।

हिन्दी अनुवाद—जिस में सब कुछ आहुत कर दिया जाता है, ऐमे उस यज्ञ से ऋचायें (ऋग्वेद) साम (सामवेद) उत्पन्न हुए। उससे (गायत्री आदि) छन्द उत्पन्न हुए। उससे यजुष (यजुर्वेद) उत्पन्न हुआ।

शब्दार्थ—सर्वहुतः=जिसमें सब कुछ आहुत कर दिया जाता है ऐसे, ऋचः=ऋग्वेद, सामानि=सामवेद, छन्दांसि=गायत्री आदि छन्द, जज्ञिरे=उत्पन्न हुए, यजुः=यजुर्वेद, अजारत=उत्पन्न हुआ।

व्याकरण—

ऋचः—ऋक् शब्द से प्रथमा विभक्ति का एकवचन।

सामानि—सामन् शब्द से प्रथमा विभक्ति का एकवचन।

यजुः—यज्+उस्=यजुस् शब्द से प्रथमा विभक्ति का एकवचन।

जज्ञिरे—जन् धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

अजायत—जन् धातु, लङ् लकार प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) म्यूर 'छन्दांसि' शब्द से अथर्ववेद का भी ग्रहण करके इसमें चारों वेदों की उत्पत्ति का विवेचन मानते हैं। सायण छन्दांसि का अर्थ गायत्री आदि छन्द करते हैं।

छन्द—अनुष्टुप्।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।

उरू तदस्य यद् वैश्यः, पद्भ्यां शूद्रोऽजायत ।।१२।।

प्रसङ्ग—......। यज्ञ पुरुष से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चारों वर्गों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए ऋषि का कथन है—

अन्वयः—अस्य मुखम् ब्राह्मणः आसीत्। बाहू राजन्यः कृतः। अस्य यद् उरू तद् वैश्यः। पद्भ्याम् शूद्रः अजायत।

संस्कृत व्याख्या—अस्य=प्रजापतेः परमपुरुषस्य वा, मुखम्=आननम्, ब्राह्मणः=ब्राह्मणवर्णः आसीत्। ब्राह्मणाः मुखादुत्पन्ना इत्यर्थः। बाहू=भुजौ, राजन्यः =क्षत्रियः, कृतः=स्वीकृतः। बाहुभ्याम् क्षत्रियाः उत्पन्नाः इति भावः। अस्य= परमपुरुषस्य प्रजापतेः वा यद्उरू=उरुप्रदेशौ, तद् वैश्यः=सः वैश्यवर्णः स्वीकृतः। अर्थात् उरुभ्याम् वैश्यवर्णः अजायत। पद्भ्याम्=चरणाभ्याम्, शूद्रः=शूद्रत्वजाति-विशिष्टः पुरुषः, अजायत=उत्पन्नः।

हिन्दी अनुवाद—इस पुरुष का मुख ब्राह्मण था। भुजायें क्षत्रिय माना गया है। इसकी जो जघायें हैं, वह वैश्य है। दोनों पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ। (अर्थात् उस परमपुरुष के मुख से ब्राह्मण वर्ण, दोनों भुजाओं से क्षत्रिय वर्ण, दोनों जंघाओं से वैश्य वर्ण तथा दोनों पैरों से शूद्र वर्ण की उत्पत्ति हुई।

शब्दार्थ—बाहू=दोनों भुजायें, राजन्यः=क्षत्रिय, उरू=दोनों जंघायें, पद्भ्याम्=दोनों पैरो से, अजायत=उत्पन्न हुआ।

व्याकरण—

राजन्यः—राजन् शब्द से यत् प्रत्यय।

अजायत—जन् धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति का वर्णन ऋग्वेद की इसी ऋचा में उपलब्ध है।

(२) छन्द—अनुष्टुप्।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।

मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ।।१३।

प्रसङ्ग—पूर्ववत्। ब्राह्मणादि के समान चन्द्रमा आदि की भी पुरुष से उत्पत्ति दिखाते हैं—

अन्वयः—मनसः चन्द्रमाः जातः, चक्षोः सूर्यः अजायत। मुखात् इन्द्रः च अग्निः च, प्राणात् वायुः अजायत।

संस्कृत व्याख्या—मनसः=परमपुरुषस्य प्रजापतेर्वा हृदयात्, चन्द्रमाः=चन्द्रः जातः=उत्पन्नः। चक्षोः=नेत्रात्, सूर्यः=भानुः, अजायत=उत्पन्नः। मुखात्=वक्त्रात्, इन्द्रः च अग्निः च, प्राणात् वायुः=पवनः, अजायत=समुत्पन्नः।

हिन्दी अनुवाद—(प्रजापति परमपुरुष के) मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुआ। मुख से इन्द्र और अग्नि तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुये।

शब्दार्थ—जातः=उत्पन्न हुआ, अजायत=उत्पन्न हुआ।

व्याकरण—

चक्षोः—पञ्चमी विभक्ति के एकवचन का वैदिक रूप। लोक में चक्षुषः रूप निष्पन्न होता।

विशेष—(१) छन्द की दृष्टि से 'चाग्निश्च' को 'च अग्निश्च' पढ़ना चाहिये।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

सप्तास्यासन् परिधयस् त्रिः समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—यत् यज्ञम् तन्वानाः देवा पुरुषम् पशुम् अबध्नन्, अस्य सप्त परिधयः आसन्, त्रिसप्त समिधः कृताः।

संस्कृत व्याख्या—यत् यज्ञम् तन्वानाः=कुर्वाणाः देवा पुरुषम्=विराट्-पुरुषम्, पशुम्=पशुरूपेण, अबध्नन्=अभावयन्, अस्य=परमपुरुषस्य, सप्त=सप्तसंख्याकाः, परिधयः=गायत्र्यादीनि छन्दांसि परिधयः, आसन्। त्रिसप्त=एकविंशतिः—द्वादश मासाः पञ्च ऋतवः त्रयः इमे लोकाः अ[illegible]ौ आदित्यश्च, समिधः कृताः=भाविताः।

हिन्दी अनुवाद—जिस मानस यज्ञ को करते हुए देवताओं ने पुरुष को पशु के रूप में बांधा था, उसकी सात परिधियाँ और इक्कीस समिधायें थीं।

शब्दार्थ—त्रिःसप्त=इक्कीस ३×७=२१, तन्वाना=करते हुए, अबध्नन्=बाँधा था, पशुम्=पशु रूप में।

व्याकरण—

तन्वानाः—तन्+उ+शानच्=तन्वान। प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

अबध्नन्—बन्ध् धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) कुछ पाश्चात्य एवं भारतीय समीक्षकों की धारणा है कि इसी मन्त्र में पशुबलि का प्रथम संकेत मिलता है। कुछ दूसरे लोग पशु का अर्थ यहाँ

जानवर न मानकर 'सर्वदृष्टा' मानते हैं तथा इसे पुरुष (मानस) का विशेषण कहते हैं।

(२) छन्द—अनुष्टुप्।

सरमापणिसंवाद सूक्त

(ऋग्वेद १०/१०८) (बुन्देलखण्ड)

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि
मह इच्छन्ती पणयो निधीन्वः।
अतिष्कदो भियसा तन्न आव
तथा रसाया अतरं पयांसि ॥२॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के सरमापणिसंवाद सूक्त से लिया गया है। एक बार इन्द्र के पुरोहित बृहस्पति की गायें बलासुर ने चुराकर गुफाओं में छिपा दीं। तब बृहस्पति की प्रेरणा से इन्द्र ने सरमा नाम की जासूसी दैवी कुतिया को भेजा। उसका और पणियों का इस सूक्त में संवाद है। सरमा अपना परिचय देती हुई कहती है—

अन्वयः—पणयः! इन्द्रस्य दूतीः दूषिता वः महः निधीन् इच्छन्ती चरामि। अतिस्कन्दः भियसा तत् नः आवत्। तथा रसायाः पयांसि अतरम्।

संस्कृत व्याख्या—पणयः=हे पणिनामकाः असुराः। इन्द्रस्य=देवाधिपतेः, दूतीः=संदेशवाहिका, दूषिता=इन्द्रेण प्रेषिता अहम्: वः=पणीनाम्, महः=महतः, निधीन्=गोनिधीन्, इच्छन्ती=कामयमाना, चरामि=विचरामि। अतिस्कन्द,=अतिक्रमणाज्जातेन, भियसा=भयेन, तत्=सा रसानाम्नी नदी, नः=अस्मान् मामिति भावः, आवत्=अरक्षत्। तथा=तेन प्रकारेण रसायाः=रसानद्याः, पयांसि=जलानि, अतरम्=अवतीर्णवती अस्मि।

हिन्दी अनुवाद—हे पणियो! इन्द्र की दूती मैं उसी के द्वारा प्रेषित हूँ तथा तुम्हारे महान् गोनिधियों की इच्छा करती हुई विचरण कर रही हूँ। अतिक्रमण कर जाने के भय से रसा नदी ने मेरी रक्षा की। उस प्रकार मैंने रसा नदी के जलों को पार किया है।

शब्दार्थ—इषिता=भेजी गई, महः=महान्, पणयः=पणिनामक असुर, निधीन्=(गायों के) खजानों को, अतिष्कन्दः=अतिक्रमण के, भिया=डर से, आवत्=रक्षा की या सहायता की, तथा=उस प्रकार, अतरम्=मैंने पार किया।

व्याकरण—

दूषिता—इष्+क्त+टाप्।

आवत्—अव् धातु, लङ् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

असरम्—सृ धातु, लङ् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) छन्द—त्रिष्टुप्।

(२) सरमा देवशुनी (दैवी कुतिया) ने यह उत्तर पणियों के द्वारा परिचय पूछे जाने पर दिया है।

नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स
यस्येदं दूतीरसरं पराकात्।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा
हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे॥

प्रसङ्ग—······पणियों द्वारा पूछे जाने पर सरमा देवशुनी इन्द्र के विषय में कहती हैं—

अन्वयः—अहम् तम् दभ्यम् न वेद, सः दभत्, यस्य दूतीः पराकात् इदम् असरम्। स्रवतः गभीराः तम् न गूहन्ति। पणयः! इन्द्रेण हताः शयध्वे।

संस्कृत व्याख्या—अहम् सरमा देवशुनी, तम्=इन्द्रम्, दभ्यम्=हननीयम्, न वेद=नहि जानामि, अपितु सः=इन्द्रः, दभत्=शत्रुहन्ता अस्ति, यस्य=इन्द्रस्य, दूतीः=संदेशवाहिका अहम्, पराकात्=दूरदेशात्, इदम्=इदं स्थानम्, असरम्=प्राप्ता अभूवम्। स्रवतः=स्रवणशीलाः, गभीराः=नद्यः, तम्=इन्द्रम्, न गूहन्ति=नहि आच्छादयन्ति। पणयः=हे असुराः!, इन्द्रेण=पुरन्दरेण, हताः=मृत्युं प्राप्ताः सन्तः, शयध्वे=पृथिव्यां शयध्वे।

हिन्दी अनुवाद—मैं उस इन्द्र को हिंसायोग्य नहीं समझती हूँ, अपितु वह शत्रुओं का मारने वाला है, जिसकी दूती मैं दूर से यहां आई हूँ। बहती हुई नदियां उस इन्द्र को नहीं छिपा सकती हैं। हे पणियो! इन्द्र के द्वारा मृत होकर तुम (पृथिवी पर) पड़ जाओगे।

शब्दार्थ—वेद=जानती हूँ, दभ्यम्=हननीय, दभत्=शत्रु हिंसक, हिंसा करता है, असरम्=आई हूँ, पराकात्=बहुत दूर से, गूहन्ति=छिपाती हैं, स्रवतः=बहती हुईं, गभीराः=नदियाँ हताः=मृत होकर, शयध्वे=(पृथिवी पर) पड़ जाओगे।

व्याकरण—

दभ्यम्—दभ्+यत्।

दभत्—दभ् धातु, लेट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

शयध्वे—शीङ् धातु, लट् लकार, मध्यम पुरुष, बहुवचन।

विशेष—(१) छन्द—त्रिष्टुप्।

असेन्या वः पणयो वचां
स्यनिषध्यास्तन्वः सन्तु पापीः ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था
बृहस्पतिर्व उभया न मृलात् ॥६॥

प्रसङ्ग—......पणियों की धमकी को सुनकर सरमा देवशुनी कहती है—

अन्वयः—पणयः ! वः वचांसि असेन्या, पापीः तन्वः अयानिषव्याः सन्तु; वः पन्थाः एतवै अधृष्टः अस्तु; बृहस्पति वः उभया न मृलात् ।

संस्कृत व्याख्या—हे पणयः ! वः=युष्माकम् वचांसि=वचनानि, असेन्या =शस्त्राघातानर्हाणि, पापीः=पापाः, तन्वः=देहाः, अनिषव्याः=इष्वनर्हाणि सन्तु =भवन्तु, वः=युष्माकम्, पन्थाः=मार्गः, एतवै=गन्तुम्, अधृष्ट=असमर्थः, अस्तु =भवतु; बृहस्पतिः=इन्द्रप्रेरितः तत्पुरोहितः, वः=युष्माकम्, उभया=उभय-विधान् पूर्वोक्तान् देहान्, न मृलात्=न सुखयेत् दयां न कुर्यादिति भावः ।

हिन्दी अनुवाद—हे पणियो ! तुम्हारे वचन शस्त्र के आघातों से सुरक्षित पापाचरण करने वाले शरीर बाणों के निशाने के अविषय हों तथा तुम्हारा मार्ग पार करने के आयोग्य हो किन्तु बृहस्पति तुम्हारे दोनों प्रकार के वचन एवं शरीर पर दया नहीं करेंगे ।

शब्दार्थ—असेन्या=शस्त्र के आघातों से सुरक्षित, अनिषव्याः=बाणों के निशाने के अविषय, पापीः=पापाचरण करने वाले, तन्वः=शरीर, अधृष्ट=अयोग्य, एतवै=पार करने को, उभया=दोनों प्रकार से, न मृलात्=दया नही करेंगे ।

व्याकरण—

असेन्या—सेना + यत्=सेन्या । न सेन्या=असेन्या ।
एतवै—इण् धातु से तुमन् के अर्थ में वैदिक तवै प्रत्यय ।
मृलात् मृड् धातु, लेट्लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन ।
विशेष—(१) छन्द—त्रिष्टुप् ।

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्व-
मिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः ।
गोकामा मे अच्छदयन्यदाय-
मपात इत पणयो वरीयः ॥१०॥

प्रसङ्ग—पणियों ने सरमा को बहिन मानकर गायों में से हिस्सा देने की जब पेशकश की तो सरमा देवशुनी उन्हें कह रही है—

अन्वयः—अहम् भ्रातृत्वम् न वेद, नो स्वसृत्वम् (वेद) । इन्द्रः घोराः अङ्गिरसश्च विदुः । यत् आयम्, मे गोकामाः अच्छदयन् । अतः पणयः । वरीयः अप इत ।

संस्कृत व्याख्या – अहम् = सरमा देवशुनी, भ्रातृत्वम् = बन्धुत्वम् न वेद = न जानामि, नो = नहि, स्वसृत्वम् = भगिनीत्वम् जानामि। इन्द्रः, घोराः = भयानकाः अङ्गिरसश्च, विदुः = जानन्ति। यत् = यदा, आयम् = अहमागच्छम् (तदा इन्द्रादयः) मे = मह्यम्, गोकामाः = गाः कामयमानाः, अच्छदयन् = प्रतीताः अभवन्। अतः हेपणयः! यूयम् वरीयः = विस्तृतं स्थानम्, अप इत = अपगच्छत।

हिन्दी अनुवाद—मैं न तो भाईपना जानती हूँ और न ही बहिनपना। इन्द्र और भयानक अङ्गिरस (ये सब) जानते हैं। जब मैं आई थी तब (इन्द्र आदि) मुझे गायों की कामना करते हुए प्रतीत हुए थे। इसलिए हे पणियों! किसी विस्तृत स्थान पर भाग जाओ।

शब्दार्थ—वेद = जानती हूँ, भ्रातृत्वम् = भाईपना, नो = नहीं, स्वसृत्वम् = बहिनपना, विदुः = जानते हैं, घोराः = भयानक, गोकामाः = गायों की कामना करने वाले, मे = मेरे लिए, अच्छदयन् = प्रतीत हुए थे, अतः = इसलिए, वरीयः = विस्तृत = स्थान को, अपइत = भाग जाओ।

व्याकरण—

अच्छदयन्—छद् धातु, लङ्लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

इत—इण् धातु, लोट्लकार, मध्यमपुरुष, बहुवचन।

आयम्—अय् या इण् धातु, लङ्लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन।

वरीयः—उरु + ईयसुन्। उरु को वर् आदेश।

विशेष—(१) सायण और ग्रिफिथ ने 'अत' का अर्थ 'इसलिए' किया है। पीटर्सन ने 'अत' का अर्थ 'इससे' किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

हिरण्यगर्भ सूक्त

(ऋग्वेद १०/१२१) (मेरठ, कान०, रुहेल०, बुन्देल०, आग०, गढ०)

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिष यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के हिरण्यगर्भ सूक्त से उद्धृत किया गया है। इस सूक्त के द्वारा ऋग्वेद में एकदेववाद की स्थापना का प्रयास दृष्टिगोचर होता है। इस सूक्त का ऋषि हिरण्यगर्भ तथा देवता के संज्ञक प्रजापति माने गये हैं। इसमें हिरण्यगर्भ प्रजापति की स्तुति होने के कारण हिरण्यगर्भ को देवता मानना अधिक उचित प्रतीत होता है।

अन्वयः—य आत्मदाः बलदाः, यस्य प्रशिषंम् विश्वे उपासते, यस्य देवाः। यस्य छाया अमृतम्, यस्य मृत्युः। कस्मै देवाय हविषा विधेम।

संस्कृत व्याख्या—यः=देवः; आत्मदाः=आत्मनां=दाता, बलदाः=बलस्य दाता, यस्य प्रशिषम्=आज्ञाम्, विश्वे=सर्वे, उपासते=सेवन्ते, यस्य प्रशिषम् देवाः=देवताः उपासते। यस्य छाया=प्रतिबिम्बम्, अमृतम्=सुधा, यस्य छाया मृत्यु=मरणम्। कस्मै देवाय=प्रजापति देवाय यद्वा कस्मै देवविशेषाय, हविषा=हविद्रव्येन विधेम=परिचरेम।

हिन्दी अनुवाद—जो प्राण देने वाला, बल देने वाला है। जिसकी आज्ञा सभी मानते हैं, जिसकी आज्ञा देवता मानते हैं जिसकी छाया अमृत है, जिसकी छाया मृत्यु है, ऐसे प्रजापति देवता की हम हवि से पूजन करें (अथवा किस देवता की हवि से पूजन करें)।

शब्दार्थ—आत्मदाः=प्राण देने वाला, बलदाः=बल देने वाला, विश्वे=सभी, उपासते=मानते हैं, प्रशिषम्=आज्ञा को, कस्मै देवाय=प्रजापति देवता के लिए अथवा किस देवता के लिए, हविषा=हवि से, विधेर=पूजन करें।

व्याकरण—

उपासते—उप+आस् धातु, लट्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

प्रशिषम्—प्र उपसर्ग पूर्वक शास् धातु से क्विप् प्रत्यय से निष्पन्न प्रशिष् शब्द से द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

आत्मदाः—आत्मन्+दा+क्विप्।

बलदाः—बल+दा+क्विप्।

विशेष—(१) सायण ने 'आत्मदा' का अर्थ आत्माओं को देने वाला या शोधन करने वाला, उव्वट ने स्वयं को देने वाला तथा पीटर्सन ने प्राणों को देने वाला किया है।

(२) उव्वट और महीधर ने अपने भाष्य 'में यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः' का अर्थ किया है—'जिसकी कृपा अमृत (मोक्ष) का कारण है और अकृपा मृत्यु (आवागमन) का कारण है।

(३) कस्मै देवाय हविषा विधेम—कस्मै शब्द की चार व्याख्यायें की गई हैं।

१. हिरण्यगर्भ प्रजापति को छोड़कर हम किस देवता की पूजन करें अर्थात् हम हिरण्यगर्भ प्रजापति की पूजा करें।

२. हम अनिर्वचनीयस्वरूप प्रजापति का पूजन करें।

३. सुख रूप प्रजापति का पूजन करें।

४. 'क' नाम वाले प्रजापति का पूजन करें।

(४) प्रस्तुत मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है। इस छन्द में चार पाद होते हैं तथा प्रत्येक पाद में ग्यारह-ग्यारह वर्ण होते हैं। इसमें कुल ४४ वर्ण होते हैं।

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमे प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—इमे हिमवन्तः यस्य महित्वा आहुः, रसया सह समुद्रः यस्य, इमाः प्रदिशः यस्य बाहू यस्य (महित्वा आहुः) कस्मै देवया हविषा विधेम ।

संस्कृत व्याख्या—इमे=एते, हिमवन्तः=पर्वता, यस्य=देवस्य, महित्वा=माहात्म्यम् आहुः=कथयन्ति, रसया=नद्या सह, समुद्रः=सागरः यस्य=देवस्य, इमाः=एताः, प्रदिशः=प्रधानाः ककुभः प्राच्यादयः, बाहू=भुजाः, अत्र वचनव्यत्ययः, आग्नेयप्रभृतयः चतस्र. कोणदिशः यस्य माहात्म्यं कथयन्ति । तस्मै कस्मैदेवाय=प्रजापतिदेवाय, हविषा=पुरोडाशेन, विधेम=परिचरेम ।

हिन्दी अनुवाद—ये पर्वत जिसकी महिमा को कहते हैं, नदियों के साथ समुद्र जिसकी (महिमा को कहते हैं), ये प्रधान दिशायें तथा भुजाओं के समान कोण दिशायें जिसकी (महिमा को कहते हैं, उस प्रजापति देवता की हम हवि से पूजन करें (या किस देवता की हवि से पूजन करें) ?

शब्दार्थ—हिमवन्तः=पर्वत, महित्वा=महिमा को, रसया सह=नदियों के साथ, आहुः=कहते हैं, प्रदिशः=पूर्व आदि चार दिशायें, बाहू=भुजाओं के समान आग्नेय आदि कोण दिशायें, कस्मैदेवाय=प्रजापति देवता के लिए या किस देवता के लिए, हविषा=हवि से, विधेम=पूजन करें।

व्याकरण—

हिमवन्तः—हिम+मतुप् । प्रथमा विभक्ति का एकवचन ।

रसया—रसा (रस्+अच् प्रत्यय मतुप् अर्थ में) शब्द से तृतीया विभक्ति एकवचन ।

विशेष—(१) उव्वट और महीधर ने 'यस्येमे हिमवन्तः' का अर्थ 'ये हिमालय आदि पर्वत जिसकी महिमा से हैं । पीटर्सन इसका अर्थ किया है—'ये हिमवान् पर्वत उसके हैं' ।

(२) छन्द की दृष्टि से 'यस्येमे' का उच्चारण 'यस्य इमे' तथा 'यस्येमाः' का उच्चारण 'यस्य इमाः' करना चाहिये ।

(३) छन्द—त्रिष्टुप्।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा
येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वय:—येन द्यौ उग्रा: येन पृथिवी च दृलहा, येन स्व: स्तभितम, येन नाक:, य: अन्तरिक्षे रजस: विमान:। कस्मै देवाय हविषा विधेम।

संस्कृत व्याख्या—येन=देवेन, द्यौ:=अन्तरिक्षम्, उग्रा:=शक्तिसम्पन्नम्, येन पृथिवी=भूमि: च दृल्हा=स्थिरीकृता, येन स्व:=स्वर्गलोक:, स्तभितम्=स्तब्धं कृतम्, ये नाक:=सूर्य: स्तभित:, य:=देव:, अन्तरिक्षे=आकाशे, रजस:=लोकस्योदकस्य वा, विमान:=निर्माता प्रमापको वा अस्ति, तस्मै कस्मै देवाय=प्रजापतिदेवाय, कस्मै देवविशेषाय वा, हविषा=पुरोडाशेन, विधेम=परिचरेम।

हिन्दी अनुवाद—जिसने द्युलोक को शक्तिसम्पन्न किया और पृथिवी को स्थिर किया, जिसने स्वर्गलोक को स्थिर किया, जिसने सूर्य को स्थिर किया। जो अन्तरिक्ष में जलों का निर्माता या लोकों को नापने वाला है, उस प्रजापति देवता की हवि से पूजन करें (या किस देवता की हवि से पूजन करें)।

शब्दार्थ—द्यौ:=द्युलोक, उग्रा=शक्तिसम्पन्न, दृल्हा=स्थिर किया, स्व:=स्वर्गलोक, स्तभितम्=स्थिर किया है, नाक:=सूर्य, अन्तरिक्षे=आकाश में, रजस:=जलों का या लोकों का, विमान:=निर्माता या नापने वाला, कस्मै देवाय=प्रजापति देवाय के लिए या किस देवता के लिए, हविषा=हवि से, विधेम=पूजन करें।

व्याकरण—

स्तभितम्—स्तम् धातु से क्त प्रत्यय।

विमान:—वि+मा+ल्युट्।

दृल्हा—दृह+क्त+टाप्।

उग्रा—उद्+गिर्+क+टाप्।

विशेष—(१) पीटर्सन ने उग्रा को द्यौ: का विशेषण माना है तथा उग्रा का अर्थ महान् किया है। महीधर और उव्वट ने उग्रा का अर्थ 'वर्षा करने वाली' किया है।

(२) छन्द की दृष्टि से 'स्व' को 'सुव:' उच्चारण करना चाहिये।

(३)—छन्द—त्रिष्टुप्।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने
अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वय:—अवसा तस्तमाने रेजमाने क्रन्दसी यम् मनसा अभिएच्छेताम्, यत्र अधिसूर: उदित: विभति कस्मै देवाय हविषा विधेम।

संस्कृत व्याख्या—अवसा=रक्षणे न हेतुना, तस्तभाने=स्थिरीकृते, रेजमाने=दीप्यमाने, क्रन्दसी=द्यावापृथिव्यौ, यम्=देवम्, मनसा=हृदयेन, अभ्यैक्षेताम्=अभिपश्येताम्, यत्राधि=यस्मिन् देवे प्रजापतौ वा सूरः=सूर्यः, उदित=समुदयं लब्धः सन्, विभति=प्रकाशते, तस्मै कस्मै देवाय=प्रजापतिदेवाय कस्मै देवविशेषाय वा, हविषा=पुरोडाशेन, विधेम=परिचरेम।

हिन्दी अनुवाद—रक्षा के निमित्त से स्थिर हुए तथा चमकते हुए द्युलोक और पृथिवीलोक जिसको मन से देखते हैं, जहाँ पर सूर्य उचित होकर प्रकाशित होता है, उस प्रजापति देवता के लिए हम हवि से पूजन करें (या किस देवता के लिए हवि से पूजन करें ?)।

शब्दार्थ—क्रन्दसी=द्युलोक और पृथिवीलोक, अवसा=रक्षा के निमित्त, तस्तमाने=स्थिर हुए, अभ्यैक्षेताम्=देखते हैं, मनसा=हृदय से, रेजमाने=चमकते हुए, सूरः=सूर्य, विभाति=प्रकाशित होता है, कस्मै देवाय=प्रजापति देवता के लिए या किस देवविशेष के लिए, हविषा=हवि से, विधेम=पूजन करें।

व्याकरण—

तस्तमाने—स्तभ्+कानच्+टाप्→तस्तभाना। प्रथमावि०, द्विवचन।

रेजमाने—राज+कानच्+टाप्→ रेजमाना। प्रथमाविभक्ति, द्विवचन।

अभ्यैक्षेताम्—अभि+ईक्ष्, लङ्लकार, प्रथम पुरुष, द्विवचन।

विशेष—(१) यहाँ मैक्समूलर क्रन्दसी की अपेक्षा रोदसी पाठ करता अधिक उपयुक्त मानते हैं।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या
यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—मा न हिंसीत्, यः पृथिव्याः जनिता, यः वा सत्यधर्मा दिवम् जजान। यः च चन्द्राः बृहतीः अपः जजान, कस्मै देवाय हविषा विधेम।

संस्कृत व्याख्या—(सः प्रजापतिः) नः=अस्मान्, मा हिंसीत्=मा बाधताम्, यः पृथिव्याः=भूमेः, जनिता=जनकः, यः वाः सत्यधर्मा=अवितथधर्मः, दिवम्=अन्तरिक्षम्, जजान=उत्पादयामास। यः च चन्द्राः=आह्लादिनीः, बृहतीः=महतीः, अपः=जलानि, जजान=जनयामास, तस्मै कस्मै देवाय=प्रजापतिदेवाय कस्मै देवविशेषाय वा, हविषा=पुरोडाशेन, विधेम=परिचरेम।

हिन्दी अनुवाद—(वह प्रजापति) हमें कष्ट न दे या हिंसा न करे, जो पृथिवी को उत्पन्न करने वाला है और जिस सत्यनियम वाले ने द्युलोक को उत्पन्न

किया है। जिसने आह्लादकारी महान् जलों को उत्पन्न किया है, ऐसे प्रजापति देवता की हवि से पूजन करें (या किस देवता की हवि से पूजन करें ?)।

शब्दार्थ—मा हिंसीत्=हिंसा न करे या कष्ट न दे, जनिता=उत्पन्न करने वाला, चन्द्राः=आह्लादकारी, अप,=जलों को, जजान=उत्पन्न किया, बृहतीः=महान्, कस्मै देवाय=प्रजापति देवता के लिए या किस देवता के लिए, हविषा=हवि से, परिचरेम=पूजन करें।

व्याकरण—

माहिंसीत्—हिंस् धातु, लुङ्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन। माङ् के योग होने से अट् के आगम का अभाव।

जनिता—जन्+तृच्। प्रथमा विभक्ति, एकवचन।

जजान—जन् धातु, लिट्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष—छन्द—त्रिष्टुप्।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो
विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु
वयं स्याम पतयो रयीणाम ॥१०॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—प्रजापते ! त्वत् अन्यः एतानि विश्वा जातानि ता न परि बभूव। यत्कामाः ते जुहुमः तत् नः अस्तु। वयम् रयीणाम् पतयः स्याम।

संस्कृत व्याख्या—हे प्रजापते ! त्वदन्यः=त्वत्तोऽपरः, एतानि=विद्यमानानि, विश्वा=विश्वानि, जातानि=प्राणिजातानि, ता=तानि, न परिबभूव=परितः न व्याप्नुवन्ति। यत्कामाः=यत्फलं कामयमानाः वयम्, ते=तुभ्यम्, जुहुमः=हवींषि प्रयच्छामः, तत्=फलम्, नः=अस्माकम्, अस्तु=भवतु। वयम्=स्तोतारः, रयीणाम्=धनानाम्, पतयः=स्वामिनः, स्याम=भवेम।

हिन्दी अनुवाद—हे प्रजापति देव ! तुम्हारे अतिरिक्त कोई जो सम्पूर्ण प्राणी हैं, उनको चारों तरफ से व्याप्त नहीं कर सकते हैं। जिसकी कामना करते हुए हम तुम्हारे लिए हवियों से हवन करते हैं, वह हमें हो। हम धनों के स्वामी हो जावें।

शब्दार्थ—त्वदन्यः=तुम्हारे अतिरिक्त विश्वा=सम्पूर्ण, जतानि=प्राणी, न परिबभूव=चारों तरफ से व्याप्त नहीं किये हैं या कर सकते हैं, यत्कामाः=जिसकी कामना करते हुए, ते=तुम्हारे लिए, जुहुमः=हवन करते हैं, पतयः=स्वामी, रयीणाम्—धनों के, स्याम=हो जावें।

व्याकरण—

जुहुमः—हु धातु, लट्लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन।

विश्वा—विश्वानि (द्वि० वि० बहुवचन) का वैदिक रूप ।

ता—तानि (द्वितीया विभक्ति बहुवचन तत्शब्द) का वैदिक रूप ।

विशेष—(१) पीटर्सन ने 'जुहुमः, का अर्थ 'पुकारते हैं, तथा सायण ने 'हवि प्रदान करते हैं' किया है ।

(२) प्रस्तुत मन्त्र का संहिता पाठ और पदपाठ एक समान है ।

(३) छन्द की दृष्टि से 'त्वदेतान्यनो' का 'त्वदेतानि अन्यो' तथा 'स्याम' का 'सियाम' उच्चारण करना चाहिये ।

(४) छन्द—त्रिष्टुप् ।

वाक् सूक्त

(ऋग्वेद १०/१२५) (कान० मेरठ, गढ़, आगरा)

अहं सोममाहनसं बिभर्म्य-

हं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते

सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के वाक् सूक्त से लिया गया है । इस सूक्त की ऋषि वाक् तथा देवता परमाता है । ऋग्वेद में वाणी (वाक्) की देवी के रूप में स्तुति की गई है । वाणी ब्रह्म का ही एक रूप है । प्रकृत सूक्त में वाणी के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपों का वर्णन किया गया है । वाणी ने अपना वर्णन स्वयं किया है ।

अन्वयः—अहम् आहनसम् सोमम् बिभर्मि, अहम् त्वष्टारम् पूषणम् उत भगम् (बिभर्मि) । अहम् हविष्मते सुप्राव्ये सुन्वते यजमानाय द्रविणम् दधामि ।

संस्कृत व्याख्या—अहम्=वाक्, आहनसम्=शत्रूणामाहन्तारं यद्वा अभिषवणयम्, सोमम्=सोमदेवम् यद्वा सोमरसम्, बिभर्मि=धारयामि; अहम्=वाक्, त्वष्टरम्=निर्माणकर्तारं देवम्=पोषकदेवम् उत=अपि च, भगम्=ऐश्वर्यदेवम्, बिभर्मि=धारयामि; अहम्=वाक्, हविष्मते=हविर्युक्ताय हविर्प्रदायकाय वा, सुप्राव्यं=देवानां शोभनं हविर्प्रापयित्रे, सुन्वते=सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय, द्रविणम्=धनम् दधामि=बिभर्मि ।

हिन्दी अनुवाद—मैं अभिषवण करने योग्य सोमरस को अथवा शत्रुओं को मार डालने वाले सोम देवता को धारण करती हूँ; मैं (निर्माण करने वाले देवता) त्वष्टा को (पोषण करने वाले देवता) पूषा को और (ऐश्वर्य के देवता) भग को

धारण करती हूँ। मैं हवि प्रदान करने वाले, देवताओं तक सुन्दर हवि को पहुँचाने वाले और सोमरस का अभिषवण करने वाले यजमान के लिए धन धारण करती हूँ।

शब्दार्थ—आहनसम्=अभिषवण करने योग्य अथवा शत्रुओं को मार डालने वाले, सोमम्=सोमरस को अथवा सोम देवता को, बिभर्मि=धारण करती हूँ, दधामि=धारण करती हूँ, द्रविणम्=धन, हविष्मते=हवि प्रदान करने वाले, सुप्राव्ये=देवताओं तक सुन्दर हवि पहुँचाने वाले, सुन्वते=सोमरस को निचोड़ने वाले, यजमानाय=यजमान के लिए।

व्याकरण—

आहनसम्—आ+हन्+असुन् (वैदिक प्रत्यय)। द्वितीया वि० एकवचन।

बिभर्मि—भृ धातु, लट्कार, उत्तमपुरुष, एकवचन।

सुप्राव्ये—सु+प्र+अव्+इ प्रत्यय। चतुर्थी विभक्ति का एकवचन।

विशेष—(१) सायण ने सुप्राव्ये का अर्थ देवताओं के लिए हवि पहुँचाने वाला, पीटर्सन ने धार्मिक तथा रॉथ ने उत्साही या बहुत सतर्क किया है।

(२) छन्द की दृष्टि से 'बिभर्म्यहम्' को बिभर्मि अहम्' और 'सुप्राव्ये' को सुप्राविये' उच्चारण करना चाहिये।

(३) छन्द—जगती छन्द है। इस छन्द में प्रत्येक पाद में बारह-बारह वर्ण होते हैं। किन्तु इसके प्रथम पाद में एक वर्ण की कमी बनी रहती है।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—अहम् राष्ट्री, वसूनाम् संगमनी, चिकितुषी, यज्ञियानाम् प्रथमा (अस्मि)। ताम् भूरिस्थात्राम् भूरि आवेशयन्तीम् मा देवाः पुरुत्रा वि अदधुः।

संस्कृत व्याख्या—अहम्=वाक्, राष्ट्री=सर्वस्य जगतः शासिका, वसूनाम्=धनानाम्, संगमनी=प्रापयित्री, चिकितुषी=ज्ञानवती, यज्ञियानाम्=यज्ञार्हाणाम्, प्रथमा=मुख्या अस्मि। ताम्=एवं गुणसम्पन्नाम्, भूरिस्थात्राम्=अनेकरूपेषु अवतिष्ठमानाम्, भूरि आवेशयन्तीम्=बहूनि प्राणिजातानि आत्मानं प्रवेशयन्तीम्, मा=माम्, देवाः=अमर्त्याः, पुरुत्रा=बहुषु स्थानेषु, विअदधुः=विदधति।

हिन्दी अनुवाद—मैं सम्पूर्ण संसार का शासन करने वाली, धनों को प्राप्त कराने वाली, सभी को जानने वाली तथा यज्ञ के योग्य लोगों में प्रमुख हूँ। अनेक रूपों में अवस्थित तथा बहुत सी वस्तुओं को अपने में प्रविष्ट करने वाली मुझको देवताओं ने अनेक स्थानों पर धारण किया है।

शब्दार्थ—राष्ट्री=सम्पूर्ण संसार की शासिका, संगमनी=प्राप्त कराने वाली, वसूनाम्=धनों की, चिकितुषी=जानने वाली, प्रथमा=प्रमुख, यज्ञियानाम्=यज्ञ के योग्य लोगों में, वि अदधुः=धारण किया है, पुरुत्रा=अनेक स्थानों पर, भूरिस्थात्राम्=अनेक रूपों में अवस्थित, भूरि आवेशयन्तीम्=बहुत सी वस्तुओं को अपने में प्रविष्ट करने वाली।

व्याकरण—

चिकितुषी—कित्+क्वसु+ङीप्।

अदधु—धा, धातु, लङ्लकार, प्रथमपुरुष, बहुवचन।

आवेशयन्तीम्—आ+विश्+णिच्+शतृ+ङीप्=आवेशयन्ती द्वितीया विभक्ति का एकवचन।

राष्ट्री—राज्+ष्ट्रन्=राष्ट्र+ङीप्=राष्ट्री।

संगमनी—सम्+गम्+ल्युट्→अन+ङीप्।

विशेष—(१) राँथ एवं ग्रासमान में 'चिकितुषी यज्ञियानाम्' का अर्थ 'देवताओं को सर्वप्रथम जानने वाली, किया है।

(२) छन्द के अनुरोध से 'व्यदधुः' का 'विअदधुः' तथा 'भूर्याविशयन्तीम्' का 'भूरि आवेशयन्तीम्' उच्चारण करना चाहिये।

(३) छन्द—त्रिष्टुप्।

अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—अहम् एव स्वयम् देवेभिः उत मानुषेभिः जुष्टम् इदम् वदामि। यत् कामये तम् तम् उग्रम् कृणोमि, तम् ब्रह्माणम्, तम् ऋषिम्, तम् सुमेधाम्।

संस्कृत व्याख्या—अहम्=वाक्, एव स्वयम् देवेभिः=देवैः, उत=अपि च, मानुषेभिः,=मनुष्यैः, जुष्टम्=सेवितम्, इदम्=ब्रह्मात्मकम्, वदामि=उपदिशामि। यत्=यं पुरुषम् रक्षितुम्, कामये=वाञ्छामि, तं तम्=तं तं पुरुषम्, उग्रम्=श्रेष्ठम्, कृणोमि=करोमि, तम्=पुरुषम्, ब्रह्माणम्=सुष्टारम्, तम् ऋषिम्=अतीन्द्रियदृष्टारम्, तं सुमेधाम्=सुबुद्धिम् (कृणोमि=करोमि)।

हिन्दी अनुवाद—मैं ही स्वय देवताओं और मनुष्यों के द्वारा सेवित इस वचन को कहती हूँ। जिसको चाहती हूँ उस-उस व्यक्ति को श्रेष्ठ बना देती हूँ। उसे ब्रह्मा, उसे ऋषि और उसे सुबुद्धि बना देती हूँ।

शब्दार्थ—जुष्टम्=सेवित, देवेभिः=देवताओं के द्वारा, उत=और, मानु-

षेभिः=मनुष्यों के द्वारा, यामये=चाहती हूँ, उग्रम्=श्रेष्ठ, कृणोमि=कर देती हूँ या बना देती हूँ, ब्रह्माणम्=सृष्टि करने वाला, ऋषिम्=मन्त्रदृष्टा, सुमेधाम्=सुन्दर बुद्धि वाला।

व्याकरण—

जुष्टम्—जुष+क्त।

देवेभिः—देवैः के स्थान पर प्रयुक्त तृतीया विभक्ति बहुवचन का वैदिक रूप।

मानुषेभिः—मानुषैः के स्थान पर प्रयुक्त तृतीया विभक्ति बहुवचन का वैदिक रूप।

कृणोमि—कृ धातु, लट्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

सुमेधाम्—सुमेधस् शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन का वैदिक रूप। लोक में सुमेधसम् रूप बनेगा।

विशेष—(१) छन्द—त्रिष्टुप्।

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणो-
म्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—अहम् ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवै रुद्राय धनुः आतनोमि। अहम् जनाय समदम् कृणोमि। अहम् द्यावापृथिवी आविवेश।

संस्कृत व्याख्या—अहं ब्रह्मद्विषे=ब्राह्मणानां वेदानां वा द्वेषकर्त्रे, शरवे=त्रिपुरनिवासिने असुराय, हन्तवै=हन्तुम्, रुद्राय=त्रिपुरविजयकाले रुद्राय (अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी), धनुः=चापम्, आतनोमि=ज्यया आततं करोमि। अहम्=वाक् जनाय=स्वजनाय, समदम्=संग्रामम् कृणोमि=करोमि। अहम् द्यावापृथिवी=द्युलोके पृथिवीलोके च, आविवेश=व्याप्तवती प्रविष्टवती वास्मि।

हिन्दी अनुवाद—मैं ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले या वेदों से द्वेष करने वाले हिंसक असुरों को मारने के लिए रुद्र के धनुष पर प्रत्यञ्चा चढाती हूँ। मैं अपने लोगों के लिए संग्राम करती हूँ। मैं द्युलोक और पृथिवी लोक में व्याप्त हूँ।

शब्दार्थ—रुद्राय=(त्रिपुरविजय के समय) रुद्र देवता के लिए, धनुः=धनुष को, आतनोमि=प्रत्यञ्चा से युक्त करती हूँ, ब्रह्मद्विषे=ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले या वेदों से द्वेष करने वाले, शरवे=हिंसक असुरों के लिए, हन्तवै=मारने को, जनाय=(अपने) लोगों के लिए, समदम्=युद्ध, कृणोमि=करती हूँ, द्यावा-पृथिवी=द्युलोक और पृथिवीलोक में, आविवेश=व्याप्त हो रही हूँ।

व्याकरण—

तनोमि—तन् धातु, लकार, उत्तमपुरुष, एकवचन।

ब्रह्मद्विषे—ब्रह्म + द्विष + क्विप्। चतुर्थी विभक्ति, एकवचन।

रुद्राय—यहाँ पर षष्ठी के अर्थ में वैदिक व्यत्यय से चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

हन्तवै—हन् धातु से तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में 'तुमर्थे सेनसे०—' इत्यादि सूत्र से वैदिक तवै प्रत्यय।

कृणोमि—कृ धातु, लट्लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

आविवेश—आ + विश, लिट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन।

शरवे—शृ + उणादि का उ प्रत्यय = शरु। शरु शब्द से चतुर्थी विभक्ति के एकवचन का रूप।

समदम्—'समानं माद्यन्ति अस्मिन्' इस अर्थ में स उपपद मद् धातु से क्विप् प्रत्यय होकर समद् रूप बनता है। उसका द्वितीया विभक्ति के एकवचन का रूप।

विशेष—(१) पीटर्सन के अनुसार ब्रह्म का अर्थ ईश्वर और शरु का अर्थ बाण है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

७

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्
मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु वि-
श्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि।

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—अहम् पितरम् अस्य मूर्धन् सुवे। मम योनिः समुद्रे अप्सु अन्तः। ततः विश्वा भुवना अनु वितिष्ठे, उत अमूम् द्याम् वर्ष्मणा उप स्पृशामि।

संस्कृत व्याख्या—अहम् = वाक्, पितरम् = पितृरूपं द्युलोकम्, अस्य = परमात्मनः, मूर्धन् = शिरसि उपरि वा, सुवे = जनयामि। ('आत्मनः आकाशः संभूतः' इति श्रुतिः—तैत्तिरीयारण्यक ८।१)। तन्तुषु पटः इव परमकारणभूते परमात्मनि आकाशादिकं जातं दिश्यते। मम = वाचः, योनिः = कारणम्, समुद्रे = सागरे परमात्मनि वा, अप्सु = जलेषु व्यापनशीलासु बुद्धिषु वा, अन्तः = मध्ये अस्ति। ततः = तस्मात्स्थानात्, विश्वा = सर्वाणि, भुवना = प्राणिजातानि, अनु = अनुप्रविश्य, वितिष्ठे = विशेषेण विविधरूपेण वा तिष्ठामि, उत = अपि च, अमूम् = विप्रकृष्टस्थाने अवस्थितम् द्याम् = द्युलोक स्वर्गलोकं वा, वर्ष्मणा = मदीयेन शिरसा शरीरेण वा, उप स्पृशामि = स्पर्शं करोमि।

हिन्दी अनुवाद—मैं पिता द्युलोक को इस परमात्मा के शिर पर (या ऊपर) उत्पन्न करती हूँ। मेरा कारण या मूल स्थान समुद्र में जलों के मध्य में (अथवा परमात्मा में व्यापनशील बुद्धियों में) है। उससे (उसी स्थान से) सम्पूर्ण लोकों में प्रविष्ट होकर विशेष रूप से स्थित होती हूँ और इस द्युलोक का अपने शिर से (या शरीर) से स्पर्श करती हूँ।

शब्दार्थ—पितरम्=पिता (द्युलोक) को, अस्य मूर्धन्=इस परमात्मा के शिर पर या ऊपर, सुवे=उत्पन्न करती हूँ, योनिः=कारण या मूलस्थान, समुद्रे=समुद्र में या परमात्मा में, अप्सु=जलों में या व्यापनशील बुद्धियों में, अन्त=मध्या में, ततः=उस स्थान से, वितिष्ठे=विशेष रूप से स्थित होती हूँ, भुवना=लोकों में. विश्वा=सम्पूर्ण, अनु=प्रवेश करके, द्याम्=द्युलोक या स्वर्गलोक को, वर्ष्मणा=शिर से या शरीर से, उपस्पृशामि=स्पर्श करती हूँ।

व्याकरण—

सुवे—सु धातु से आत्मनेपद लट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन।

मूर्धन—वैदिक व्यत्यय से विभक्ति का लोप वाला सप्तमी विभक्ति के एकवचन का रूप। लोक में आत्मनि रूप बनेगा।

वितिष्ठे—वि+स्था, लट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

वर्ष्मणा—वृष्+मनिन्=वर्ष्मन्। तृतीया विभक्ति का एकवचन।

विश्वा—द्वितीया विभक्ति बहुवचन विश्वानि का वैदिक रूप।

भुवना—द्वितीया विभक्ति बहुवचन भुवनानि का वैदिक रूप।

स्पृशामि—स्पृश् धातु, लट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) छन्द—त्रिष्टुप्।

(२) वर्ष्म का अर्थ सायण ने शरीर, पीटर्सन ने शिर किया है।

नासदीय सूक्त

(ऋग्वेद १०/१२९) (रुहेल० बुन्देल, आगरा, गढ़, अवध)

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥२॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के नासदीयसूक्त से उद्धृत है। इस सूक्त को सृष्ट्युत्पत्ति सूक्त भी कहा जाता है। इसके ऋषि परमेष्ठी प्रजापति

और देवता सृष्टि स्थिति एवं प्रलय के करने वाले परमात्मा हैं। इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति विषयक विचार धारा का प्रतिपादन किया गया है।

अन्वयः—तर्हि मृत्युः न आसीत्, न अमृतम्। रात्र्याः अह्नः प्रकेतः न आसीत् तत् आनीत् अवातम् स्व धया एकम्। ह तस्मात् अन्यत् किञ्चन न आस न परः।

संस्कृत व्याख्या—तर्हि=तस्मिन् प्रलयकाले, मृत्युः=मरणम्, न आसीत्, न=नहि अमृतम्=अमरणम् आसीत्। रात्र्याः=रात्रेः, अह्नः=दिवसस्य च, प्रकेतः=ज्ञानम, न आसीत्। तत्=ब्रह्म, आनीत्=प्राणयुक्तम् श्वासयुक्तम् वा, अवातम्=क्रियाशून्यम् वायुरहितम् वा, स्वधया=मायया स्वशक्त्या वा युक्तम्, एकम्=अद्वितीयम् आसीत्। हेति निश्चये, तस्मात्=ब्रह्मणः, अन्यत्=अपरम्, किञ्चन=किमपि, न आस=बभूव, न=नहि, परः=परस्तात् किमपि आसीत्।

हिन्दी अनुवाद—उस समय मृत्यु नही थी और न ही अमरता (मृत्यु का अभाव) थी। रात्रि और दिन का ज्ञान नहीं था। वह ब्रह्म प्राण से युक्त (या श्वास लेने वाला), क्रिया से शून्य (या वायु से रहित), माया से युक्त (या अपनी शक्ति युक्त) और अद्वितीय था। उस ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ भी नहीं था तथा उससे परे भी कुछ नहीं था।

शब्दार्थ—मृत्युः=मरण, अमृतम्=मृत्यु का अभाव, तर्हि=तब (उस प्रलय-काल में), रात्र्या=रात्रि का, अह्नः=दिन का, प्रकेतः=ज्ञान, आनीत्=(१) प्राण से युक्त (२) श्वास लेने वाला, अवातम्=(१) क्रिया से शून्य (२) वायु से रहित, स्वधया=(१) माया से युक्त (२) अपनी शक्ति से, एकम्=अद्वितीय, अन्यत्=अतिरिक्त या भिन्न, किंचन=कुछ भी।

व्याकरण—

प्रकेतः—प्र+कित्+घञ्।

अह्नः—अहन् शब्द, षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

रात्र्याः—रात्रि शब्द, षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

विशेष—(१) मैक्डानल ने आनीत् का अर्थ श्वास लेने वाला, अवातम् का अर्थ वायु से रहित तथा स्वधाय का अर्थ अपनी शक्ति से किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

तम आसीत्तमसा गुल्हमग्रे-
ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहित यदासीत्
तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥३॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत।

अन्वयः—अग्रे तमसा गूल्हम् तमः आसीत्। अप्रकेतम् इदम् सर्वम् सलिलम् आः। यत् आभु तुच्छ्येन अपिहितम् आसीत्। तत् एकम् तपसः महिना अजायत्।

संस्कृत व्याख्या—अग्रे=सृष्टेः पूर्वम् जगत्, तमसा=अन्धकारेण, गूल्हम् आवृतम्, तमः=तमोभावरूपं मूलकारणम् आसीत्। अप्रकेतम्=अज्ञायमानम्, इसम् सर्वम्=एतत्, सकलं जगत्, सलिलम्=जलम्, आः=आसीत्। यत्=जगत्, आभु=व्यापकम्, तुच्छयेन=तुच्छाभावरूपाज्ञानेन, अपिहितम्=आच्छादितम् आसीत्। तत् एकम्=तत् एकीभूतम् जगत्, तपसः=संकल्परूपस्य तपसः महिना =माहात्म्येन, अजायत=समुत्पन्नम्।

हिन्दी अनुवाद—सबसे पहले (सृष्टि की उत्पत्ति के पहले प्रलयकाल में) जगत् अन्धकार से आच्छन्न तमोमात्र रूप मूलकारण था। अज्ञायमान यह सम्पूर्ण (जगत्) जल था। जो व्यापक एवं तुच्छ अभाव रूप अज्ञान से आच्छादित था। एकीभूत यह जगत् (ईश्वर के) संकल्परूप तप की महिमा से उत्पन्न हुआ।

शब्दार्थ—तमः=तमो भाव रूप मूलकारण, तमसा=अन्धकार से, गूल्हम् =आच्छादित, अग्रे=पहले (सृष्टि की उत्पत्ति के पहले प्रलयकाल में), अप्रकेतम् =अज्ञायमानु सलिलम्=पानी, तुच्छयेन=तुच्छ अभाव रूप मूल अज्ञान से, अपिहितम्=आच्छादित, आभु=व्यापक, तपसः=संकल्परूप तप की, महिना= महिमा से, अजायत=उत्पन्न हुआ।

व्याकरण—

गूल्हम्—गुह्+क्त।

तुच्छयेनः—तुच्छय (तुच्छ का वैदिक रूप) शब्द से तृतीया वि० एकवचन।

अपिहितिम्—अपि+धः+क्त।

महिना—महि शब्द, तृतीया विभक्ति, एकवचन। वैदिक रूप।

विशेष—(१) मैक्डानल ने तपसः महिना का अर्थ 'गर्मी की शक्ति से' किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्
कुत आ जाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना-
था को वेद यत आबभूव ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—कः अद्धा वेद, कः इह प्रवोचत्, इयम् विसृष्टिः कुतः कुतः आजाता। देवाः अस्य विसर्जनेन अर्वाक्। अथ कः वेद यतः आ बभूव।

संस्कृत व्याख्या—कः=कः जनः, अद्धा=वास्तविकरूपेण, वेद=जानाति,

कः=कः पुरुषः, इह=अस्मिन् लोके, प्रवोचत्=प्रब्रूयात्, इयम्=एषा दृश्यमाना, विसृष्टिः=विविधरूपात्मका सृष्टिः, कुतः=कस्मात् निमित्तकारणात् कुतः=कस्मात् उपादान कारणात् च, आ जाता=समुत्पन्ना। देवाः=अमर्त्याः अस्य=सृष्टेः, विसर्जनेन=सृष्ट्युत्पन्नत्वेन, अर्वाक्=पश्चाद्वर्तिनः सन्ति। अथ=एवं सति, कः=कः नरः, वेद=जानाति, यतः=यस्मात् कारणात्, आबभूव=प्रादुर्भूता अस्ति।

हिन्दी अनुवाद—वास्तविक रूप से कौन जानता है। कौन इस संसार में कह सकता है कि यह विविध रूपों वाली सृष्टि कैसे-कैसे (किस उपादान कारण और किस निमित्त कारण से) उत्पन्न हुई है। देवता लोग इस सृष्टि की उत्पत्ति से बाद के हैं। अतएव कौन जानता है, जिस कारण से सृष्टि समुत्पन्न हुई है।

व्याकरण—

विसृष्टिः—वि+सृज्+क्तिन्।

आजाता—आ+जन्+क्त+टाप्।

प्रवोचत्—प्र+ब्रू (वच्) धातु, लङ्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन का वैदिक रूप।

विशेष—(१) छन्द—त्रिष्टुप्।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न।
योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन्-
त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—इयम् विसृष्टिः यतः आबभूव यदि वा दधे यदि वा न। अस्य यः अध्यक्षः परमे व्योमन् अङ्ग! सः वेद यदि वा न वेद।

संस्कृत व्याख्या—इयम्=एषा दृश्यमाना, विसृष्टिः=विविधरूपात्मका सृष्टिः यतः=यस्मात्कारणात्, आबभूव=प्रादुर्भूता, सोऽपि यदि वा दधे=धारयति, यदि वा न। अस्य=संसारस्य, योऽध्यक्षः=यः ईश्वरः स्वामी वा, परमे=उत्कृष्टे, व्योमन्=अन्तरिक्षलोके, सत्यरूपे आकाशवत् निर्मले स्वप्रकाशे वा प्रतिष्ठितः, अङ्ग! हे श्रोतारः! सः=ईश्वरः, वेद=जानाति, यदि वा=ईश्वरादन्यः, न वेद=न जानाति।

हिन्दी अनुवाद—यह विविध रूपात्मक सृष्टि जिस कारण से उत्पन्न हुई है, वही इसको धारण किये हुए है, अन्य कोई नहीं। इस जगत् का जो स्वामी (ईश्वर) उत्कृष्ट अन्तरिक्ष लोक में या सत्य स्वरूप आकाश के समान निर्मल स्वप्रकाश में प्रतिष्ठित है, हे श्रोताओं! वही इसे जानता है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता है।

शब्दार्थ—विसृष्टि:=विविध प्रकार की सृष्टि, यत:=जिस कारण से, आबभूव=उत्पन्न हुई है, यदि वा दधे=वहीं इसे धारण करता है, यदि वा न (दधे)=इसके अतिरिक्त अन्य कोई धारण नही करता है, अस्य=इस संसार का, य: अध्यक्ष:=जो स्वामी या ईश्वर, परमे=उत्कृष्ट, व्योमन्=अन्तरिक्षलोक में या सत्यस्वरूप आकाश के समान निर्मल स्वप्रकाश में, अङ्ग=हे श्रोताओं (सम्बोधन के लिए प्रयुक्त एक अव्यय पद), वेद=जानता है, यदि वा न वेद=अतिरिक्त कोई नहीं जानता है।

व्याकरण—

दधे—धा धातु, लट्लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

व्योमन्—विभक्तिलोप वाला (वैदिक व्यत्यय से) सप्तमी विभक्ति के एकवचन का रूप।

विशेष—(१) मैक्डानल ने दधे का अर्थ बनाया, व्योमन् का अर्थ अन्तरिक्ष में तथा अध्यक्ष का अर्थ खोजने वाला किया है। सायण ने दधे का अर्थ धारण किया, व्योमन् का अर्थ आकाश के समान निर्मल स्वप्रकाश में तथा अध्यक्ष का अर्थ ईश्वर किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

श्रद्धा सूक्त

(ऋग्वेद ७/५४) (बुन्देल, मेरठ B. A. Hons)

श्रद्धयाग्नि: समिध्यते, श्रद्धया हूयते हवि:।

श्रद्धां भगस्य मूर्धनि, वचसा वेदयामसि ॥१॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल के श्रदा सूक्त से उद्धृत किया गया है। इस सूक्त की देवता श्रद्धा पुरुषगत अभिलाषा विशेष का नाम है। इस सूक्त् की ऋषिका कामगोत्रजा श्रद्धा है।

अन्वय:—श्रद्धया अग्नि: समिध्यते। श्रद्धया छवि: हूयते। भगस्य मूर्धनि श्रद्धाम् वचसा आ वेदयामसि।

संस्कृत व्याख्या—श्रद्धया=पुरुषगतयाभिलाषया, अग्नि:=गार्हपत्यादि:, समिध्यते=संदीप्यते। श्रद्धया पुरुषागताभिलाषया, हवि:=पुरोडाशादि:, हूयते=अग्नौ प्रक्षिप्यते। भागस्य=भाग्यस्य, मूर्धनि=प्रधानस्थाने स्थितां, श्रद्धाम्=श्रद्धा देवताम्, वचसा=स्तुत्या, आवेदयामसि=अभित: प्रार्थयाम:।

हिन्दी अनुवाद—श्रद्धा से अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है, श्रद्धा से हवि की आहुति की जाती है। भाग्य की प्रधान श्रद्धा की हम स्तुति के द्वारा प्रार्थना करते हैं।

शब्दार्थ—श्रद्धया=श्रद्धा से, समिध्यते=प्रज्ज्वलित की जाती है, हूयते=आहुति की जाती है, भगस्य=भाग्य को, मूर्धनि=प्रधान, वचसा=स्तुति से, आ वेदयामसि=प्रार्थना करते हैं।

व्याकरण—

समिध्यते—सम्+इन्ध्, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

आवेदयामसि - आ+विद्, लट् लकार, उत्तमपुरुष, बहुवचन का वैदिक रूप।

विशेष—(१) छन्द—अनुष्टुप्।

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—श्रद्धे! ददतः प्रियम्, श्रद्धे दिदासतः प्रियम्, भोजेषु यज्वसु प्रियम्, मे इदम् ऊदितम् प्रियम् कृधि।

संस्कृत व्याख्या—हे श्रद्धे! हविर्प्रयच्छतः, प्रियम्=अभीष्टफलम्, हे श्रद्धे दिदासतः—दातुमिच्छतः, प्रियम्=अभीष्टफलम्, भोजेषु=भोगार्थिषु, यज्वसु=कृतयज्ञेषु, अभीष्टफलम्, मे=मम्, उदितम् प्रियम्=अभीष्टफलम्, कृधि=कुरु।

हिन्दी अनुवाद—हे श्रद्धा! देने वाले का प्रिय करो, हे श्रद्धा! देने की इच्छा करने वाले का प्रिय करो। भोगार्थियों का और यजमानों का प्रिय करो। मेरे इस कथन का प्रिय करो।

शब्दार्थ—ददतः=देने वाले का, दिदासतः=दिलाने वाले का, भोजेषु=भोगार्थियों का, यज्वसु=यजमानों का, मे=मेरे, उदितम्=कथन का, कृधि=करो।

व्याकरण—

ददतः—दा+शतृ, षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

दिदासतः—दा+सन्+शतृ, षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

उदितम्—वद्+क्त।

कृधि—कृ धातु, लुङ् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) छन्द—अनुष्टुप्।

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकंमुदितं कृधि ॥३॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—देवाः यथा उग्रेषु असुरेषु श्रद्धाम् चक्रिरे, एवम् भोजेषु यज्वसु (श्रद्धाम् कृधि), अस्माकम् उदितम् कृधि।

संस्कृत व्याख्या—देवाः=अमराः, यथा=येन प्रकारेण, उग्रेषु=प्रचण्डेषु असुरेषु=दैत्येषु, श्रद्धां चक्रिरे=श्रद्धां कृतवन्तः, एवम्=अनेनैव प्रकारेण, भोजेषु=भोगार्थिषु, यज्वसु यजमानेषु, श्रद्धां कृधि=श्रद्धां कुरु। अस्माकम्=अस्मत्सम्बन्धिनाम्, उदितम्= उक्तम्, कृधि पूर्णं कुरु।

हिन्दी अनुवाद—देवताओं ने जिस प्रकार भयानक असुरों में श्रद्धा को किया था, उसी प्रकार भोगार्थियों और यजमानों में श्रद्धा करो। हमारे कथन को पूर्ण करो।

शब्दार्थ—अग्रेषु=प्रचण्ड, चक्रिरे=किया था, भोजेषु=भोगार्थियों में, यज्वसु=यजमानों मे, उदितम्=कथन को, कुरु=पूर्ण करो।

व्याकरण—

चक्रिरे—कृ धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

विशेष—छन्द—अनुष्टुप्।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—वायुगोपाः देवाः यजमानाः च श्रद्धाम् उपासते; हृदय्यया आकूत्या श्रद्धाम् उपासते। श्रद्धया वसु विन्दते।

संस्कृत व्याख्या—वायुगोपाः=वायुना रक्षिताः देवाः यजमानाश्च=अमराः कृतयज्ञाश्च, श्रद्धाम् उपासते=प्रार्थयन्ते। हृदय्यया=हार्दिक्या, आकूत्या=संकल्पक्रियया, श्रद्धाम् प्रार्थयन्ते। श्रद्धया वसु=धनम्, विन्दते=लभते।

हिन्दी अनुवाद—वायु से रक्षित देवता और यजमान अपने हार्दिक संकल्प से श्रद्धा की उपासना करते हैं। श्रद्धा से ही धन प्राप्त करता है।

शब्दार्थ—वायुगोपाः=वायु से रक्षित, उपासते=उपासना करते हैं या प्रार्थना करते हैं, हृदय्यया आकूत्या=हार्दिक संकल्प से, विन्दते=प्राप्त करता है, वसुम्=धन को।

व्याकरण—

विन्दते—विद् धातु, आत्मनेपद, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

वायुर्गोपाः—वायुः गोपा येषां ते तादृशाः (बहुव्रीहि)

विशेष—छन्द—अनुष्टुप्।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—प्रातः श्रद्धाम् हवामहे, मध्यन्दिनं परि श्रद्धाम् (हवामहे) सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धाम् (हवामहे)। श्रद्धे ! इह नः श्रत् धापय।

संस्कृत व्याख्या—प्रातः···पूर्वाह्णे, श्रद्धां हवामहे=आह्वयामः, मध्यन्दिनम् परि=मध्यह्ने, अत्र परि इति कर्मप्रवचनीयम्, श्रद्धां हवामहे, सूर्यस्य=भानोः, निम्रुचि=अस्ते जाते, श्रद्धां हवामहे। श्रद्धे। इह=अस्मिन् स्थाने लोके वा, नः= अस्मान्, श्रत्=श्रद्धया, धापय=संयोजय।

हिन्दी अनुवाद—प्रातः काल श्रद्धा को पुकारते हैं, दोपहर में श्रद्धा को पुकारते हैं तथा सूर्य के डूब जाने पर श्रद्धा को पुकारते हैं। हे श्रद्धा ! यहाँ पर हमें श्रद्धा से युक्त करो।

शब्दार्थ—हवामहे=पुकारते हैं, प्रातः=सवेरे, मध्यन्दिनम्=दोपहर, सूर्यस्य निम्रुचि=सूर्य के डूब जाने पर, श्रद्धापय=श्रद्धा से युक्त करो।

व्याकरण—

हवामहे—हु धातु, लट् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन।

निम्रुचि—निम्रुक् शब्द से सप्तमी विभक्ति, एकवचन।

धापय—धा+णिच् (पुक्का आगम), लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

विशेष—छन्द अनुष्टुप्।

शिवसंकल्प सूक्त

(शुक्लयजुर्वेद अ० ३४) (अवध, गढ, रूहेल० कान०)

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥१॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र शुक्लयजुर्वेद के ३४ वें अध्याय के शिवसंकल्प सूक्त से लिया गया है। इसमें मन के शान्तसंकल्प होने की कामना की गई है। इसके देवता मन हैं तथा ऋषि आदित्य याज्ञवल्क्य हैं।

अन्वयः—यत् जाग्रतः दूरम् उदैति, यत् दैवम्, तत् उ सुप्तस्य तथैव एति, यत् दूरङ्गमम् यत् ज्योतिषाम् एकम् ज्योतिः, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

संस्कृत व्याख्या—यत्=मनः, जाग्रतः=जागरणं कुर्वतः पुरुषस्य, दूरम्= चक्षुराद्यगोचरम्, उदैति=उद्गच्छति। यत्=मनः, दैवम्=आत्मादर्शकम्, तत् उ= अपि च, सुप्तस्य=सुप्तस्य पुरुषस्य, तथैव=पुनरपि, एति=आगच्छति, यत्=मनः, दूरङ्गमम्=अतीतानागतवर्तमानपदार्थानां ग्राहकः, यत्=मनः, ज्योतिषाम्=प्रकाश-

कानां श्रोत्रात्रिज्ञानेन्द्रियाणाम्, एकम्=एकमात्रम्, ज्योतिः=प्रकाशः, तत् मे=मम, मनः=अन्तः करणम्, शिवसंकल्पम्=कल्याण संकल्पम्, अस्तु=भवतु।

हिन्दी अनुवाद—जो जाग्रत अवस्था में (नेत्रादि की अपेक्षा) दूर चला जाता है, जो आत्मा का दर्शन करने वाला है, जो सुषुप्ति अवस्था में उसी प्रकार लौट आता है, जो दूर जाने वाला है और जो ज्ञानेन्द्रियों का एकमात्र प्रकाशक है, वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो।

शब्दार्थ—जाग्रतः=जाग्रत अवस्था में, उपैति=चला जाता है, दैवम्=आत्मा का दर्शन करने वाला, सुप्तस्य=सोते हुए की अवस्था में, एति=आ जाता है, दूरङ्गमम्=दूर तक जाने वाला, ज्योतिषाम्=प्रकाशक ज्ञानेन्द्रियों में, एकं ज्योतिः=एकमात्र प्रकाश, मे=मेरा, शिवसंकल्पः=कल्याणकारी संकल्प वाला।

व्याकरण—

उदैति—उद्+आ+इण् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

जाग्रतः—जागृ धातु+शतृ प्रत्यय=जाग्रत्, षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

विशेष—(१) छन्द—त्रिष्टुप्।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानाम्
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—येन आपसः धीराः मनीषिणः यज्ञे विदथेषु कर्माणि कृण्वन्ति, यत् अपूर्वम्, (यत्) यक्षम्, (यत्) प्रजानाम् अन्तः, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

संस्कृत व्याख्या—येन=मनसा, अपसः=कर्मनिष्ठाः, धीराः=धीमन्तः, मनीषिणः=मनीषिणः=मेधाविनः, यज्ञे=क्रतौ, विदथेषु=पूजनेषु च, कर्माणि कृण्वन्ति=कर्माणि कुर्वन्ति, यत्=मनः, अपूर्वम्=इन्द्रियेभ्यः पूर्वम, यक्षम्=यज्ञंकर्तुं शक्तम् अथवा पूजनीयम्, प्रजानाम्=प्राणिनाम्, अन्तः=देहमध्ये आस्ते, तत् मे=मम, मनः=अन्तः करणम्, शिवसंकल्पम्=कल्याणसंकल्पम्, अस्तु=भवतु।

हिन्दी अनुवाद—जिस मन के द्वारा कर्मनिष्ठ बुद्धिमान् मनीषी पुरुष यज्ञ में तथा पूजन कर्म करते हैं, जो सर्वप्रथम उत्पन्न होता है, जो यज्ञ करने में समर्थ या पूजनीय है तथा जो प्राणियों के अन्दर रहता है, वह मेरा मन शुभसंकल्प वाला हो।

शब्दार्थ—अपसः=कर्मनिष्ठ, मनीषिणः=मेधावी मनुष्य, कृण्वन्ति=करते हैं, विदथेषु=ज्ञान होने पर या पूजनों में, धीराः=बुद्धिमान्, अपूर्वम्=सबसे पहले उत्पन्न, यक्षम्=यज्ञ करने में समर्थ या पूजनीय, प्रजानाम्=प्राणियों के, अन्तः=अन्दर, शिवसंकल्पम्=कल्याणकारी विचारों वाला।

व्याकरण—

कृण्वन्ति—कृ धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष का एकवचन, वैदिक रूप।

विशेष—(१) महीधर ने विदथेषु का अर्थ किया है—'ज्ञान हो जाने पर'। सामान्यतः विद्वानों ने, इसका अर्थ 'पूजाओं में' किया है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मि-
न्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम्
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वय:—यस्मिन् ऋचः साम, यस्मिन् यजूंषि रथनाभौ अराः इव प्रतिष्ठताः, यस्मिन् प्रजानाम् सर्वम् चित्तम् ओतम्, तत् मे मन, शिवसंकल्पम् अस्तु।

संस्कृत व्याख्या—यस्मिन्=मनसि, ऋचः साम प्रतिष्ठितानि, यस्मिन् यजूंषि रथनाभौ=रथचक्रमध्ये, आराः=अराः, इव=यथा, प्रतिष्ठिताः, यस्मिन्=मनसि, प्रजानाम्=प्राणिनाम्, सर्वम्=सर्वपदार्थविषयकम्, चित्तम्=ज्ञानम्, ओतम्=निहितम्, तत् मे=मम, मनः=अन्तः करणम्, शिवसंकल्पम्=कल्याणसंकल्पम्, अस्तु=भवतु।

हिन्दी अनुवाद—जिस (मन) में ऋचायें, सामगान तथा यजुष् रथ की नाभि (चक्र के मध्य भाग) में अरों के समान प्रतिष्ठित हैं, जिस (मन) में प्राणियों का सभी पदार्थविषयक ज्ञान निहित है, वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्पों वाला हो।

शब्दार्थ—ऋचः=ऋचायें, साम=सामगान, यजूंषि=यजुष्, प्रतिष्ठिताः=प्रतिष्ठित हैं, रथनाभौ=रथ के पहिये के मध्य भाग में, अराः इव=अरों के समान, चित्तम्=ज्ञानम्, सर्वम्=सर्वपदार्थ विषयक, ओतम्=निहित, प्रजानाम्=प्राणियों का, शिवसंकल्पम्=कल्याणकारी संकल्पों वाला।

व्याकरण—

प्रतिष्ठिताः—प्रति+स्था+क्त। प्रथमा विभक्ति, बहुवचन।

ओतम्—आ+अव्+क्त। व् का उ सम्प्रसारण तथा गुण।

विशेष—(१) न्याय की ज्ञान सिद्धान्त मीमांसा के अनुसार सम्पूर्ण ज्ञान पहले मन में आता है। वहां संकल्प के पश्चात् आत्मा तक पहुँचता है। 'यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम्' के द्वारा इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन मिलता है।

(२) छन्द—त्रिष्टुप्।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्या
न्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—यत् सुसारथिः अश्वान् इव, अभीशुभिः वाजिनिः इव मनुष्यान् नेनीयते, यत् हृत्प्रतिष्ठम्, अजिरम्, जविष्ठम्, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु ।

संस्कृत व्याख्या—यत्=मनः, सुसारथिः=शोभनः यन्ता, अश्वान् इव=वाजिनः इव, अभीशुभिः=प्रग्रहै,, वाजिनः=अश्वान् इव, मनुष्यान्=मर्त्यान्, नेनीयते=अत्यर्थम् इतस्ततः नयति । यत्=मनः, हृत्प्रतिष्ठम्=हृदये स्थितम्, अजिरम्=जरारहितम्, जविष्ठम्=अतिशयं वेगवत्, तत् मे=मम=मनः, शिवसंकल्पम्=शुभसंकल्पम् अस्तु ।

हिन्दी अनुवाद—जो मन, सुन्दर सारथि जैसे घोड़ों को तथा लगामों के द्वारा जैसे घोड़ों को वैसे ही मनुष्यों को वश में रखता है या इधर-उधर ले जाता है, जो हृदय में स्थित है, जो जराहीन है और जो अत्यन्त वेगवान् है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो ।

शब्दार्थ—सुषारथिः=सुन्दर सारथि (रथवाहक), अश्वान् इब=घोड़ों की तरह, अभीशुभिः=लगामों के द्वारा, वाजिनः=घोड़ों को, इव=समान, नेनीयते=अत्यधिक इधर-उधर ले जाता है या वश में रखता है, हृत्प्रतिष्ठम्=हृदय में स्थित, अजिरम्=जरा से रहित, जविष्ठम्=अत्यन्त वेगवान्, शिवसंकल्पम्=शुभ संकल्प वाला ।

व्याकरण—

नेनीयते—यङन्त नी धातु से लट् लकार (आत्मनेपद), प्रथम पुरुष, एकवचन ।

अभीशुभिः—अभीशु शब्द से तृतीया विभक्ति का बहुवचन ।

हृत्प्रतिष्ठम्—हृदि प्रतिष्ठम् हृत्प्रतिष्ठम् (सप्तमी तत्पुरुष) ।

विशेष—(१) मन्त्र का भाव यह है कि जिस प्रकार अच्छा सारथि घोड़ों को चाबुक के द्वारा नियन्त्रण में रखता है, उसी की प्रेरणा से घोड़े प्रवृत्त होते हैं, जिस प्रकार लगामों के द्वारा घोड़े नियन्त्रित रहते हैं उसी प्रकार मन मनुष्यों को नियन्त्रण में रखता है, उसी की प्रेरणा से मनुष्य प्रवृत्त होते हैं । इस प्रकार का हृदय में विद्यमान रहने वाला, कभी भी वृद्ध न होने वाला तथा अत्यन्त वेगवान् मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो ।

(२) छन्द—त्रिष्टुप् ।

पृथिवी सूक्त

(अथर्ववेद १२/१) (अवध, गढ़० रूहेल० कान०)

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्याः

यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।

या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्

सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

प्रसङ्ग—प्रस्तुत मन्त्र अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के पृथिवी सूक्त से उद्धृत किया गया है। इस सूक्त में ऋषि ने पृथिवी से रक्षा की प्रार्थना की है। इस सूक्त के ऋषि अथर्वा तथा देवता पृथिवी है।

अन्वयः—यस्याः पृथिव्याः चतस्रः प्रदिशः, यस्याम् अन्नम् कृष्टयः संबभुवुः, या प्राणत् एजत् बहुधा बिभर्ति, सा भूमिः नः गोषु अन्ने अपि दधाति।

संस्कृत व्याख्या—यस्याः पृथिव्याः = भूमेः, चतस्रः = चतुसंख्याकाः, प्रदिशः = प्राच्याद्या दिशः, यस्याम् = पृथिव्याम्, अन्नम् = व्रीह्यादिकम्, कृष्टयः = प्राणिनः, संबभूवुः = समुत्पद्यन्ते स्म। या = पृथिवी, प्राणत् = प्राणधारिणम्, एजत् = विचरन्तम्, बहुधा = बहुप्रकारेण, बिभर्ति = धारयति, सा = तादृश, भूमिः = पृथिवी, नः = अस्मभ्यम्। गोषु अन्ने च = गाः अन्नञ्च दधातु = ददातु। अत्र प्रथमार्थे सप्तमी।

हिन्दी अनुवाद—जिस पृथिवी की चार दिशायें हैं, जिस पृथिवी पर अन्न तथा प्राणिसमूह हुए हैं तथा जो पृथिवी प्राणधारियों तथा विचरण करने वालों को अनेक प्रकार से धारण करती है, वह पृथिवी हमारे लिये गायें तथा अन्न प्रदान करे या गायों तथा अन्न में धारण करे।

शब्दार्थ—चतस्रः दिशः = पूर्व आदि चार दिशायें, कृष्टयः = प्राणों को धारण करने वाले, संबभूवुः = हुए हैं, बिभर्ति = धारण करती है, बहुधा = अनेक प्रकार से, प्राणत् = प्राणधारी को, एजत् = विचरण करने वाले को, नः = हमारे लिए, गोषु अन्ने दधातु = गायों तथा अन्न में धारण करे या गायों एवं अन्न को प्रदान करे।

व्याकरण—

कृष्टयः—कृष् + क्तिन् = कृष्टि। प्रथम विभक्ति, बहुवचन।

संबभूवु—सम् + भू, लिट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन।

विशेष—(१) छन्द—जगती।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा

हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।

वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्नि

मिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—विश्वंभरा, वसुधानी, प्रतिष्ठा, हिरण्यवक्षा, जगतः निवेशनी, इन्द्रऋषभा भूमिः वैश्वानरम् अग्निम् बिभ्रती नः द्रविणे दधातु ।

संस्कृत व्याख्या—विश्वंभरा = जगत्पालयित्री, वसुधानी = धनधारयित्री, प्रतिष्ठा = सर्वाश्रयभूता, हिरण्यवक्षा = स्वर्णवक्षा जगतः = संसारस्य निवेशनी = आश्रयभूता, इन्द्रऋषभा = इन्द्रेण रक्षिता, भूमिः = पृथिवी, वैश्वानरम् = सर्वजनहित-कारिणमतेन्नामकम्, अग्निम् = वह्निम्, बिभ्रती = दधती, नः = अस्मभ्यम् । द्रविणे = धने, दधातु = धारयतु अथवा द्रविणे = धनम्, दधातु = ददातु । अत्र प्रथमार्थे सप्तमीविभक्तिप्रयोगः ।

हिन्दी अनुवाद—सबका पालन करने वाली, धनों को धारण करने वाली, सभी का आश्रय रूप, सोने के वक्षस्थल वाली, संसार को विश्राम देने वाली और इन्द्र द्वारा रक्षित पृथिवी वैश्वानर अग्नि को धारण करती हुई हमारे लिये धन में धारण करे या प्रदान करे ।

शब्दार्थ—विश्वंभरा = सबका पालन करने वाली, वसुधानी = धनों को, धारण करने वाली, प्रतिष्ठा = सबका आश्रय रूप, जगतः = संसार को, निवेशनी = विश्राम देने वाली, इन्द्रऋषभा = इन्द्र द्वारा रक्षित, हिरण्यवक्षा = सोने के वक्ष-स्थल वाली, वैश्वानरम् अग्निम् = सब लोगों का कल्याण करने वाली वैश्वानर अग्नि को, बिभ्रति = धारण करती हुई, नः = हमें, द्रविणे दधातु = धन में धारण (प्रतिष्ठित) करे या धन प्रदान करे ।

व्याकरण—

विश्वभरा—विश्वम् भरतीति या सा विश्वंभरा । विश्व + भृ + खच् ।

वसुधानी—वसु + धा + ल्युट् + ङीप् ।

प्रतिष्ठा—प्रति + स्था + अङ् + टाप् ।

बिभ्रति—भृ + शतृ + ङीप् ।

विशेष—(१) छन्द—जगती ।

यस्यामापः परिचरा समानी-
रहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो
दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥९

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—यस्याम् परिचराः समानीः आपः अहोरात्रे अप्रमादम् क्षरन्ति, सा भूरिधारा भूमिः नः पयः दुहाम्, अथो वर्चसा उक्षतु ।

संस्कृत व्याख्या—यस्याम् = पृथिव्याम्, परिचराः = परितः स्यन्दमानाः, समानीः = समानी = सार्वभौमिकाः, आपः = जलानि नद्यः वा, अहोरात्रे = रात्रि-

न्दिवम्, अप्रमादम् = अनालस्यम्, क्षरन्ति = प्रवहन्ति, सा = तादृशा, भूरिधारा = बहुप्रवाहशीला, भूमिः = पृथिवी, नः अस्मभ्यम्. पयः = जलम्, दुहाम् = दुग्धाम्, अथो = अनन्तरम्, वर्चसा = तेजसा, उक्षतु, = सिञ्चतु।

हिन्दी अनुवाद—जिस पर चारों तरफ विचरण करने वाले, या बहने वाले सार्वभौमिक जल (नदियां) दिनरात अप्रमादि होकर बहते रहते हैं, वह अनेक धाराओं वाली पृथिवी हमें जल का दोहन करे और तेज से सिंचित करे।

शब्दार्थ—आपः = जल, परिचराः = चारों तरफ विचरण करने वाले या बहने वाले, समानीः = सार्वभौमिक, अहोरात्रे = दिनरात, अप्रमादम् = आलस्यरहित होकर, क्षरन्ति = बहते रहते हैं, भूरिधारा = अनेक धाराओं वाली, नः = हमें, पयः = जल, दुहाम् = दुहे या दोहन करे, अथो = इसके बाद, वर्चसा = तेजसा, उक्षतु = सिञ्चित करे।

व्याकरण—

क्षरन्ति—क्षर् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

परिचराः—परि + चर् + ट = परिचर। प्रथमा विभक्ति बहुवचन।

अहोरात्रे—अहश्च रात्रिश्च इति अहोरात्र. तस्मिन् अहोरात्रे।

दुहाम्—दुह् धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष एकवचन का वैदिक रूप।

विशेष—(१) छन्द—परा अनुष्टुप्।

यत्ते मध्यं पृथिवी यच्च नभ्यं
यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि न पवस्व
माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—पृथिवि ! यत् ते मध्यम् यत् च नभ्यम् याः ऊर्जः ते तन्वः संबभूवुः तासु नः धेहि, अभि नः पवस्व, भूमिः माता अहम् पृथिव्याः पुत्रः, पर्जन्यः नः पिता, स उ नः पिपर्तु।

संस्कृत व्याख्या—हे पृथिवि! यत् ते = तव, मध्यम् = मध्यम् स्थानम्, यत् च नभ्यम् = सुगुप्तं नाभि स्थानम् याः ऊर्जः = शक्तयः पोषकान्नरसाः वा, त = तव, तन्वः = शरीरात्, संबभूवुः = समुत्पन्नाः, तासु = शक्तिषु पोषकान्नरसेषु वा, न = अस्मान्, धेहि = धारय प्रतिष्ठापय वा, अभि नः = अस्मान्, पवस्व = प्रपादय पावय वा, भूमिः = पृथिवी, माता = जननी, अहम् पृथिव्या = भूमेः, पुत्रः = तनयः, पर्जन्यः = देवविशेषः न अस्माकम, पिता = जनकः अस्ति, सः पर्जन्यः, नः = अस्मान्, पिपर्तु = पालयतु।

हिन्दी अनुवाद—हे पृथिवि ! जो तुम्हारा मध्य स्थान है और जो नाभि-स्थान है तथा जो शक्तियाँ या पोषक अन्नरस तुम्हारे शरीर से उत्पन्न हुए हैं,

उनमें हमें धारण (प्रतिष्ठित) करो (अथवा वे हमें प्रदान करो)। उन्हें हमारी ओर प्रवाहित करो (अथवा हमारी रक्षा करो)। भूमि मेरी माता है और मैं भूमि का पुत्र हूँ। पर्जन्य देव हमारा पिता है, वह हमारी रक्षा करे।

शब्दार्थ—ते=तुम्हारा, मध्यम=मध्यस्थान, नभ्यम्=नाभिस्थान, ऊर्जः=शक्तियाँ या पोषक अन्नरस, तन्वः=शरीर से, संबभूवुः=उत्पन्न हुए हैं, तासु नः धेहि=उनमें हमें प्रतिष्ठित करो या वे हमें प्रदान करो, अभिनः पवस्व=हमारी ओर प्रवाहित करो या हमारी रक्षा करो, पिपर्तु=रक्षा करे।

व्याकरण—

सबभूवु—सम्+भू धातु, लिट् लकार, प्रथम पुरुष बहुवचन।

पवस्व—पू धातु, आत्मनेपद लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

पिपर्तु— पृ धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

धेहि—धा धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' कथन के द्वारा मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया गया है।

(२) 'पर्जन्यः पिता' कहकर मेघों से वृष्टि द्वारा रक्षा की कामना की गई है।

(३) पञ्चपदा शक्वरी छन्द।

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्यात्
योऽभिदासान्मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वारि ॥१४॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—पृथिवीः यः न द्वेषत्, यः पृतन्यात्, यः मनसा यः वधेन अभिदासात् भूमे ! पूर्वकृत्वरि! तन् नः रन्धय।

संस्कृत व्याख्या—हे पृथिवि ! यः=जनः, नः=अस्मान्, द्वेषत्=द्वेषं कुर्यात्, यः=जनः, प्रतन्यात्=शत्रुतामाचरेत्, यः मनसा=हृदयेन, यः वधेन=शस्त्रेण, अभिदासात्=अभिभवेत्, भूमेः=हे पृथिवि !, पूर्वकृत्वरि– हे पूर्वकृत्यवाति ! तम्=तादृशं जनम्, नः=अस्मभ्यम्, रन्धय=नाशय।

हिन्दी अनुवाद—हे पृथिवि ! जो हमसे द्वेष करे, जो शत्रुता का आचरण करे, जो मन से एवं जो शास्त्र से अभिभूत करे या दबावे, हे पृथिवी ! हे पूर्व कृत्यों वाली, उस व्यक्ति को हमारे लिये नष्ट कर दो।

शब्दार्थ—द्वेषत्=द्वेष करे, प्रतन्यात्=शत्रुता का आचरण करे, वधेन=शस्त्र के द्वारा, अभिदासात्=अभिभूत करे या दबावे, रन्धय=नष्ट कर दो, पूर्वकृत्वारि !=हे पूर्व कृत्यों वाली।

व्याकरण—

द्वेषत्—द्विष् धातु, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

पृतन्यात्—पृतन्य धातु, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

अभिदासात्—अभि + दभ् धातु, लोट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन।

पूर्वकृत्वरि—पूर्व + कृ + क्विप् + वनिप् + ङीप्। सम्बोधन (प्रथमा विभक्ति) एकवचन।

रन्धय—रध् धातु, लोट् लकार, मध्यम् पुरुष, एकवचन।

विशेष—(१) छन्द—विराट् महाबृहति।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां
ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणाधृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥१७॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत्।

अन्वयः—विश्वस्वम् ओषधीनाम् मातरम् धर्मणा धृताम् ध्रुवाम् पृथिवीम् शिवाम् स्योनाम् भूमिम् विश्वहा अनुचरेम्।

संस्कृत व्याख्या—विश्वस्वम्=सर्वस्वरूपाम् सर्वोत्पादयित्रीम् वा, ओषधीनाम्=ओषधीनाम् वनस्पतीनाम् वा, मातरम्=जननीम्, धर्मणा=नियमव्रतादिना, धृताम्=हिताम्, ध्रुवाम्=दृढाम्, पृथिवीम्=विस्तृताम्, शिवाम्=कल्याणकारिणीम्, स्योनाम्=सुखदायिनीम्, भूमिम्=पृथिवीम्, विश्वहा=प्रतिदिनम्, अनुचरेम =पूजयेम् पूजयामः इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवाद—सबको उत्पन्न करने वाली, ओषधियों की माता, धन के द्वारा धारण की गई, दृढ़, चौड़ी, कल्याणकारिणी तथा सुखदायिनी पृथ्वी की हम प्रतिदिन पूजा करते हैं।

शब्दार्थ—विश्वस्वम्=सबको उत्पन्न करने वाली, ओषधीनाम्=ओषधियों या वनस्पतियों की, मातरम्=जननी, धर्मणा=धर्म के द्वारा, धृताम्=धारण की गई, ध्रुवाम्=दृढ़, पृथिवीम्=विस्तृत या चौड़ी, शिवाम्=कल्याण करने वाली, स्योनाम्=सुख प्रदान करने वाली, भूमिम्=पृथिवी की, विश्वहा=प्रतिदिन, अनुचरेम्=(हम) पूजा करते हैं।

व्याकरण—

विश्वस्वम्—विश्व + सू + क्विप्। द्वितीया विभक्ति एकवचन।

अनुचरेम्—अनु + चर्, विधिलिङ् लकार, उत्तम पुरुष, एकवचन।

ओषधीनाम्—ओषधि (ओष + धा + कि) शब्द से षष्ठी विभक्ति का बहुवचन।

धर्मणा—धर्म शब्द से तृतीया विभक्ति एकवचन का वैदिक रूप।

धृताम्—धृ+क्त+टाप् । द्वितीया विभक्ति एकवचन ।

स्योणाम्—सिव् धातु से निष्पन्न स्योन शब्द का स्त्रीलिङ्ग में द्वितीया विभक्ति के एकवचन का रूप ।

विशेष—(१) छन्द—विराट् महाबृहती ।

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीची-
र्यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।
स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु
मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१॥

प्रसङ्ग—पूर्ववत् ।

अन्वयः—भूमेः याः ते प्राचीः याः उदीचीः याः ते अधरात् याः च पश्चात् प्रदिशः ताः चरते मह्यम् स्योनाः भवन्तु । भुवने शिश्रियाणः मा नि पप्तम् ।

संस्कृत व्याख्या—हे भूमेः याः ते = तव, प्राचीः=प्राच्यः, यः उदीचीः= उदीच्यः, याः ते अधरात्=दक्षिणाः, याः च पश्चात्=पश्चिमाः, प्रदिशः=प्रधानाः ककुभः सन्ति ताः चरते=गच्छते, मह्यम् = मे, स्योना=सुखकारिण्यः भवन्तु । भुवने=पृथिवीलोके, शिश्रियाणः=निवसन्, मा नि पप्तम्:=मा नीचैः पतितो भवेयम् ।

हिन्दी अनुवाद—हे पृथिवि ! जो तुम्हारी पूर्व, जो उत्तर, जो तुम्हारी दक्षिण और जो पश्चिम दिशायें हैं वे विचरण करते हुए मुझे सुखकारिणी हों । पृथिवीलोक में निवास करता हुआ मैं नीचे की तरफ न गिरुँ ।

शब्दार्थ—प्राची =पूर्व, प्रदिशः=दिशायें, उदीचीः=उत्तर, अधरात्= नीचे से अर्थात् दक्षिण, पश्चात् पीछे से अर्थात् पश्चिम, स्योनाः=सुख प्रदान करने वाली, मह्यम्=मेरे लिये, चरते=विचरण करते हुए, मा=मत, नि पप्तम् =नीचे को गिरे, भुवने=पृथ्वी पर, शिश्रियाणः=निवास करते हुए ।

व्याकरण—चरते—चर्+शतृ=चरत् चतुर्थी विभक्ति, एकवचन ।

भवन्तु—भूधातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष, बहुवचन ।

पप्तम्—पत् धातु, लुङ् लकार, उत्तम पुरुष एकवचन । माङ् का योग होने के कारण धातु के पूर्व होने वाले अट् के आगम का अभाव ।

शिश्रियाण—श्रिञ् धातु+कानच् प्रत्यय । प्रथमा विभक्ति, एकवचन ।

विशेष—(१) छन्द—त्रिष्टुप् ।

प्रश्न—२ नीचे लिखे मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र का स्वराङ्कनपूर्वक पद-पाठ कीजिये ? पदपाठ के आवश्यक नियमों को भी बताईये ?

उत्तर— **पदपाठ के लिए कुछ सामान्य नियम**

वैदिक साहित्य में स्वराङ्कन की विविध विधियाँ प्रचलित रही हैं । ऋग्वेद,

यजुर्वेद और अथर्ववेद की सामान्यतया प्रचलित स्वराङ्कनविधि इस प्रकार है। स्वरित स्वर को वर्ण के ऊपर खड़ी रेखा से चिह्नित किया जाता है। अनुदात्त को वर्ण के नीचे पड़ी रेखा से चिह्नित करते हैं। उदात्त वर्ण सर्वथा अचिह्नित रहते हैं। उदात्त वर्णों में कुछ प्रचय कहलाते हैं। जो अचिह्नित वर्ण स्वरित के बाद वाले होते हैं, वे प्रचय कहे गये हैं। बाकी सभी अचिह्नित वर्ण उदात्त हैं। पदपाठ करते समय इस स्वराङ्कन का नियम का भी ध्यान में रखना चाहिये। पदपाठ के कुछ सामान्य नियम इस प्रकार हैं:—

(१) संहितापाठ में विद्यमान सभी पदों की सम्पूर्ण सन्धियों का विच्छेद करके पदपाठ में अलग-अलग पदों के रूप में रखना चाहिये तथा प्रत्येक पद पर पूर्ण विराम लगाना चाहिये। समस्तपदों को अलग नहीं करना चाहिये।

यथा—अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।

पदपाठ—अग्निम्। ईळे। पुरःऽहितम्। यज्ञस्य। देवम्। ऋत्विजम्।

(२) संहिता पाठ में आये पदान्त के अनुसार (ं) को पदपाठ में 'म्' के रूप में ही लिखना चाहिये। यथा—ऊपर 'पुरोहितं' के पदपाठ में अनुस्वार को 'म्' लिखा गया है।

(३) संहिता पाठ में हुए छान्दस दीर्घ को पदपाठ में ह्रस्व ही लिखना चाहिये। क्योंकि वह मूल रूप से ह्रस्व है। यथा—

रक्षा च नो।

पदपाठ—रक्ष। च। नः।

(४) देवताद्वन्द्व समास तथा वनस्पत्यादि गण के समस्त पदों को छोड़कर शेष सभी प्रकार के समस्त पदों के दोनों पदों के मध्य में अवग्रह (ऽ) का प्रयोग होता है। यथा—ऊपर 'पुरोहितं' समस्त पद के दोनों पदों के मध्य पदपाठ में अवग्रह का प्रयोग किया गया है—पुरःऽहितम्। इसी प्रकार होतारं रत्नधातमम्। का पदपाठ इस प्रकार होगा—होतारम्। रत्नऽधातमम्।

(४) विभक्तियों के भ्याम् भिस् और भ्यस् प्रत्यय के पूर्व अवग्रह का प्रयोग होता है, यदि पूर्व अंग पद में परिवर्तन न हुआ हो।

यथा—अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो ।

पदपाठ—अग्निः । पूर्वेभिः । ऋषिऽभिः । ईड्यः ।

नोट—'पूर्वेभिः' में अंग पूर्व में परिवर्तन हो जाने से अवग्रह का प्रयोग नहीं हुआ है।

(५) यदि अङ्ग (पूर्वपद) व्यञ्जनान्त न हो तो त्व, तरप्, तमप् प्रत्यय, वतुप्, मतुप् प्रत्यय; क्वसु प्रत्यय; नामधातु के क्यच्, क्यङ् आदि प्रत्यय तथा सप्तमी अर्थ में प्रयुक्त त्रा प्रत्यय के पूर्व अवग्रह का प्रयोग होता है।

यथा—तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वम् । (देवऽत्वम् । महिऽत्वम् ।)

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो । (अश्वऽवतीः । गोऽमतीः)

अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसम् । (तस्थिऽवांसम्)

वृषायमाणोऽब्रवीत सोमम् । (वृषऽयमाणः)

यच्चिद्धि ते पुरुत्रा यविष्ठ । (पुरुऽत्रा)

(६) यदि अङ्ग (पूर्ववर्ती पद) व्यञ्जनान्त हो तो सप्तमी बहुवचन के सु (प्) प्रत्यय के पूर्व अवग्रह का प्रयोग होता है। यथा—

अप्सु । (अप्ऽसु ।)

(७) प्रगृह्य संज्ञक पद (द्विवचन के ईकारान्त, ऊकारान्त एवं एकारान्त पद), अकारान्त एवं आकारान्त निपातों के साथ उ की सन्धि होने पर बने पदों के बाद इति का प्रयोग होता है।

यथा—यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने ।

पदपाठ—यम् । क्रन्दसी इति । अवसा तस्तभाने इति ।

तथा

अथो इति । प्रो इति । इत्यादि ।

(८) केवल उ को दीर्घ तथा अनुस्वार युक्त करके बाद में इति का प्रयोग होता है। यथा—ऊँ इति ।

(९) एक ही पद में उदात्त के बाद आने वाला अनुदात्त स्वरित में बदल जाता है। यथा—ऋतस्य दीदिविम् ।

पदपाठ—ऋतस्य । दीदिविम् ।

(१०) यदि किसी पद का प्रथम वर्ण स्वरित हो तो आगे आने वाले चिन्हित वर्ण तक सभी अचिह्नित वर्ण और स्वयं प्रथम स्वरित अनुदात्त में बदल जाते हैं। यथा—रश्मिरस्या ततान ।

पदपाठ—रश्मिः । अस्य । आ । ततान ।

(११) यदि किसी पद का द्वितीय वर्ण स्वरित है और उसके बाद कोई अचिह्नित वर्ण है तो उस पद को छोड़कर अगले पद के अचिह्नित वर्ण (जब तक चिह्नित वर्ण न हो) अनुदात्त में बदल जाते हैं। यथा—राजन्तमध्वराणाम् ।

पदपाठ—राजन्तम् । अध्वराणाम् ।

(१२) युष्मद् अस्मद शब्द के २–४–६ विभक्तियों के वैकल्पिक आदेश तथा च वा इव उ घ ह सर्वानुदात्त पद हैं। न कि, नाकिः नकीम् आकीम में इ या ई सर्वदा अनुदात्र रहते हैं। इसी प्रकार क्व स्व हमेशा स्वरित रहते हैं।

कुछ महत्त्वपूर्ण मन्त्रों का पदपाठ

संहितापाठ—वि मृलीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्। गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥

पदपाठः— वि। मृलीकाय। ते। मनः। रथीः। अश्वम्। न। सम्ऽदितम्। गीःऽभिः। वरुण। सीमहि ॥

●

संहितापाठः—परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये। वयो न वसतीरुप ॥

पदपाठः— परा। हि। मे। विऽमन्यवः। पतन्ति। वस्यःऽइष्टये। वयः। न। वसतीः। उप ॥

●

संहितापाठः—वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्। वेद नाव समुद्रियः ॥

पदपाठः— वेद। यः वीनाम्। पदम्। अन्तरिक्षेण। पतताम्। वेद। नावः समुद्रियः ॥

●

संहितापाठः—स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥

पदपाठः— सः। नः। विश्वाहा। सुऽक्रतुः। आदित्यः सुऽपथा करत्। प्र। नः। आयूंषि। तारिषत् ॥

●

संहितापाठः—इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृलय । त्वामवस्युरा चक्रे ॥

पदपाठः— इमम् । मे । वरुण । श्रुधि । हवम् । अद्य । च । मृलय । त्वाम् ।

अवस्युः । आ । चक्रे ॥

●

संहितापाठः— चित्रं देवानामुदगादनीकं

चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

पदपाठः—चित्रम् । देवानाम् । उत् । अगात् । अनीकम् ।

चक्षुः । मित्रस्य । वरुणस्य । अग्नेः ।

आ । अप्राः । द्यावापृथिवी इति । अन्तरिक्षम् ।

सूर्यः । आत्मा । जगतः । तस्थुषः । च ॥

●

संहितापाठः— अव स्यूमेव चिन्वती मघो-

न्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।

स्वर्जनन्ती सुभगा सुदंसा

आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥

पदपाठ—अव । स्युमऽइव । चिन्वती । मघोनी ।

उषाः याति । स्वसरस्य । पत्नी ।

स्वः । जनन्ती । सुऽभगा । सुऽदंसाः ।

आ । अन्तात् । दिवः । पप्रथे । आ पृथिव्याः ॥

संहितापाठः— अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने

दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता ।

देवेषु । च सवितमानुषेषु । च ।

त्वं । नो । अत्र । सुवतादनागसः ।

पदपाठः—अचित्ती । यत् । चकृम । दैव्ये । जने ।

दीनैः । दक्षैः । प्रऽभूती । पुरुषत्वता ।

देवेषु । च सवितः । मानुषेषु । च ।

त्वम् नः । अत्र । सुवतात् अनागसः ॥

संहितापाठ—अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् ।

वामं गृहपतिं नय ॥

पदपाठः—अभि । नः । नर्यम् । वसु । वीरम् । प्रयतऽदक्षिणम् ।

वामम् । गृहऽपतिम् । नय ॥

●

संहितापाठः—या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी ।

तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥

पदपाठः—या । ते । अष्ट्रा । गोऽओपशा । आघृणे ।

पशुऽसाधनी । तस्याः । ते । सुम्नम् । ईमहे ॥

●

संहितापाठः—पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

पदपाठः—पुरुषः । एव । इदम् । सर्वम् । यत । भूतम् । यत् ।

च । भव्यम् । उत । अमृतऽत्वस्य । ईशानः ।

यत् । अन्नेन । अतिऽरोहति ॥

●

संहितापाठः—एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः ।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

पदपाठः—एतावान् । अस्य । महिमा । अतः । ज्यायान् ।

च । पुरुषः । पादः । अस्य । विश्वा ।

भूतानि । त्रिऽपात् । अस्य । अमृतम् । दिवि ॥

●

संहितापाठः— अहमेव स्वयमिदं वदामि

जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि

तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥

पदपाठः—अहम् । एव । स्वयम् । इदम् । वदामि ।

जुष्टम् । देवेभिः । उत । मानुषेभिः ।

यम् । कामये । तम्ऽतम् । उग्रम् । कृणोमि ।

तम् । ब्रह्माणम् । तम् । ऋषिम् । तम् सुऽमेधाम् ॥

●

वैदिक व्याकरण

प्रश्न ३ — निम्नलिखित सूत्रों की व्याख्या कीजिये ?

उत्तर (१) छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम् (१/२/६१)

वेद में पुनर्वसु शब्द का एकवचन में भी प्रयोग होता है। पुनर्वसु शब्द का लोक में नित्य द्विवचनान्त प्रयोग 'पुनर्वसु' ही साधु है। क्योंकि पुनर्वसु दो नक्षत्र हैं, जिनका एक साथ वर्णन होता है। वेद में द्विवचन की विवक्षा में विकल्प से एकवचन भी प्रयुक्त होता है, लोक की तरह द्विवचन का प्रयोग भी वैकल्पिक रूप से विहित है।

उदाहरण—'पुनर्वसु नक्षत्रं पुनर्वसू वा'। यहाँ पर पुनर्वसु शब्द नपुंसक लिंग एकवचन का रूप है जो सु प्रत्यय के लोप होने पर निष्पन्न हुआ है तथा 'पुनर्वसू' शब्द प्रथमा द्विवचन में औ प्रत्यय के साथ पूर्वसवर्ण दीर्घ होने पर निष्पन्न हुआ है।

(२) विशाखयोश्च (१/२/६२)

वेद में विशाखा शब्द का भी एकवचन में प्रयोग होता है। विशाखा भी पुनर्वसु के समान दो नक्षत्रों का युगल है, जो सदा एक साथ देखा जाता है। अतः लोक में 'विशाखे' ऐसा द्विवचनान्त प्रयोग ही होता है। परन्तु वेद में द्वित्व की विवक्षा में एकवचन एवं द्विवचन दोनों में प्रयोग होता है।

उदाहरण—'विशाखा नक्षत्रं विशाखे वा'। विशाखा शब्द से प्रथमा एकवचन में आप् प्रत्ययान्त होने से सु लोप होकर विशाखा रूप बना है तथा प्रथमा विभक्ति द्विवचन में औ प्रत्यय को शी (ई) आदेश तथा गुण होकर विशाखे रूप बना है।

(३) षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वा (१/४/९)

षष्ठ्यन्त पद से युक्त पति शब्द की वेद में घि संज्ञा विकल्प से होती है। लोक में पति शब्द केवल 'पतिः समास एव' (१/४/८) के अनुसार समास में ही घि संज्ञक होता है। किन्तु वेद में षष्ठ्यन्त पद के साथ आने पर अकेले पति शब्द की भी घि संज्ञा हो जाती है। घि संज्ञा हो जाने का फल यह है कि तृतीया विभक्ति के एकवचन के टा प्रत्यय के आ को ना आदेश हो जाता है तथा तृतीया एकवचन में पतिना रूप बन जाता है। घि संज्ञा के अभाव में लोक में असमस्त पद में पत्या रूप ही बनता है।

उदाहरण—'क्षेत्रस्य पतिना वयम्'। यहाँ पर षष्ठ्यन्त क्षेत्र शब्द के साथ पति शब्द की घि संज्ञा होने से तृतीया एकवचन के टा प्रत्यय के आ को ना आदेश होकर पतिना रूप बना है।

(४) यचिभम् (१/४/१८)

यकारादि और अच् आदि प्रत्यय परे होने पर पूर्व पद की घि संज्ञा होती है। वेद में पति प्रत्यय परे रहने पर भी नभस् और अङ्गिरस् शब्द की भ संज्ञा हो जाती है। भ संज्ञा होने का फल यह होता है कि नभस् और अङ्गिरस् के अन्तिम स् का रुत्व, रुं को उ तथा गुण नहीं होता है।

उदाहरण—नभस्वत्, अङ्गिरस्वत्। यहाँ पर भ संज्ञा के फलस्वरूप रुत्वादि न होने से नभस्+वत् से नभस्वत् तथा अङ्गिरस्+वत् से अङ्गिरस्वत् रूप बने हैं। भ संज्ञा न होने की दशा में नभोवत् और अङ्गिरोवत् रूप बनते हैं।

(५) ते प्राग्धातोः—छन्दसि परेऽपि (१/४/८१)

लोक में गति संज्ञक प्र परा आदि उपसर्गों का प्रयोग धातु से पहले होता है। वैदिक संस्कृत में इन उपसर्गों का प्रयोग क्रिया के बाद भी देखा जाता है। सूत्र में अपि शब्द के प्रयोग से सूचित होता है कि इनका पूर्व प्रयोग भी हो सकता है।

उदाहरण—'हरिभ्यां याह्योक आ'। यहाँ पर आ उपसर्ग का प्रयोग याहि क्रिया के पूर्व न होकर बाद में हुआ है। किन्तु यह प्रयोग आयाहि भी हो सकता है।

(६) व्यवहिताश्च (१/४/८२)

अनेक शब्दों से व्यवहित हो जाने पर भी प्र परा आदि उपसर्गों का प्रयोग वेद में हो सकता हैं। अर्थात उपसर्ग का पूर्व प्रयोग होने पर भी क्रिया के पूर्व अन्य पदों का व्यवधान हो सकता है।

उदाहरण—'आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि'। यहाँ पर आ उपसर्ग और याहि क्रिया के मध्य मन्द्रैः इन्द्र और हरिभिः तीन पदों का व्यवधान है। उक्त सूक्त के बल से यहाँ उपसर्ग का क्रिया के साथ व्यवहित रूप में प्रयोग हुआ है।

(७) इन्धिभवतिभ्याम् च (१/२/६)

इन्धि (दीप्तौ) तथा भू (सत्तायाम्) धातुओं के बाद अपित् लिट् लकार की कित् संज्ञा होती हैं। कित् संज्ञा का फल केवल इन्धि धातु में उपधा न् का लोप माना जा सकता है। भू धातु के लिट् लकार को कित् संज्ञक करना तो निष्प्रयोजन ही प्रतीत होता है। भट्टोजि दीक्षित ने इस सूत्र को निष्प्रयोजन माना है।

उदाहरण—'समीधे दस्युहन्तमम्'। यहाँ पर सम् उपसर्ग पूर्वक इन्धि धातु से लिट् लकार में कित् होने से उपधान न् का लोप होकर समीधे रूप निष्पन्न हुआ है। भू धातु के 'बभूव' उदाहरण में कथञ्चित् गुणनिषेध प्रयोजन माना जा सकता है।

(८) तृतीया च होश्छन्दसि (२/३/३)

वेद में हु धातु के कर्म में तृतीया विभक्ति भी होती है और द्वितीया भी। यह विधान में वैकल्पिक है, जबकि लोक में केवल द्वितीया विभक्ति ही होती है। क्योंकि कर्त्ता का इप्सितम् होने से कर्म है और उसमें द्वितीया का ही विधान किया गया है।

उदाहरण—'यवाग्वाऽग्निहोत्रम् जुहोति'। यहाँ पर हु धातु के कर्म यवागु में वेद में विकल्प से तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ है। अग्नि के लिये यवागु आहुत करता है—यह वाक्य का अभिप्राय है। अतएव यवागु हु धातु का कर्म है। इस सूत्र से उसमें तृतीया का विधान किया गया है।

(९) द्वितीया ब्राह्मणे (२/३/६०)

ब्राह्मणविषयक प्रयोग होने पर दिव् धातु के कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। लोक में दिव् धातु के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति विहित है—'शतस्य दीव्यति'। विकल्प से लोक में द्वितीया भी देखी जाती है। दिव् धातु का अर्थ जुआ खेलना, क्रय विक्रय या परस्पर विनिमय है। ब्राह्मण विषयक प्रयोग होने पर प्रकृत सूत्र द्वितीया का विधान करता है।

उदाहरण—'गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः'। यहाँ पर ब्राह्मण का प्रयोग होने से दिव् धातु के कर्म 'गो' (वाणी) में कर्म का प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ है—उस दिन सभा में इसकी वाणी का परस्पर विनिमय करें।

(१०) 'चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि' (२/३/६२)

वेद में बहुल ग्रहण से चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। बहुल ग्रहण का तात्पर्य है—कहीं प्रवृत्ति होना, कहीं प्रवृत्ति न होना, कहीं विकल्प से प्रवृत्ति होना तथा कहीं अन्य ही कार्य होना। कहा भी है—

'क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद् विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति॥

उदाहरण—'पुरुषमृगश्चन्द्रमसः'। (चन्द्रमा के लिये पुरुषमृग)। यहाँ पर बाहुलकात् चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में षष्ठी (चन्द्रमसः) का प्रयोग हुआ है।

विशेष—जिस प्रकार बाहुलकात् चतुर्थी के अर्थ में वेद में षष्ठी का प्रयोग होता है, उसी प्रकार षष्ठी के अर्थ में चतुर्थी का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है।

(११) 'यजेश्च करणे' (२/३/६३)

यज् धातु के करण कारक में वेद में तृतीया के साथ विकल्प से षष्ठी विभक्ति का भी प्रयोग होता है।

उदाहरण—'घृतस्य घृतेन वा यजते। यहाँ पर घृत यजन क्रिया में साधकतम होने से करण है। करण में लोक में तृतीया विभक्ति का विधान होता है। परन्तु वेद में तृतीया के साथ विकल्प से षष्ठी विभक्ति का भी विधान होकर घृतस्य और घृतेन दोनों का प्रयोग हुआ है।

(१२) गुपेश्छन्दसि (३/१/५०)

गुप् धातु (रक्षार्थे) से वेद में विकल्प से च्लि को चङ् आदेश हो जाता है। चङ् के अनुबन्ध लोप के बाद "चङि" से धातु का द्वित्व हो जाता है। धातु का द्वित्व करना ही च्लि को चङ् करने का प्रयोजन है।

उदाहरण—'गुहानजूगुपतम् युवम्'। यहाँ पर लुङ् लकार मध्यम पुरुष द्विवचन में च्लि को चङ् हो जाने से अजूगुपतम रूप सिद्ध हुआ है। लोक में च्लि को चङ् न होने सिच् होकर वृद्धि एवं स् का लोप होने पर अगोप्तम् रूप बनता है।

(१३) 'छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्' (३/२/२७)

वन्, षण् (सन्), रक्ष और मथ धातुओं से कर्म उपपद होने पर इन् प्रत्यय होता है।

उदाहरण—ब्रह्मवनिम् त्वा क्षत्रवनम्। यहाँ पर ब्रह्म एवं क्षत्र कर्म उपपद पूर्वक वन् धातु से प्रकृत सूत्र से इन् प्रत्यय हुआ। ब्रह्मवनिम् एवं क्षत्रवनिम् द्वितीया विभक्ति एकवचन के रूप है।

उत नो गोषणिम् धियम्। यहाँ पर गो कर्म उपपद पूर्वक षण् धातु से इन् प्रत्यय हुआ है। गोषणिम् भी द्वितीया के एकवचन का रूप है।

ये पथां पथिरक्षय—यहाँ पर रक्ष् धातु से इन् प्रत्यय हुआ है। रक्षयः इन् प्रत्ययान्त रक्ष् धातु (रक्षिन् शब्द) का प्रथमा बहुवचन का रूप है।

हविमथीनाम अभि—मथ् धातु से इन् प्रत्ययान्त मथिन् शब्द से षष्ठी विभक्ति का बहुवचन है—मथीनाम्।

(१४) 'छन्दसि सहः (३/२/६३)'

सुबन्त उपपद होने पर सह् धातु को वेद में 'ण्वि' प्रत्यय होता है। ण्वि प्रत्यय सर्वापहारी है। इसमें ण् और वि की इत्संज्ञा एवं लोप होकर कुछ भी शेष नहीं रहता है। किन्तु ण् और वि की इत्संज्ञा होने से इसमें णित् एवं वित् से होने वाले कार्य होते हैं।

उदाहरण—"पृतनाषाट्'। यहाँ पृतना उपपद पूर्वक सह् धातु से ण्वि प्रत्यय हुआ है। प्रत्यय का पूर्ण लोप हो जाने पर सह् के उपधा की वृद्धि, ह् को ढ्, ढ को ड् तथा ड् को ट् होकर विभक्त्यादि कार्य होने पर पृतनाषाट् रूप बनता है।

(१५) 'जनसनखनक्रमगमो विट्' (३/२/६७)

प्रादुर्भाव अर्थवाली जन् धातु, दानार्थक सन् धातु, खननार्थक खन् धातु, गत्यर्थक क्रम् और गम् धातु से सुबन्त (विभक्ति का कोई पद) उपपद रहने पर विट् प्रत्यय होता है। विट् प्रत्यय सर्वापहारी है। वि एवं ट् की इत्संज्ञा एवं लोप हो जाने पर प्रत्यय का कुछ भी शेष नहीं रहता है।

उदाहरण—अब्जाः। गोजाः। नृषाः। बिसखाः। दधिक्राः। अग्रेगाः। यहाँ पर अप् उपपद पूर्वक जन् धातु, (अप्सु जायन्ते), गो उपपद पूर्वक जन् धातु (गोषु जायन्ते), नृ उपपद पूर्वक सन् धातु (नॄन् सनति), बिस उपपद पूर्वक खन् धातु, दधि उपपद पूर्वक क्रम धातु तथा अग्रे उपपद पूर्वक गम् धातु से विट् प्रत्यय हुआ है। विट् का सर्वलोप, अन्तिम अनुनासिक वर्ण 'न्' एवं 'म्' को आत्व तथा प्र० वि० के बहुवचन में जस् प्रत्यय एवं रुत्व प्रत्यय होकर उक्त रूप निष्पन्न होते हैं।

(१६) 'णेश्छन्दसि '(३/२/१३७)'

वेद में तच्छील (वैसे स्वभाव वाला होना), तद्धर्म (वैसे धर्म वाला होना), तत्साधुकारी (वैसा साधु करने वाला होना) अर्थों में णिजन्त (प्रेरणार्थक) धातु से इष्णुच् प्रत्यय होता है।

उदाहरण—'वीरुध पारयिष्णवः'। यहाँ पृ धातु से णिच् प्रत्यय, आदि वृद्धि करने पर 'पारि' रूप बनता है। उसकी 'सनाद्यन्ता धातवः', से धातु संज्ञा हो जाती है। इस प्रकार णिजन्त पारि धातु से प्रकृत सूत्र से उक्त अर्थों में इष्णुच् प्रत्यय होता है। इष्णुच् में इष्णु शेष रहता है। 'पारि + इष्णु' अवस्था में गुण एवं अयादेश होकर पारयिष्णु रूप बनता है। पारयिष्णु शब्द से प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में पारयिष्णवः रूप बना है।

(१७) 'लिङर्थे लेट्' (३/४/७)

वेद में लिङ् लकार के अर्थ में लेट् लकार का प्रयोग होता है। लोक में लिङ् लकार का प्रयोग आशीर्वाद अर्थ में तथा विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, सत्कार पूर्वक व्यापार, सम्प्रश्न एवं प्रार्थना अर्थों में होता है। इन सभी में करणकार्य आदि अर्थ में वेद में लेट् लकार का प्रयोग होता है।

उदाहरण—'प्र ण आयूंसि तारिषत्' यहाँ पर तृ धातु से लिङ् के अर्थ में लेट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन में तिप् प्रत्यय, ति के इ का लोप, इडागम् तथा आदि वृद्धि एवं षत्व होकर तारिषत् रूप निष्पन्न हुआ है। 'प्र ण आयूंषि तारिषत्' का अर्थ है—'वह हमारी आयुयों को बढ़ावें'।

(१८) 'ईश्वरे तोसुन्कसुनौ' (३/४/१३)

वेद में तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में ईश्वर शब्द के उपपद रहने पर तोसुन् और कुसुन् दो प्रत्यय होते हैं। तोसुन् में तोस् (तोः) तथा कुसुम् में अस् (अ) शेष रहता है।

उदाहरण—ईश्वरो विचरितोः। ईश्वरो विलिखः। यहाँ पर ईश्वर शब्द के उपपद से वि उपसर्ग पूर्वक चर् धातु से तोसुन्→तोस्→तोः तथा वि उपसर्ग पूर्वक लिख् धातु से असुन्→अस्→अः प्रत्यय हुआ है। आर्धधातुक प्रत्यय होने से धातु के बाद इट् का आगम होकर विचरितोः तथा विलखः रूप बने हैं।

(१९) 'कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वन' (३/४/१४)

कृत्य प्रत्यय के अर्थ में वेद में तवै, केन्, केन्य तथा त्वन् प्रत्यय होते हैं। कृत्य प्रत्ययों का विधान भावकर्म अर्थ में होता है। अतः इन प्रत्ययों का विधान भी इसी अर्थ में समझना चाहिये।

उदाहरण—म्लेच्छितवै अवगाहे। दिदृक्षेण्यः कर्त्वम्। यहाँ पर म्लेच्छ धातु से तवै प्रत्यय तथा इडागम होकर म्लेच्छितवै रूप, अव उपसर्ग पूर्वक गाहू धातु से केन् प्रत्यय→ए करने पर अवगाहे रूप, (दृश् धातु से सन् प्रत्यय करने पर) सन्नन्त दिदृक्ष् धातु से केन्य→एन्य एवं णत्व करने पर दिदृक्षेण्यः रूप तथा कृ धातु से त्वन् प्रत्यय एवं गुण रपर होकर कर्त्वम् रूप निष्पन्न होता है।

(२०) पथि च छन्दसि (६/३/१०८)

वेद में पथि शब्द बाद में रहने पर कु का कव और का आदेश भी होता है। विकल्प से आदेश होने के कारण कु भी रहता है।

उदाहरण—कवपथः। कापथः। कुपथः।

यहाँ पर कुत्सितः पन्था' इस अर्थ में कुत्सित अर्थ में प्रयुक्त कु शब्द को विकल्प से कव एवं का आदेश होकर कवपथः, कापथः तथा कुपथः रूप निष्पन्न हुए हैं।

अथवा

प्रश्न ४—प्रमुख सूत्रों का निर्देश करते हुए नीचे दिये गये प्रयोगों की सिद्धि कीजिये ?

अथवा

अधोप्रदत्त पदों पर व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ लिखिये ?

उत्तर—क्षेत्रस्य पतिना वयम्

यहाँ पर षष्ठयन्त क्षेत्र शब्द से युक्त पति शब्द की "षष्ठीयुक्तश्छन्दसिवा" सूत्र से घि संज्ञा हो जाने के कारण पति शब्द से तृतीया विभक्ति के एकवचन में टा प्रत्यय के अवशिष्ट आ को ना आदेश हो जाता है तथा पतिना रूप निष्पन्न होता है। घि संज्ञा के अभाव में लोक में पत्या शब्द ही बनेगा। क्योंकि लोक में पति शब्द की घि संज्ञा केवल समाप्त पद के साथ ही होती है।

नभस्वत्

नभसा तुल्यं नभस्वत्। नभस् शब्द से 'यचि भम्' तथा वार्तिक "नभोऽङ्गिरो-मनुषां वत्युपसंख्यानाम्" से तुल्यार्थक वत् (वति) प्रत्यय परे रहने पर नभस् शब्द

की भ संज्ञा हो गई। भ संज्ञा हो जाने के सामर्थ्य से स् को रुत्व नहीं हुआ। फलतः वेद में नभस्वत् रूप बना है। लोक में रूप बना है। लोक में रुत्व→उत्व→गुण होकर नभोवत् रूप बनता है।

समीधे दस्युहन्तमम्

सम् पूर्वक इन्धि (ञिइन्धी) वैदिक धातु से लिट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन, आत्मने पद में त प्रत्यय हुआ। त के स्थान पर एश् (ए) हो गया। "इन्धिभवतिभ्यां च" सूत्र से इन्धि धातु के लिट् लकार की कित् संज्ञा हो गई। कित् के सामर्थ्य के उपधा के न् का लोप, धातु को द्वित्व, हलादिशेष, सवर्ण दीर्घ (सम् इ इध् ए) होकर समीधे रूप सिद्ध होता है।

घृतस्य घृतेन वा यजते

यज् धातु के कारण कारक की वेद में "यजेश्च करणे" सूत्र से बाहुलकात् षष्ठी विभक्ति होकर घृतस्य घृतेन वा यजते रूप बनता है। जब षष्ठी का बाहुलकात् ग्रहण होता है तब घृतस्य तथा जब कारण की ही विवक्षा होती है तब घृतेन रूप रहता है।

हेमन्तशिशिरौ

'हेमन्तश्च शिशिरं च' द्वन्द्व समास के इस विग्रह में "हेमन्तशिशिरावहोरात्रे च छन्दसि" सूत्र से हेमन्तशिशिर शब्द से पूर्ववत् लिङ्ग का विधान होकर पुलिङ्ग हेमन्त को आधार मानकर प्रथमा विभक्ति के द्विवचन में औ प्रत्यय करने पर हेमन्तशिशिरौ रूप वेद में निष्पन्न होता है। लोक में 'परवल्लिङ्गंद्वन्द्वतत्पुरुषयोः' के अनुसार शिशिर शब्द के आधार पर नपुंसक लिंग होकर हेमन्तशिशिरे रूप बनता है।

हनति वृत्रहा

हन् धातु अदादि गण की धातु है। लोक में अदादि गण की धातुओं में 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः" सूत्र से होने वाला शप् प्रत्यय (अ) का लोप हो जाता है, किन्तु 'बहुलम् छन्दसि' के सामर्थ्य से वेद में इस शप् को अदादिगण में भी बाहुलकात् स्वीकार किया गया। अतएव हन् धातु से लट् लकार, प्रथम पुरुष, एकवचन में तिप् (ति) प्रत्यय हुआ। तब शप् (अ) का लोप न होने से हन्+अ+ति=हनति रूप निष्पन्न होता है।

उत नो गोषणि धियम्

गाम् सनोति इति गोषणि इस विग्रह में गो कर्म उपपद रहने पर सन् धातु से "छन्दसि वनसनरक्षिमथाम्" सूत्र से इन् प्रत्यय हुआ। गोसनि शब्द से द्वितीया विभक्ति के एकवचन में संहिता पाठ में षष्ठी विधान होने पर गोषणिम् रूप निष्पन्न होता है। वैदिक सिद्धान्तानुसार दन्त्य का मूर्धन्य षत्व विधान संहिता में ही होता है, पदपाठ में नहीं।

कव्यवाहनः

कव्यं वहतीति कव्यवाहनः। कव्य इस कर्म उपपद रहने पर वह् धातु से "कव्यपुरीषपुरीष्येषु ञ्युट् प्रत्यय हुआ। ञ्युट् में केवल यु शेष रहता है। "युवोरनाकौ" से यु को अन तथा "अचो ञ्णिति" से धातु को आदिवृद्धि होकर कव्यवाहनः रूप निष्पन्न होता है।

तारिषत्

तृ धातु से लिङ् लकार के अर्थ में 'लिङर्थे लेट्' "सूत्र से वेद में लेट् लकार का विधान हुआ। तब प्रथम पुरुष के एकवचन में तिप् प्रत्यय आया। "इतश्च लोपः परस्मैपदेषु" से ति के इ का लोप हो गया। सिप्, इडागम तथा आदि वृद्धि होकर (तृ→तार्+इ+स्+अ+त्) तारिसत् तथा "आदेश प्रत्यययोः" सूत्र से स् को ष् होकर तारिषत् रूप बनता है।

मादयैते

यह "वैतोऽन्यत्र" सूत्र के प्रत्युदाहरण के रूप में दिया गया है। प्रकृत सूत्र "आत ऐ' सूत्र के विषय को छोड़कर अन्यत्र लेट् लकार के ए को ऐ विकल्प से करता है। चूंकि मादयैते "आत ऐ" सूत्र का विषय है, अतएव यहाँ विकल्प की प्रवृत्ति नहीं होती है। इस उदाहरण में प्रथम पुरुष द्विवचन में आताम् के प्रथम आ का 'आत ऐ' सूत्र से ही ऐ हो चुका है अतएव "वैतोऽयन्त्र" सूत्र से टि को ऐ नहीं होता है। अतएव यहां विकल्प का विधान नहीं है।

गृभाय

ग्रह् धातु से "हलः श्नः शानज्झौ-छन्दसि शायजपि" सूत्र से वेद में श्ना के स्थानापन्न शानच् प्रत्यय को शायच् होकर आय शेष रहता है। "हृग्रहोर्भश्छन्दसि" वार्तिक से ह् का भ् होकर गृभाय रूप निष्पन्न होता है। गृभाय अर्थ है—ग्रहण करो।

मन्त्रं वोचेम अग्नये

वच् धातु से आशीर्लिङ लकार में उत्तम पुरुष बहुवचन में मस् प्रत्यय "लिङ्याशिष्यङ्" सूत्र से अङ् "वच उम" सूत्र से मध्य में उमागम। व+उ+च्+अ स्थिति में यासुट् (यास्) "अतो येय." सूत्र से यास् को इय् आदेश, सार्व० गुण, 'वोच्+अ+इय्+मस्' स्थिति में "आद्गुणः" से पुनः गुण, यलोप तथा मस् के स् का लोप होकर वोचेम रूप निष्पन्न होता है।

जघ्निः वृत्रममित्रियम्

यहाँ पर हन् धातु से "आदृगमहनजन किकिनौ लिट् च" सूत्र से कि या किन् प्रत्यय हुआ है। चूंकि इन प्रत्ययों का विधान लिट् लकार की तरह हुआ है, अतएव धातु को द्वित्व, अभ्यासकार्य, उपधालोप तथा "होहन्तेर्ञ्णिन्नेषु" सूत्र से कुत्व होकर प्रथमा विभक्ति के एकवचन में जघ्निः रूप बनता है।

जीवसे

जीव् धातु से तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में "तुमर्थे से सेनसेअसेन् क्सेकसेनध्यै अध्यैन्कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः "सूत्र से असे प्रत्यय होकर जीवसे रूप निष्पन्न होता है। असेन् प्रत्यय से भी जीवसे रूप बनता है, परन्तु स्वर में अन्तर आ जाता है।

पिबध्यै

पा धातु से तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में "तुमर्थे सेसेन से असेन् क्सेकसेनध्यै अध्यैन् कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः" सूत्र से शध्यैन् प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप तथा "पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्तिसर्तिशदसदांपिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छ-

पश्यर्च्छधीशीयसीदा:" सूत्र से पा करे पिब् आदेश होकर पिबध्यै रूप बनता है।

दातवै

दा धातु से तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में "तुमर्थे सेसेनसे असेन् क्सेकसेनध्यै अध्यैन् कध्यैकध्यैन्शध्यैशध्यैन्तवैतवेङ्तवेनः" सूत्र से तवै प्रत्यय होकर दातवै रूप बनता है। "दातवा उ" यहां पर ऐ को आयादेश तथा "लोपः शाकल्यस्य" सूत्र से य् का लोप हुआ है।

ईश्वरो विचरितोः

ईश्वरः उपपद रहने पर वि उपसर्ग पूर्वक चर् धातु से तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में "ईश्वरे तोसुन्कसुनौ" सूत्र से तोसुन् (तोस्→तोः) प्रत्यय हुआ। "आर्धधातुकस्येड्वलादेः" सूत्र से इट् का आगम होकर विचरितोः रूप बनता है।

ईश्वरो विलिखः

ईश्वरः उपपद रहने पर वि उपसर्ग पूर्वक लिख् धातु से तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में "ईश्वरे तोसुन्कसुनौ" सूत्र से कसुन् (अनुबन्धलोप होकर अस्, स् का रूत्व विसर्ग होकर केवल अः) प्रत्यय हुआ। "आर्धधातुकस्येड्वलादेः" सूत्र से इट् का आगम होकर विलिखः रूप निष्पन्न होता है।

प्रश्न ५—निम्नलिखित में से किसी एक देवता की विशेषताओं का उल्लेख कीजिये—

इन्द्र, अग्नि, वरुण, विष्णु, रुद्र, सविता, यम, उषा।

इन्द्र

'इन्द्र कौन है' इस विषय में प्राच्य-पाश्चात्य विद्वानों में मतैक्य नहीं है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर इन्द्र को सूर्य का प्रतिरूप मानते हैं, जबकि भारतीय विद्वान् एवं वेदों के प्रमुख भाष्यकार सायण इन्द्र को मेघों का भेदन करने वाला जल का देवता मानते हैं। यास्क इन्द्र-वृत्र युद्ध को विद्युत् तथा मेघ का संघर्ष मानते हैं तो हाप्किन्स इसी मत पर आधारित अपने सिद्धान्त में इन्द्र को विद्युत् का मानवीकृत रूप स्वीकार करते हैं। राथ, मैक्डानल तथा कीथ इन्द्र को वर्षा लाने वाले तूफान का; ग्रासमान प्रकाशमान आकाश का तथा वेनफे वर्षाकालीन आकाश का देवता मानते हैं। इन्द्र को पर्वतों का भेत्ता कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये पर्वत मेघ ही हैं, जिनकी विविध प्रकार से कल्पना है। अतः इन्द्र को मेघों का या जल का देवता माना जाना ही समीचीन है।

इन्द्र आर्यों का प्रधान जातीय तथा राष्ट्रीय देवता है। इन्द्र की स्तुति में ऋग्वेद का लगभग चतुर्थांश २५० सूक्त कहे गये हैं। मैक्डानल की धारणा है कि भारत में आर्यों के आगमन के पूर्व ही इन्द्र की राष्ट्रीय देवता के रूप में प्रतिष्ठा थी।

इन्द्र का मानवाकृति के रूप में सुन्दर वर्णन किया गया है। उसका पेट सोम से परिपूर्ण सरोवर के समान है। वह सुशिप्र (सुन्दर होने वाला) है। उसकी उत्पत्ति माता के पार्श्वभाग से हुई थी। उत्पन्न होते ही इन्द्र ने अपनी माता पर वैधव्य ढा दिया था। उसे कुमारियों के सुन्दर गीत सुनने का बड़ा शौक है। वह

कुमारियों के कल्याण में विशेष रूचि लेता है। वरुण विजेता इन्द्र का व्यवस्थापक है। बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति के साथ इन्द्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

इन्द्र महान् बलशाली देवता है। द्युलोक एवं अन्तरिक्ष लोक तथा पृथिवी लोक मिलकर भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते हैं। उत्पन्न होते ही इन्द्र ने सभी देवताओं पर आधिपत्य जमा लिया। उसके बल से आकाश तथा पृथिवी कांपने लगे। पुनः उसने कांपती पृथिवी को स्थिर किया, उड़ते हुए पर्वतों को स्थापित किया तथा अन्तरिक्ष को बढ़ाया कहा भी है—

'यः पृथिवीं व्यथमानामदृंह

यः पर्वतान्प्रकुपितां अरम्णात्

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो

यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥

इन्द्र के अन्य अनेक वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन किया गया है। उसने बल नामक असुर को मारकर गुफा में छिपाकर रखी हुई गायों को निकाला। उसने पणियों का हराकर गायों को छुड़ाया। पर्वतों पर निवास करने वाले शम्बर असुर का उसी ने वध किया। आकाश पर चढ़ने वाले रोहिण नामक असुर को इन्द्र ने झटका देकर गिरा दिया। इसकी आज्ञा का कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता है। अश्व, गौ, ग्राम, रथ सब इसकी आज्ञा में हैं। इसी ने सूर्य तथा उषा को उत्पन्न किया है—

'यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो

यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।

यः सूर्यं य उषसं जजान

यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥'

ऋग्वेद में इन्द्र का सबसे महत्वपूर्ण शक्तिशाली कार्य वृत्रवध माना गया है। इस घटना का बड़े ही आलंकारिक ढंग से वर्णन किया गया है। वृत्र वैदिक गाथाओं के अनुसार इन्द्र का प्रबल शत्रु है। ऐतिहासिक दृष्टि से वृत्र वृष्टि का अवरोधक है। उसे मारकर इन्द्र ने वृष्टि को प्रवाहित किया है। यास्क के अनुसार तो जो कुछ भी बल के कार्य हैं वे सब इन्द्र के ही हैं—

सोमपान इन्द्र का प्रिय पेय है। इसी लिये उसे 'सोमपा' कहा गया है। सोमपान करके वह बड़े से बड़ा कार्य कर सकता है। ऐसा कहा गया है कि इन्द्र ने वृत्र के साथ युद्ध करते समय तीन सरोवर सोमरस का पान कर लिया था। सोमपान करके ही इन्द्र वज्र को घुमाता है तथा अपने में बिजली को गिराने की शक्ति उत्पन्न करता है।

इन्द्र का प्रधान हथियार वज्र है। उसे वज्रिन्, वाज्रबाहु एवं वज्रहस्तः आदि नामों से पुकारा गया है। उसके वज्र का निर्माण त्वष्टा ने किया है। उसका रथ मन से भी अधिक वेग वाला है। उसके रथ को हरे रंग के दो अश्व खींचते हैं। इन्द्र का अनेक अन्य देवताओं से भी सम्बन्ध है। मरुत् देव उसके मित्र हैं। ये युद्ध

में इन्द्र की सहायता करते हैं। 'मरुत्सखा' 'मरुत्वान्' आदि नाम इन्द्र के इसी कारण पड़े हैं। अग्नि देवता के साथ अनेक स्थलों पर इन्द्र की स्तुति की गई है। अग्नि के अतिरिक्त वरुण: वायु, सोम, बृहस्पति, पूषन्, विष्णु आदि देवताओं के साथ भी ५० सूक्तों में अलग इन्द्र की स्तुति मिलती है। द्यौ इन्द्र का पिता है, अग्नि और पूषा उसके भाई है तथा इन्द्राणी उसकी अर्धाङ्गिनी है। 'शची' शक्ति के आधिपत्य के कारण इन्द्र को शचीपति भी कहा गया है। कर्मों के शक्ति के कारण वह 'शतक्रतु' है।

इन्द्र अपने उपासकों को बहुत सहायता करता है। निर्धन तथा धनी सभी को प्रेरित करता है। इन्द्र सोमरस पीसने वाले की, पुरोडाश पकाने वाले को, प्रशंसा करने वाले की तथा परिश्रम करने वाले की रक्षा करता है। ऋग्वेद में कहा गया है—

'यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं
यः शंसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो
यस्येदं राधः स जनासः इन्द्रः॥'

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन्द्र महान् शक्तिशाली तथा उपासकों का रक्षक आर्यों का राष्ट्रीय देवता है।

अग्नि

ऋग्वेद में अग्नि का वैदिक आर्यों के सर्वाधिक पवित्र देवता के रूप में चित्रण हुआ है। विस्तार की दृष्टि से इन्द्र के बाद अग्नि का द्वितीय स्थान है। लगभग ऋग्वेद के दो सौ सूक्तों में अग्नि की स्तुति की गई है। इसकी महत्ता शक्तिशाली आकाश से भी अतिशायी है। वह अमरता का रक्षक तथा स्वामी है। इसके लिए 'असुर' (प्राणदाता—असून् राति ददाति) उपाधि का प्रयोग किया गया है। वैश्वानर, तनूनपात्, नराशंस, जातवेदस् आदि अनेक नामों से अग्नि की स्तुति की गई है। भारत में ही नहीं फारस और ग्रीस में भी अग्नि की देवता के रूप में प्राचीन काल से ही उपासना होती आ रही है। मैक्डानल 'अग्नि' यह नामकरण भारोपीय मानते हैं। उनके अनुसार अग्नि शब्द संस्कृत की अग धातु एवं लैटिन की Ag (अग्) धातु से निष्पन्न हुआ है।

अन्य देवताओं के समान अग्नि का मानवाकृति के रूप में विशिष्ट वर्णन नहीं हुआ है। भौतिक अग्नि के साथ एकता होने के कारण उसका मानवीकृत रूप अन्य देवताओं की अपेक्षा कम चित्रित है। उसका जो कुछ भी मानवीकृत रूप में चित्रण हुआ है, उसमें याज्ञिक अग्नि को ही आधार बनाया गया है। इसी कारण अग्नि को घृतपृष्ठ (घी की पीठ वाला), घृतमुख (घी के मुख वाला), घृतलोम (घी

के रोमों वाला), घृतकेश (घी के केशों वाला), शोचिषकेश (ज्वालाओं के केशों वाला), रक्तश्मश्रु (लाल दाढ़ी वाला), रुक्मदन्त (स्वर्णदन्तों वाला), तथा तीक्ष्ण-दन्त (तीक्षण दांतों वाला) कहा गया है। अन्य देवता अग्नि की जिह्वा के माध्यम से ही हवियों का उपभोग करते हैं। उसकी दीप्यमान मूधा है। अग्नि को देवताओं का मुख कहा गया है। इसका रथ सोने से बना हुआ है, जिसे लाल रंग के घोड़े खींचते हैं।

अग्नि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऋग्वेद में विभिन्न कल्पनायें हैं। दो अरणियों के रगड़ने से अग्नि की उत्पत्ति होती है। दोनों अरणियों को अग्नि का माता-पिता माना गया है। अन्तरिक्ष के जलों से भी अग्नि की उत्पत्ति मानी गई है। प्रतिदिन प्रातः काल उत्पन्न होने के कारण अग्नि को 'यविष्ठ' कहा गया है। वह यज्ञवेदी या यजमान के लिए उत्पन्न हुआ है। यह अपनी कान्ति से या शक्ति से द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक को प्रकाशित करता है—

'स: जायमान: परमे व्योम
न्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य यज्मना
प्र द्यावा शोचि: पृथिवी आरोचयत् ॥'

इसके अतिरिक्त अग्नि को बल और १० कन्याओं से भी उत्पन्न कहा गया है।

अग्नि का अन्य देवताओं तथा मानव-जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इन्द्र उसका यमल भाई है। वरुण को भी अग्नि का भाई कहा गया है। इन्द्र, विष्णु, वरुण आदि देवताओं तथा अदिति भारती आदि देवियों के साथ अग्नि का तादात्म्य वर्णित किया गया है। अग्नि ही सभी देवताओं को अपने रथ में बैठाकर यज्ञ स्थल में लाता है मानव के जीवन के साथ अग्नि का सम्बन्ध पिता, भाई मित्र तथा पुत्र अनेक रूपों में चित्रित हुआ है अग्नि को दमूनस् (घरों में रहने वाला) तथा गृहपति (घरों का अधिपति कहा गया है।

अग्नि सोम रस का पान करता है। अग्निमारुत सूक्त में अग्नि का आह्वान सोमपान के लिए किया गया है—

'अभित्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥'
'प्रति त्य चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥'

वह यज्ञ का पुरोहित है, होता है (देवताओं का आह्वान करने वाला है) तथा धन देने वालों में अग्रणी है—

'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥'

अग्नि की उपमा एक बैल से दी गई है। इसके श्रृंग भी हैं। उत्पन्न हुए अग्नि का चित्रण बालवत्स के समान किया गया है। इसे आकाश में उड़ने वाले गरुण तथा जल में रहने वाले हंस के समान भी बताया गया है।

अग्निदेव अपने उपासकों के ऊपर महान् उपकार करता है। जो लोग अपने घरों में अग्नि का अतिथि के समान सत्कार करते हैं, उनका यह परम मित्र है। जो इसे तीन बार आहुति प्रदान करता है, उन्हें यह सभी प्रकार के सुख प्रदान करता है। यह उपासकों के उन पापों को क्षमा कर देता है, जो उसने भूल से किये है। अग्नि से प्रार्थना की है कि तुम हमें उसी प्रकार आसानी से पहुँच के योग्य हो जाओ जिस प्रकार पिता पुत्र के लिए होता है—

'स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।

उससे अप्रमत्त होकर अपनी तथा अपनी सन्तति की रक्षा के लिए भी प्रार्थना की गई है—

'अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छभिरग्ने
शिवेभिर्नः पायुभिः पाहिशग्मैः ।
अवब्धेभिरदृपितेभरिल्टे-
र्निमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥'

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऋग्वेद का पदियतम देव अग्नि सर्वतोमुखी प्रज्ञा वाला वथा अतिशयकीर्ति वाला देवता है। यज्ञ में उसे सर्वप्रथम आहुति दी जाती है। आर्यों का कोई भी ऐसा धार्मिक कार्य नहीं है, जिसमें अग्नि देवता को प्रधानता न दी गई हो।

वरुण

वरुण देवता के ठीक-ठीक स्वरूप के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतवैभिन्य है। मैक्डानल के अनुसार वरुण देवता का रूप चारों ओर विस्तृत आकाश से आच्छादित के समान है। यास्व के अनुसार वरुण शब्द की निष्पत्ति आच्छादनार्थक वृ धातु से हुई है। इस आधार पर विश्व का आवरण करने वाले आकाश के प्रतिविधि देवता के रूप में वरुण को मान्यता है। यास्क एवं मैक्डानल के मतों में समानता है सायण के अनुसार वरुण अस्त होता हुआ सूर्य है, जो अन्धकार को उत्पन्न करता है। अन्यत्र सायण ने वरुण को जल का अभिमानी देवता माना है। पुराणों में भी वरुण को पार्थिव जलों का देवता कहा गया है, परन्तु ऋग्वेद के कथनों से इसका समर्थन नहीं होता है। मैक्समूलर ताराओं से युक्त आकाश के मानवीकृत रूप को वरुण कहते हैं। मित्र देवता के साथ द्वन्द्व के कारण ओल्डेनवर्ग वरुण को

चन्द्रमा का प्रतिनिधि मानते हैं। ऋग्वेदिक वर्णन के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि वरुण आकाश के प्रतीक हैं। इससे उसका विश्व को आवृत करने वाला रूप भी सिद्ध हो जाता है।

इन्द्र और अग्नि के बाद वरुण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि इसकी स्तुति ऋग्वेद के केवल १२ सूक्त में की गई है, तथापि उसका शासक रूप की विशिष्ट महत्ता है। मानवीकृत रूप में वरुण देव के हाथ, पैर, आखें, मुँह आदि सभी अंगों का वर्णन किया गया है। अग्नि को उसका मुख और सूर्य को उसका नेत्र कहा गया है। वरुण सूर्य के समान चमकने वाले रथ पर बैठकर आकाशमार्ग में विचरण करता है। वह अपने शरीर पर स्वर्णिम कवच को धारण करता है। वह दूरदर्शी तथा हजारों आँखों वाला है। स्वर्ग में उसका आवास है। वहीं बैठकर वह प्रशासन और नियन्त्रण करता है। उसके महल में एक हजार स्तम्भ तथा एक हजार द्वार हैं। उसके अनेक गुप्तचर तथा दूत हैं। उसका एक दूत सुनहरे पंखों वाला है। गुप्तचर ही वरुण को विश्वभर की घटनाओं की सूचना देते रहते हैं।

वरुण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सम्राट् है। असुर शब्द का प्रयोग मूल रूप से वरुण के लिए ही किया गया है असुर का अर्थ है प्राणों को देने वाला। वह सभी प्राणियों में प्राणों का संचार करता है। कुछ विद्वान् इसी आधार पर वरुण का अवेस्ता के अहुरमज्दा के साथ साम्य प्रतिपादित करते हैं। वह प्राणियों से सभी नियमों का पालन करवाता है तथा स्वयं भी करता है, इसी कारण उसे 'धृतव्रत' कहा गया है। उसकी महत्ता असीमित है। आकाश में तेज उड़ने वाले पक्षी, तेज बहने वाली नदियाँ तथा स्वयं आकाश में महत्ता में उसकी बराबरी नहीं कर सकते हैं। वह आकाश तथा पृथिवीलोक को धारण किये हुए है उसी ने जल एवं अग्नि को स्थापित किया है। वही आकाश में सूर्य को प्रतिष्ठित करने वाला है। हमेशा बहने वाली हवायें वरुण की श्वासें हैं शासक के रूप में वरुण प्रजाओं के पाप पुण्यों का हिसाब-किताब रखता है। उसके पास एक पाश है जो पापियों को बाँध लेता है, उन पापियों को वरुण कठोर दण्ड देता है। किन्तु जो लोग भूल से कोई अपराध कर लेते हैं तथा बाद में क्षमायाचना कर लेते हैं, उन्हें वरुण क्षमा कर देता है। इस प्रकार वरुण एक कुशल प्रशासक है। स्थान-स्थान पर लोगों ने पापों को क्षमा करने के लिए वरुण से प्रार्थनायें की हैं। सभी प्रकार के पाशों से मुक्ति के लिए भी वरुण से प्रार्थनायें की हैं—

'इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृलय।
त्वामवस्युराचके ॥'
'उदुत्तमं मुमुग्धि नो विपाशं मध्यमं चृत।
अवाधमानि जीवसे ॥'

वरुण सर्वज्ञ देवता है। वह आकाशमार्ग से उड़ने वाले पक्षियों के मार्ग को जानता है। समुद्रमार्ग से जाने वाली नावों के मार्ग को जानता है। वह सभी मासों तथा तीसरे या चौथे वर्ष बढ़ने वाले मलमास को भी जानता है। वह वायु के मार्ग को जानता है तथा उन्हें भी जानता है जो अन्तरिक्ष लोक में अधिष्ठित हैं। जैसा कहा गया है—

'वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावः समुद्रियः॥
वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः।
वेदा य उपजायते॥
वेद वातस्य वर्तनिमुरोॠष्वस्य बृहतः।
वेदा ये अध्यासते'॥

वह भूत, भविष्य एवं वर्तमान सभी कालों को जानता है। इस वरुण की कृपा से ज्ञानी मनुष्य भी विश्व के सभी आश्चर्यों को देख लेते हैं। वह लोगों की आयु को बढ़ाने में भी समर्थ है। इसीलिए सुन्दर संकल्पों वाले वरुण देवता से आयु बढ़ाने की प्रार्थना की गई है—

'स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्।
प्रण आयूंषि तारिषत्॥'

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वरुण नैतिक एवं पवित्र गुणों से सम्पन्न पापियों को सजा देने वाला, पश्चाताप करने वालों को क्षमा प्रदान करने वाला तथा सब कुछ जानने वाला (सर्वज्ञ) है।

विष्णु

आकार एवं विस्तार की दृष्टि से यद्यपि विष्णु देवता का वर्णन बहुत ही कम किया गया है, तथापि आर्यों के देवताओं मे उन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा मिली है। ऋग्वेद के केवल ५ सूक्तों में विष्णु देवता की स्तुति की गई है। विष्णु शब्द विष् धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है व्यापनशील होना।

विष्णु के लिए अनेकशः त्रिविक्रम, उरुक्रम, उरुगाय आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। त्रिविक्रम शब्द के व्याख्याकारों ने दो अर्थ किये हैं—(१) तीन कदमों वाला और (२) तीनों लोकों में अपनी किरणों से व्यापनशील। तीन कदमों के द्वारा ब्रह्माण्ड को विष्णु ने नापा या बनाया—ऐसा उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है—

"विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं
यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥"

विष्णु के तीसरे कदम तक कोई पहुँच नहीं पाता है। उसके दो ही कदम

दृष्टिगोचर होते हैं, तीसरा नहीं है। वहाँ तक तो कोई पक्षी भी उड़कर नहीं पहुँच सकता है। उस परमधाम में एक मधु का सरोवर है ('विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः'। विष्णुलोक में बड़े-बड़े सींगों वाली हमेशा गतिशील रहने वाली गायें अथवा अत्यधिक प्रकाशशील किरणें हैं। इसी कारण विष्णु के परमपद को गोलोक भी कहा जाता है। वह परमपद नीचे की ओर अत्यधिक चमकता रहता है कहा भी गया है—

"ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै
यत्र गावो भूरिश्रृङ्गाः अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः
परमं पदमवभाति भूरि ॥

विष्णु के तीन कदम क्या हैं—इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। शाकपूणि आचार्य के अनुसार विष्णु के तीन कदम पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक तथा द्युलोक हैं। और्णवाभ का कहना है कि सूर्य का उदय होना, मध्याह्न में गमन करना तथा अस्त होना ही विष्णु के तीन कदम हैं। वे व्यापनशील होने के कारण विष्णु को सूर्य का वाचक मानते है। मैक्डानल, विल्सन तथा मैक्समूलर भी इसी तथ्य को प्रामाणिक स्वीकार करते हैं। लोकमान्य तिलक का कथन है कि उत्तरीध्रुव के वर्ष के ४–४ माह के तीन विभाग ही विष्णु के तीन कदम हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में अग्नि के तीन रूपों—सूर्य को द्युलोक के रूप में, विद्युत् को अन्तरिक्षलोक के रूप में तथा पार्थिव अग्नि को पृथिवीलोक के रूप में विष्णु के तीन कदम माने गये हैं। इन सभी दृष्टिकोणों में और्णवाभ का मत या ब्राह्मणग्रन्थों का दृष्टिकोण ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

विष्णु का मुख्य रूप से सम्बन्ध इन्द्र के साथ है वृत्र के वध के समय विष्णु ने इन्द्र की सहायता की थी। वहीं पर उनका मरुतों के साथ भी सम्पर्क हुआ था। विष्णु इन्द्र का मित्र है। पौराणिक साहित्य में विष्णु को इन्द्र का छोटा भाई (उपेन्द्र) कहा गया है, परन्तु ऋग्वेद में ऐसा कोई उल्लेख नहीं हुआ है। सोमपान के समय मरुत् देव विष्णु के साथ बैठते हैं।

विष्णु गतिसम्पन्न तथा संसार के रक्षक देवता हैं उनकी बौद्धिक शक्ति अत्यन्त प्रबल है, इसी कारण विष्णु को सभी देवताओं में सर्वाधिक चतुर कहा जाता है। विष्णु के चरित्र में एक और महान् विशेषता यह है कि वह गर्भों की रक्षा करता है। गर्भाधान के समय अन्य देवताओं के साथ विष्णु को भी स्तुति की जाती है। विष्णु अन्य देवताओं के समान मनुष्यों का उपकार करने वाला, प्रचुर धन वाला, सभी की रक्षा करने वाला, उदार तथा सबका भरणपोषण करने वाला देवता है। विष्णु सूर्य के क्रियाशील रूप का प्रतीक देवता है। पराक्रमपूर्ण कार्यों के द्वारा विष्णु देवता सिंह के समान स्तुत होता है—

'प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणे-
ष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥'

बृहदारण्यक उपनिषत् में विष्णु को इन्द्रियों एवं आत्मा को कर्मों के अनुसार नियुक्त करने वाली शक्ति माना गया है।

नोट—ऐसा लगता है कि तीन कदमों में सम्पूर्ण लोकों के निवास करने की उक्त घटना तथा तीन कदमों से द्यावापृथिवी को नापने या बनानें की घटना से ही इस पौराणिक घटना की कल्पना की गई है कि बलि असुर से विष्णु ने तीन कदम पृथिवी मांगकर उसे छला था। इस कल्पना के अनुसार विष्णु ने प्रथम कदम में पृथिवी को तथा द्वितीय में अन्तरिक्ष को पार कर लिया था। जब तृतीय कदम रखने को स्थान नहीं रहा तो उन्होंने बलि के सिर पर रखकर उसे पाताल तक पहुँचा दिया था। वस्तुत सूर्य के व्यापनशील एवं क्रियात्मक रूप के प्रतिनिधि विष्णु अपनी किरणों से तीनों लोकों को पार कर जाते हैं—यही उनके त्रिविक्रम होने का तात्पर्य है।

रुद्र

ऋग्वेद में रुद्र का केवल तीन सूक्तों में वर्णन किया गया है। अन्य देवताओं के साथ भी रुद्र का वर्णन हुआ है। आकार की दृष्टि से कम होने पर भी रुद्र को एक शक्तिशाली तथा भयानक देवता माना गया है।

मानवीकृत रूप में रुद्र का बाह्यरूप अत्यन्त मनोहारी तथा अत्यन्त भयङ्कर उभयविध चित्रित हुआ है। उसके हाथ [illegible] भुजायें दृढ़ हैं, होंठ अत्यन्त सुन्दर हैं तथा रंग भूरा है। आकार अत्यन्त देदी[illegible]मान है, वह अनेक प्रकार के रूप धारण करने में समर्थ है। वह सोने के आभूषणों से सतत शोभायमान रहता है। अन्य देवताओं के समान रुद्र भी रथ पर आरूढ होकर गमन करता है तथा शस्त्रों को हाथों में लिये रहता है। उससे पास विशिष्ट प्रकार के आयुध हैं। वह वज्र को भी धारण करता है तथा अपने पास बिजली के समान चमक वाले बाणों को रखता है। संसार का विनाश करने में वह लाल वर्ण के 'अरुष' नाम स्वर्ग के शूकर के समान भयानक बन जाता है। रुद्र के पराक्रम का कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता है। वह जगत् का पालन भी करता है। पालन करते समय उसका स्वभाव पिता के समान हो जाता है। 'असुर' (प्राणदाता) विशेषण का प्रयोग रुद्र के लिए भी किया गया है। रुद्र जहाँ एक तरफ विना[illegible] करने वाला देवता है वहीं दूसरी तरफ संसार की रक्षा करने वाला भी है। वह [illegible]वताओं द्वारा की गई बुराईयों को भी दूर करता है 'शिव' रुद्र का ही कल्याणक[illegible] रूप है।

रुद्र के कोप से बचने के लिए ऋग्वेद में अनेक प्रार्थनायें की गई हैं। वहाँ कहा गया है कि हे जगत्पालक, सर्वज्ञ एवं दीप्तिमान् रुद्र देव! तुम हमारे ऊपर क्रोध मत करो और न ही हमें मारो। सुन्दर सन्तति वाले हम यहाँ पर तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं—

'एवा बभ्रो वृषभ चेकितान
यथा देव न हृणीषे न हंसि।

हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि
बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥'

रुद्र का हितकारी रूप अत्यन्त उज्ज्वल रूप में चित्रित हुआ है। वह अपनी कल्याणकारी औषधियों से सौ वर्ष की आयु प्रदान करता है, शत्रुओं को दूर कर नष्ट कर देता है, पापों को भगा देता है तथा शारीरिक रोगों को नष्ट कर देता है। रुद्र की प्रार्थना करते हुए ऋषि कामना करता है—

"त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः
शतं हिमा अशीय भेषजेभिः।
व्यस्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो
व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥"

रुद्र से प्रार्थना करते हुये पुनः कहा गया है कि वह अपनी औषधियों से हमारी सन्तति की रक्षा करे, क्योंकि वह सभी वैद्यों में उत्कृष्ट वैद्य है—

उन्नो वीरां अर्पय भेषजेभि-
र्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥'

रुद्र का हाथ सुखदायी, सबको स्वास्थ्य प्रदान करने वाला तथा शीतलता प्रदान करने वाला है। उससे प्रार्थना करते हुए ऋषि कहता है कि हे शक्तिशाली रुद्र! तुम देवताओं के द्वारा लगाये गये पाप को दूर करने वाले हो, तुम मेरे ऊपर दया करो।

क्वस्य ते रुद्र मृलयाकुर्हस्तो
यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्या-
भी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥'

रुद्र का हृदय अत्यन्त उदार है, इसलिये उसे 'ऋदूदर' (उदार हृदय वाला); वह पाप का नाशक है इसलिये उसे 'कल्मलीकिन्' (कलुषों को नष्ट करने वाला) और आरोग्य प्रदान करने वाला है, इसलिये उसे भेषज (वैद्य) कहा गया है। ऋग्वेद के वर्णन से पता चलता है कि वह स्वास्थ्य प्रदाता देवता है। उसके पास स्वास्थ्य प्रदान करने तथा रोगों को दूर करने की हजारों औषधियाँ है।

रुद्र के स्वरूप के सम्बन्ध में ऋग्वैदिक मन्त्रों में उसके रूप की एकता नहीं हैं। इसी कारण विद्वानों ने रुद्र के विषय में अनेक मत प्रस्तुत किये हैं। वेबर रुद्र को प्रचण्ड वात के गम्भीर घोष का प्रतिरूप मानते हैं। हिलेब्राण्ट के अनुसार रुद्र ग्रीष्म से शरद् तक चलने वाले उष्णकाल का देवता है। श्रोदर इसे कोई प्रमुख मृतात्मा मानते हैं तो विल्सन रुद्र को अग्नि या इन्द्र का प्रतिरूप मानते हैं। ओल्डन बर्ग श्रोदर के मत के प्रति आस्था व्यक्त करते हुये भी इसे वन एवं पर्वतों से सम्बद्ध स्वीकार करते हैं। वस्तुतः प्राकृतिक वर्णनों के आधार पर उसे आँधी या तूफान उठाने वाला देवता माना जा सकता है। इसका भयानक रूप मनुष्यों, पशुओं तथा वृक्षों को नष्ट कर डालता है।

रुद्र का मसृण रूप ही परवर्ती साहित्य में शिव के नाम से चित्रित हुआ है, जिन्हें आगे चलकर आर्यों ने एक महान् देवता के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की है। यजुर्वेद मे ही रुद्र की प्रतिष्ठा इस रूप में होती दृष्टिगोचर होने लगती है। वहाँ रुद्र को शत्रुप्रतिकारी शक्ति से युक्त कहा गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रुद्र विनाशक एवं उपकारक उभयविध शक्ति से सम्पन्न एक विशिष्ट देवता है।

सविता

सविता एक प्रेरक देवता है। सूर्य के साथ अत्यधिक समानता होने के कारण कभी-कभी दोनों देवताओं को एक समझने की भ्रान्ति हो जाती है। परन्तु इसका रूप सूर्य से अलग है। सविता शब्द सू धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है—प्रेरणा देना, प्राण देना अथवा गति प्रदान करना। ये सभी गुण सविता देवता मे वर्णित हुए हैं। यह उदित हुए सूर्य की प्रेरक शक्ति का प्रतिरूप है। इसका प्रत्येक कार्य निर्माण या प्रसव से सम्बन्धित है। इसी कारण प्रासवीत्, आसुवत्, सुवे, साविषत् आदि क्रियारूपों का इसके लिये प्रयोग किया गया है। सविता देवता सभी को कार्य करने की प्रेरणा देता है। ऋग्वेद में ११ स्वतन्त्र सूक्तों में सविता की स्तुति की गई है। सविता देवता का आज भी पूर्ववत् आदर सम्मान है। यही कारण है कि वैदिक समाज में आज भी गायत्री मन्त्र के रूप में सविता की ही स्तुति की जाती है—

'तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

सविता एक स्वर्णिम देवता है। मानवीकृत रूप में उसकी आँखों, हाथ, जीभ, बाल, अंगुलियाँ आदि सभी अंगों का स्वर्णिम वर्णन किया गया है। उसका रथ भी स्वर्णिम है: जिसे सफेद पैरों वाले दो अश्व खींचते हैं। उसकी दोनों भुजायें स्वर्णिम हैं, जिन्हें वह पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक को प्रकाशित करने के लिये फैलता है। वह अपने स्वर्णिम रथ पर आरूढ़ होकर नीचे एवं ऊपर के मार्गों पर विचरण करता है। उसके पुरातन मार्ग धूलरहित हैं, जो अन्तरिक्ष में स्थित हैं।

सविता एक शक्तिशाली प्रकाशक देवता है। वह दिन और रात का स्वामी है। उसने पृथिवी की आठों दिशाओं, तीनों लोकों, प्राणियों के कर्मों तथा सातों नदियों को प्रकाशित किया है। वह हवि प्रदान करने वाले के लिये श्रेष्ठ धन को लाया है।

'अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्या—
त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देव आगा-
द्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि॥"

सविता की आज्ञा का कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता है। वह सभी देवताओं का नेता है। इन्द्रादि देव उसे गतिरोध उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। यह सम्पूर्ण संसार को धारण करता है तथा देवताओं को अमरता प्रदान करता है। रात्रि में वह सभी प्राणियों को आराम देता है। यह दुःस्वप्नों का नाशक है तथा दुर्भाग्य को दूर करता है। राक्षसों को दूर भगाता है, मनुष्यों को निष्पाप करता है तथा यजमानों की रक्षा करता है। प्रदोष और प्रत्यूष दोनों से सविता का सम्बन्ध है। ●

यम

ऋग्वेद के दशम मण्डल के १४वें से लेकर १८वें सूक्त तक मृत्यु तथा पारलौकिक जीवन का वर्णन किया गया है। इनमें सर्वप्रथम १४वें सूक्त के देवता यम हैं। इसके अतिरिक्त तीन अन्य सूक्तों में यम की स्तुति की गई है। एक अन्य यम-यमी सूक्त में भी यमयुगल की स्तुति है। यम-यमी सूक्त में उनका परस्पर संवाद यम और यमी युगल के रूप में एक साथ उत्पन्न हुए थे। कोई इन्हें पति-पत्नी मानता है तो कोई भाई-बहिन स्वीकार करता है। कुछ लोग यम को प्राणों का वाचक मानते हैं। वैदिक विवेचन से अनुसार यम विवस्वान् तथा सरण्यू के पुत्र हैं। उनकी माता सरण्यू त्वष्टा की पुत्री हैं। वरुण, बृहस्पति तथा अग्नि से यम का विशिष्ट सम्बन्ध है। अग्नि ही मृतात्माओं को यम तक पहुँचाता है। इसीलिये अग्नि को यम का सुहृद् तथा पुरोहित कहा गया है। अङ्गिरस, विरूप, नवग्वा, अथर्वा, भृगु, वशिष्ठ आदि पितरों की अनेक श्रेणियां हैं। यम का इनमें अङ्गिरस पितरों के साथ विशेष सम्बन्ध है। यम प्रेतात्माओं का अधिपति है। अपने पितरों को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि तुम प्राचीन मार्गों से अपने प्राचीन पितरों के पास जाओ। जहाँ पर तुम यम और वरुण को देखोगे—

'प्रेहि प्रेहि पृथिभिः पूर्व्येभि-
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता
यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥'

यहाँ वरुण एवं यम को राजा कहा गया है। लोक में भी हम यम का उल्लेख यमराज के रूप में करते हैं।

यम प्राणों का देवता है। वह मृतात्माओं को मार्ग प्रदर्शित करता है। पुण्यशीलों को वह स्वर्ग, तथा पापियों को अपने लोक (नरक) में ले जाता है। यम की स्तुति करते हुये कहा गया है—

'परेयिवांसं प्रवतो महीरनु
बहुभ्यः पन्थानमनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानं हविषा दुवस्व ॥'

यम का निवास सुदूर अन्तरिक्ष लोक में माना गया है। इसके लिये घृत की आहुति तथा सोम का अभिषवण किया जाता है। आयु की वृद्धि तथा देवताओं तक पहुँचाने के लिये यम की स्तुति की जाती है। यम ही एकमात्र ऐसा देवता है, जिसने सर्वप्रथम परलोक को खोजा है। यम का मृत्यु मार्ग है। इसी मार्ग से वह प्राचीन पितरों तक नवीन पितरों को पहुँचाता है। उल्लू एवं कबूतर का यम के दूतों के रूप में चित्रण किया गया है। यम के पास दो कुत्ते हैं। ये दोनों कुत्ते चार आँखों वाले तथा चितकबरे वर्ण के हैं। ये दोनों देवताओं की कुतिया सरमा के पुत्र हैं। ये दोनों कुत्ते यम के घर की रक्षा करते हैं। यमराज से प्रार्थना करते हुये कहा गया है कि ये यमराज ! तुम उन कुत्तों से प्रेत मनुष्य की रक्षा करो तथा प्रेत का कल्याण करो। उसे नीरोग भी बनाओ—

'यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ
चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
ताभ्यामेनं परिदेहि राजन्
स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि: ॥'

बड़ी नासिका वाले, प्राणों से सन्तुष्ट होने वाले, अत्यन्त बलशाली यम के दूतरूप वे दोनों कुत्ते मनुष्यों के पीछे-पीछे घूमते हैं। सूर्य के दर्शन या पर्जन्य की प्राप्ति के लिये उनसे पुनः प्राणों की प्राप्ति की कामना की गई है—

'उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ
यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय
पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥'

यम से सम्बद्ध सूत्रों का दाहसंस्कार के समय पाठ करने की परम्परा है। अग्नि यम की सहायता करके मृतक को लोकान्तर में पहुँचाता है। दाह संस्कार के समय अग्नि तथा सोम से प्रेत को पशु-पक्षियों, चींटीं तथा पन्नगों से बचाने की प्रार्थना की जाती है। यम ही अपने-अपने कर्मों के अनुसार मृतक को विभिन्न लोकों में पहुँचाता है।

उषा

उषा वैदिक ऋषियों की प्रमुख देवी रही है। उषा का दर्शन एक सुन्दरी युवती के रूप में किया गया है। ऋग्वेद के लगभग २० सूक्तों में उषा की स्तुति तथा उसके प्राकृतिक सौन्दर्य का विवेचन किया गया है। काव्यतत्वों की दृष्टि से ऋग्वेद के सभी सूक्तों में ऊषासूक्तों का सर्वाधिक महत्व है। उषा आकाश की पुत्री है। वह सूर्य की प्रेयसि है। जब उषा एक नर्तकी के समान चमकीले वस्त्रों से सुशोभित होकर पूर्व दिशा में अपने आकर्षित होकर पूर्व दिशा में अपने आकर्षक व्यक्तित्व के साथ प्रकट होती है तो सूर्य एक रसिक प्रेमी के समान उसका अनुकरण करता है। उषा अन्धकार को नष्ट कर देती है। इसका आलंकारिक वर्णन

करते हुए कहा गया है कि उषा प्रकाश में स्नान करते समय रात्रि रूपी नायिका के काले वस्त्रों को उतार कर फेंक देती है। वह प्राचीन होते हुए भी नवीना है। इसलिये उषा को पुरानी युवती कहा गया है। उषा के प्रकट होते ही प्रकाश से आकाश जगमगा उठता है।

उषा सदैव अपने नियमों का पालन करती है। वह सभी मार्गों को जानती है, इसी कारण कभी भी अपनी दिशा नहीं भूलतीं है।

उषा दान प्रदान करने वाली, सबके द्वारा वरण की जाने वाली, प्रकृष्ट ज्ञान वाली, सौभाग्यशालिनी, धनवती, अश्वमती तथा गोमती है। उषा की स्तुति प्रकाश, धन, दीर्घ आयुष्यं आदि की कामना से की गई है। वह दानदाताओं को दान देने के लिए प्रेरित करती है। सभी प्राणी इसको देखने के लिए प्रणाम करते हैं। सुन्दरी उषा देवी प्रकाश का निर्माण करती है। उससे प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि वह द्वेष करने वाले तथा बाधा उपस्थित करने वाले लोगों को दूर करे—

'विश्वमस्या नानाम चक्षसे
जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव
उषा उच्छदय स्त्रिधः ॥'

उषा सभी को अपने कार्यों में प्रेरित करती है। इसके प्रकट होने पर पक्षी उड़ने लगते हैं, मनुष्य अपने कार्यों में लग जाते हैं। वह प्रातः ही उपासकों को जगाकर स्तुति में प्रवृत्त करा देती है तथा देवताओं को सोमपान में लगा देती है। उषा की स्तुति करके ऋषि उससे अन्न, धन, यज्ञ की कामना करता हुआ कहता है।

'सं नो राया बृहता विश्वपेशसा
मिमिक्ष्वा समिलाभिरा।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि
सं वाजैर्वाजिनीवति ॥'

उषा का सूर्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह सूर्य के रास्ते को खोलती है। उसे सूर्य की माता, पत्नी तथा बहिन भी कहा गया है। यह रात्रि की बड़ी बहिन तथा आकाश की पुत्री है। इसका अश्विन्, अग्नि तथा इन्द्र आदि देवताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसका रथ अत्यन्त चमकदार है, जिसमें लाल वर्ण के अश्व जुते हुए हैं। उषा को वर्ष की स्त्री तथा ऋतुओं की स्वामिनी भी कहा गया है। उषा सदाचार सम्बन्धी त्रुटियों को दूर कर उन्हें पूरा करती है तथा ऋत का वितरण करती है। इस प्रकार उषा को 'ऋतावरी' नाम से उल्लिखित किया गया है।